श्री हित चौरासी

रसिकमनरञ्जिनी टीका



टीकाकार : परम भागवत स्वामी श्री हितदास जी महाराज

।। श्रीहित ।।

हित चौरासी

(श्री मन्महाप्रभुपाद गोस्वामी श्रीहित हरिवंशचन्द्र कृत)

रसिक मन रञ्जिनी टीका सहित

• टीकाकार •

परम भागवत स्वामी श्रीहितदास जी महाराज



हित साहित्य प्रकाशन • वृन्दावन

❑ प्रकाशक

हित साहित्य प्रकाशन
श्रीहिताश्रम सत्संग भूमि
गाँधी मार्ग, वृन्दावन–२८११२१
दूरभाष : ०५६५–२४४२१६१

❑ प्रथम संस्करण

श्रीहितोत्सव, सं. २०६५ वि.
सन् २००८

❑ न्योछावर

१०० रुपये

❑ मुद्रण–संयोजन

श्रीहरिनाम प्रेस
बाग बुंन्देला, लोई बाजार, वृन्दावन–२८११२१
✆ : ०५६५–२४४२४१५

।। श्री हित ।।

समर्पण

श्रीवृन्दावनाधिकारिणि नित्य किशोरी!

हित चौरासी की यह केलि गान माला,

तुम्हें समर्पित करते हुए मैं कितनी प्रसन्न हूँ?

कैसे बताऊँ? इसे और मुझे सदा

अपनी समझे रहो, बस यही मेरे लिये

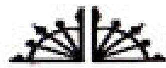
परम सौभाग्य की बात होगी।

– तुम्हारी

हित दासी नेह लता



अनुक्रमणिका



निवेदन

श्रीवृन्दावन रस प्राकट्यकर्ता वंशीस्वरूप रसिकाचार्य महाप्रभु श्रीहित हरिवंश चन्द्र जी महाराज द्वारा उद्गलित श्री हित चतुरासी श्री वृन्दावन रस की वाङगमय मूर्ति है। जिस रूप को वेदों ने रसो वै स: कहकर संकेत मात्र किया उसे ही उसी रस ने श्रीहित हरिवंश के रूप में प्रगट होकर जीवों पर कृपा करने के लिए वाणी का विषय बनाया जिसे हम श्रीहित चतुरासी, स्फुट वाणी एवं श्रीराधा रस सुधा निधि के रूप में जानते हैं। यह वाणी समुद्र की तरह अगाध एवं अपार है जिसे उनकी कृपा से ही समझा जा सकता है। यद्यपि कोई भी टीका मूल का स्थान नहीं ले सकती है फिर भी महापुरुषों ने कृपा करके जन सामान्य के समझने एवं रसास्वादन करने के लिए पदों में निहित भावों को यथाशक्य प्रकट करने का प्रयास किया है। श्रीहित चतुरासी की कई टीकाएं हैं जिनमें कुछ एक प्रकाशित भी हो चुकी हैं। हमारे गुरुवर्य्य प्रात: स्मरणीय श्रीहित कृपा मूर्ति परम भागवत स्वामी श्रीहितदास जी महाराज रसोपासना के मर्मज्ञ अधिकारी विद्वान् थे, उनके द्वारा की गई श्रीहित चतुरासी की 'रसिक मन रञ्जिनी'' टीका हृदय स्पर्शी एवं बड़ी ही रोचक है। इसमें कई पदों के नवीन भाव भी दिये हैं। हमारे सम्प्रदाय में पहले से ही रसिकों के द्वारा दो प्रकार से मूल की टीका करने की परम्परा चली आ रही है। एक जिसमें मूल के अर्थ को सुरिक्षत रखते हुए ब्रजलीला सम्बन्धित पदों को निकुंज लीला की पृष्ठ भूमि में रखते हुए अर्थ करना और दूसरी जिसमें मूल का सिर्फ निकुंज लीला परक ही अर्थ करना। ये दोनों परम्परायें स्वस्थ रूप से अब भी विद्यमान हैं। मेरे गुरुवर्य्य श्री महाराज जी ने पहली परम्परा का ही अनुसरण किया है जो उनको रुचिकर था। यद्यपि प्रेमी भक्तों के आग्रह पर यह टीका सन् 1950

में की गई थी परन्तु पीछे पूज्य महाराज जी इसके प्रकाशन से विरत हो गये। यह टीका रसिक प्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी इस भावना से हम प्रकाशित कर रहे हैं। इससे किसी भी प्रेमी उपासक को थोड़ा भी लाभ हुआ तो हम अपना प्रयास सफल मानेंगे।

ग्रन्थ के प्रकाशन का श्रेय एकमात्र मेरे गुरुभ्राता संत श्री मृदुल माधव दास जी को ही जाता है। उनकी इस सेवा से वे अपने गुरु के और निकट एवं प्रिय हो गये हैं। इसी तरह पूज्य महाराज जी के अन्य ग्रन्थों को प्रकाशित करने में रुचि लेते रहें ऐसी उनसे प्रार्थना है। हम श्रीहरिनाम प्रेस के भी आभारी हैं जिन्होंने अपने सौहार्दपूर्ण व्यवहार से ग्रन्थ को शीघ्र प्रकाशित कर दिया।

– **श्रीकमल दास**



।। श्रीराधावल्लभो जयति ।।

।। श्रीहरिवंशचन्द्रो जयति ।।

श्रीमन्महाप्रभुपाद श्रीहित हरिवंशचन्द्र-प्रशस्ति

श्री सेवक जी

जै जै श्री हरिवंश व्यास कुल मंडना।
रसिक अनन्यनि मुख्य गुरु जन भय खण्डना।।
श्री वृन्दावन बास रास रस भूमि जहाँ।
क्रीड़त स्यामा स्याम पुलिन मंजुल तहाँ।।
पुलिन मंजुल परम पावन त्रिविध तहाँ मारुत बहै।
कुञ्ज भवन विचित्र सोभा मदन नित सेवत रहै।।
तहाँ सन्तत व्यास नन्दन रहत कलुष विहण्डना।
जै जै श्री हरिवंश व्यास कुल मण्डना।।१।।
जय जय श्री हरिवंश चन्द्र उद्दित सदा।
द्विज कुल कुमुद प्रकास विपुल सुख सम्पदा।।
पर उपकार विचार सुमति जग विस्तरी।
करुनासिन्धु कृपालु काल भय सब हरी।।
हरी सब कलिकाल की भय कृपा रूप जु वपु धर्यौ।
करत जे अनसहन निन्दक तिनहुँ पै अनुग्रह कर्यौ।।
निरभिमान निर्वैर निरुपम निष्कलंक जु सर्वदा।
जय जय श्री हरिवंश चन्द्र उद्दित सदा।।२।।
जय जय श्री हरिवंश प्रसंसित सब दुनी।
सारासार विवेकत कोविद बहु गुनी।।
गुप्तरीति आचरण प्रकट सब जग दिये।
ज्ञान धर्म व्रत कर्म भक्ति किंकर किये।।
भक्ति हित जे सरन आये द्वन्द्व दोष जु सब घटे।
कमल कर जिन अभय दीने कर्म बन्धन सब कटे।।

परम सुखद सुशील सुन्दर पाहि स्वामिन् मम धनी।
जय जय श्री हरिवंश प्रसंसित सब दुनी।।३।

जय जय श्री हरिवंश नाम गुन गाइ है।
प्रेम लक्षना भक्ति सुदृढ़ करि पाइ है।।
अरु बाढ़े रसरीति प्रीति चित ना टरै।
जीति विषम संसार कीरति जग बिस्तरै।।
बिस्तरै सब जग विमल कीरति साधु संगति ना टरै।
वास वृन्दाविपिन पावै श्रीराधिका जु कृपा करै।।
चतुर युगल किसोर सेवक दिन प्रसादहिं पाइ है।
जय जय श्री हरिवंश नाम गुन गाइ है।।४।

श्रीहित पद पद्मैकनिष्ठ श्रीहरिराम व्यास

राधावल्लभ व्यास के इष्ट मित्र गुरुदेव।
श्री हरिवंश प्रगट कियौ, कुंज महल रस भेव।।
व्यास आस हरिवंश की, तिनहीं को बड़ भाग।
वृन्दावन की कुंज में, सदा रहत अनुराग।।
हित हरिवंश कृपा बिना, निमिष नहीं कहुँ ठौर।
व्यासदास की स्वामिनी, प्रगटी सब सिरमौर।।

गो. श्री कृष्णचन्द्रजीः

स्फुरद् वदन पंकजः कनककूट देहद्युतिः।
प्रशस्त सुख सम्पदां निधिरपूर्व मानप्रदः।।
सकृष्ण वृषभानुजा चरणमाधुरी चंचुरः।
सदा मधुर वाक्पटुर्जयति साधुवैयासकिः।।
प्रेमानन्दो पुलकित गात्रौ विद्युद्धाराधर समकान्तिः।
राधा कृष्णौ मनसि दधानं वन्देहं श्रीहित हरिवंशम्।।

श्रीहित वृन्दावनैकनिष्ठ श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती :

त्वमसिहि हरिवंश श्यामचन्द्रस्य वंशः।
परम रमद नादे मोहिताशेष विश्वः।।

अनुपम गुणरत्नै र्निर्मितोऽसिद्विजेन्द्र।
मम हृदि तव गाथाश्चित्रलेखवेलग्ना।।

श्रीहरिलाल जी व्यास

राधैवेष्टं सम्प्रदायैककर्ताचार्य्यो राधा मन्त्रद: सद्गुरुश्च।
मंत्रो राधा यस्य सर्वात्मनैवं वन्दे राधापादपद्मप्रधानम्।।

श्री नाभा जी का छप्पय

श्रीराधा चरन प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दंपति तहाँ की करत खवासी।।
सर्बसु महा प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहिं दासि अनन्य उत्कट ब्रत धारी।।
श्रीव्यास सुवन पथ अनुसरै सोइ भले पहिचानि है।
(श्री) हरिवंश गुसाँईं भजन की रीति सकृत कोउ जानि है।।

श्री स्वामी चतुर्भुजदास जी

हरिवंश चरण बिनु बल गहौं काकौ।
कुँवरि कुँवरवर केलि समागम वृन्दाविपिन सुखद धन जाकौ।।
मन क्रम वच सुमिरौं व्यासनन्दन मुरलीधरन इष्ट है जाकौ।
कृपा करैं श्रीराधा रानी चत्रभुज जानि गह्यौ यह नाकौ।।

श्री नागरीदास जी

प्यारौ श्री हरिवंश न होतौ।
तौ रसरीति समीति प्रीति कौ भेद भजन अधिकारी को तौ।।
लाड़िलीलाल विमल जस रस विनु जग अंधेर पर्‌यौ हुतौ सोतौ।
नागरीदास प्रभु प्रगट पुकार्‌यौ अविवेकिन कौं अजहूँ अछोतौ।।१।।
बिना कृपा राधा रानी की क्यौंव शरण हित तू की पावै।
जाकौ नाम सुनत परवस ह्वै श्याम सहित श्यामा उठि धावै।।
दम्पति रूप रसासव पीवत धर्मी धर्म बिनु और न भावै।
नागरीदास श्रीव्याससुवन बल नित्यबिहार औरनि दरसावै।।२।।

श्री हरिवंश चरण विश्राम।
साधन आराधन पुरुषारथ श्री हरिवंश चरन सुख धाम।।
सीतल रसद विसद गुन गन मय श्री हरिवंश भजन निहिकाम।
श्री हरिवंश सेइवौ स्वारथ सुधा विमल वानी अभिराम।।
जो चाहै वृन्दाविपिन माधुरी श्री हरिवंश सुमिर वरनाम।
श्री हरिवंश रति कियें नागरीदास सदा सुगम सुख स्याम स्याम।।३।।

श्रीध्रुवदास जी

प्रगट प्रेम कौ रूप धरि, श्री हरिवंश उदार।
श्रीराधावल्लभ लाल कौ, प्रगट कियौ रस सार।।१।।
करुणानिधि अरु कृपानिधि, श्रीहरिवंश उदार।
वृन्दावन रस कहन कौं, प्रगट धर्यौ अवतार।।२।।
प्रथम नाम हरिवंश हित, रटि रसना दिन रैन।
प्रीति रीति तब पाइयै, अरु वृन्दावन ऐन।।३।।
हरिवंश चरण उर धरनि धरि, मन बच करि विश्वास।
कुँवरि कृपा ह्वै है तबहि, अरु वृन्दावन वास।।४।।
अगम तें अगम अगाध अति, पहुँचत नहिं मन वेद,
श्री हरिवंश प्रताप वल, पावत सुगम सुभेद।।५।।

श्री कल्याण पुजारी जी

जाके सिर ऊपर श्री व्यासनन्द से धनी हैं
ताहि न परवाह कछू काहू और ठौर की।
चलत सु पथ साधु लक्षन तें जानियत
वानी मुख कहत रसिक सिरमौर की।।
श्रवन सुनत नैन देखत हैं रूप मन
ध्यावत स्वरूप शोभा–सिन्धु में झकोर की।
सदाई कल्याण रस फूले फिरैं प्रेमी जन
गुनन गम्भीर धीर मिटी सब रौर की।।१।।

श्रीवंशी अली जी

श्री हरिवंश की यह वानि।।
करत जे अनसहन निन्दक तिनहिं हित सरसान।।
जान रस वस आस राधा वास महल निदान।
कुंज सेवा पुंज विलसत गुंज गहि गहि पान।।
सूर्य तनया निकट निजपुर नूत पल्लव वान।
सखीजन की भीर भाजन लियें वहु विधि आन।।
चरण चंचल पलक अचंल ढाँकि प्यारी पान।
वदत वंशी अलिहि अंशी मत्त मुख रसखान।।

श्रीकिशोरी अली जी

हित विन कैसौ विपिन विहार।
हित राजत प्यारी पिय के हिय हित ही सकल सुखन आधार।
हित ही सौं सिंगार करावत हित ही भूषन वसन अपार।
छिन छिन चोंज होत हितही के जुगल खिलौना हित खिलवार।
हित की सेज बिराजत दोऊ हित कौ नवल निकुंज अगार।
हित सौं फूलि रहीं बेली तरु शुक कोकिल गावत हितसार।
यमुना पुलिन रास रचनादिक फैलि रह्यौ हित कौ विस्तार।
श्री वनमें हित व्यापि रह्यौ है हित सौं हित ही कौ व्यौहार।
सोई प्रगट भयौ हित हरि कौ सकल जगत कीनौ उद्धार।
हित हरिवंश नाम के ऊपर अली किशोरी वलि वलिहार।

श्रीप्रियादास जी गौड़िया

श्रीहरिवंश गोसाईं भजौ।। कुंजकेलि रस ही में सजौ।।

हितजू की रीति कोऊ लाखनि में एक जानैं,
राधा ही प्रधान मानै पाछै कृष्ण ध्याइयै।
निपट विकट भाव, होत न सुभाव ऐसौ,
उनहीं की कृपा दृष्टि नेंकु क्यौं हूँ पाइयै।।

बिधि औ निषेध छेदि डारे; प्रान प्यारे
हिये जिये निज दास निसिदिन वहै गाइयै।
सुखद चरित्र, सब रसिक बिचित्रन के
जानत प्रसिद्ध, कहा कहिकैं सुनाइयै।।

आए गृह त्यागि, राग बढ्यौ प्रिया प्रीतम सों,
बिप्र बड़भाग हरि आग्या दई हरि जानियै।
तेरी उभै सुता, ब्याहि देवौ लेवौ नाम मेरौ,
इनिकौ जौ बंस प्रसंस जग जानियै।।
ताही द्वार सेवा बिस्तार निज भक्तिनि की
अगतिन गति, सो प्रसिद्धि पहिचानियै।
मानि प्रिय बात गह गह्यौ सुख लह्यौ तब,
कह्यौ कैसें जात यह मन मन आनियै।।

राधिका बल्लभ लाल आग्या सो रसाल दई
सेवा मो प्रकास औ बिलास कुंज धाम कौ।
सौई बिस्तार सुखसार दृग रूप पियौ,
दियौ रसिकनि जिनि लियौ पक्ष बाम कौ।।
निसदिन गान रस माधुरी कौ पान उर
अंतर सिहान एक काम स्यामा स्याम कौ।
गुन सो अनूप कहि, कैसे कै सरुप कहैं
लहै मनमोद; जैसे ओर नहीं नाम कौ।।

श्रीभगवत मुदित जी गौड़िया

जै जै श्री हरिवंश हंस हित कोबिद वानी।
ललिता ललित प्रशंश केलि कल दशा वखानी।।
जयति जयति वन जयति जयति श्री राधारवनी।
जयति जयति ललितादिक जयति हित कौतिक कवनी।।

चाचा श्रीहित वृन्दावनदास जी

रसिक सभा–भूषन द्विजवर–कुल,
व्यासनंद–पद सुरतरू रस कौ।
भाग्य भलौ जग प्रगट प्रकाश्यौ,
किधौं चिन्तामणि राधा–जस कौ।।
परम अलौकिक कामधेनु मनु,
दाइक मिथुन गुपत–गुण गंस कौ।
वृन्दावन हित रूप जाऊँ बलि,
दियौ कर सीस प्रेम पारस कौ।।

को दाता नित्यविहार कौ।
श्री हरिवंश उभय रस मूरति बिनु को जग उपकार कौ।।
को वपुरा गुन गुपत कहैगौ वन रस रसिक उदार कौ।
को भेदी हिय हिलग मिथुन कौ बिनु उहि परिकर लार कौ।।
जननि भाग कौ उद्भव जानौ कलि वंशी अवतार कौ।
वृन्दावन हित जिहिं दत प्रापति कुंज केलि सुख सार कौ।।

श्रीप्रियादास जी रीवाँ

जापै कृपा करै श्री हरिवंश सु तापै दयाल सदा हरि राधा।
जाकौ नहीं हित सौं हित है टुक ताकी न मेटि सकैं हरि बाधा।।
याकौ तौ भेद अनन्य लखैं अरु औरन कौं अति गूढ़ अगाधा।
प्रियादास कृपा हित की तें मिल्यौ रस कुंज कौ दर्श पुरी मन साधा।।

श्रीरतनदास जी

नमो नमो जै श्री हरिवंश।
जुगल मूल रस फूल झूल लगे गौर श्याम हित हेत निसंस।।
नेति नेति रस सबनि जु गायौ खोजत किनहुँ न पाई गंस।
करी कृपा वपु प्रेम रूप धरि दियौ दरशाय यह गूढ़ प्रसंस।।
चरण शरण जे हित के अनुसरे तोरि जगत सब माया फंस।
सबनि लहे अरु अबहू लहत हैं नित नवीन यह प्रेम सतंश।।

गुरु सहचरि गोवर्धन स्वामिनि परस्यौ पदनि कृपा भयौ हंश।
प्रेम पुलक तन मन आनन्दित रतनदास के हिय अवतंश।।

परम भागवत स्वामी श्री हितदास जी महाराज

वन्दे तारा तनय मुदारम।
आगम निगम अलक्ष्य अगोचर,
प्रगटित विसद सु विपिन विहारम्।।
रसिक सभा मंडन रस भूषन,
निज हित रीति प्रीति विस्तारम्।
श्रीराधा रति केलि कुंज रस,
रसिक अनन्य वहन रसभारम्।।
निरभिमान करुना–वरुनालय,
आरत सरनागत प्रतिपारम्।
'नेहलता हित' देहि दयामय,
निज पद–पल्लव रसघन सारम्।।

श्री हित चौरासी वाणी प्रशस्ति

गो. श्री हित रूपलाल जी महाराज

भव–जल–निधि कौ नाव काम पावक कौ पानी।
प्रेम–भक्ति कौ मूल मोद मंगल सुखदानी।।
निगम सार सिद्धांत संत विश्राम मधुर वर।
रसिकन कौ रस–सार सकल अक्षर रस कौ घर।।
चौरासी (श्री) 'हरिवंश' कृत पढ़ै सुनै निसि–भोर।
छुटै–चौरासी भ्रमनि तें निरखै जुगल किशोर।।
निरखै जुगल किशोर भोर अरु रैन न जानै।
पियै रूप रस मत्त भयौ कछु मनहि न आनै।।
प्रेम लक्षना भक्ति होय हिय आनन्द कारी।
अरु वृन्दावन वास सखी सुख कौ अधिकारी।।
कुञ्ज महल की टहल सुख सम्पत्ति दम्पति पाइहै।
(जयश्री) रूप लाल हित प्रीति सौ जो चौरासी गाइहै।।

श्रीनेही नागरीदास जी

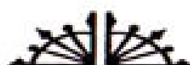
गिरा गंभीर गुननि गरबीली।
सुजन सनेहिन के मन आवै, औरन कौ ओरठ अरबीली।।
श्री हरिवंश वचन वर कल, कढ़ी स्वच्छ सुछंद सुछैल छबीली।
नागरीदास मकरंद माधुरी रूप रंग रस रसिनि रसीली।।
वानी विमल लाड़ की परावधि।
श्री हरिवंश वचन वर निकसी बड़भानिनु जो आवै कहाँ सधि।।
रूप रंग रस कुसल कुलाहल जामहि अमित–अगाध लवधि लधि।
नागरिदास भजन कौ मरमी सुख निधि–व्याससुवन पद आरधि।।
श्री हरिवंश गिरा पद अष्टक।
कहत सुनत ताकौ मन सुधरै कपटी होइ कुटिल खलु निष्टक।।
प्रबल प्रताप ध्वंस असुभ निकर रहत न पावै कंटक किष्टक।
सदगद नागरीदास रसिक मनि कैसेहूँ करि–रमै मिटै मति भिष्टक।।

श्री किशोरी अलीजी

जय श्री चतुरासी रस रासी।
हित हरिवंश चन्द्र तैं प्रगटी दम्पति–प्रेम प्रकासी।।
ललित केलि की सरिता मानौं उमड़ि चली अनयासी।
रसिक उपासक रुचि सौं पीवत जीवत श्रीवन बासी।।
वक्ता–श्रोता कौ अपनावै नवल निकुंज विलासी।
ताही छिन परिकर तन दैकै करत किशोरी दासी।।

श्रीहित कल्याण पुजारी जी

श्री हरिवंश गिरा घन बरसै।
प्रेमी रसिक उपासक सींचे, सरस सुजस मन करषै।।
छिन–छिन चौप कोंप उर बाढ़ति, भजन भावना हरषै।
यह 'कल्यान' प्रेम जल उमग्यौ, नेम–मरजादनि न रखै।।



॥ श्रीहित ॥

॥ श्रीराधा वल्लभो जयति ॥

मङ्गलाचरण

नवल चंद प्रिया बदन, अति अनूप रूप सदन,

हँसनि नवल मंद चपल चितवन सुखदाई।

नवल अधर सरस लाल दसन झलक छबि रसाल,

छिन छिन छबि होत नवल मन नहिं ठहराई॥

निरखत सोभा गँभीर बिसरे पिय नैंन चीर,

मनहुँ कमल रहे फूलि तरनि उदय माई।

नवल प्रिया नव किसोर नवल सखी चहूँ ओर,

विमल प्रेम ऊपर 'हित ध्रुव' बलि जाई॥

- हितदास



निभृत निकुञ्ज विलासी
ठाकुर श्रीश्रीराधावल्लभलालजी महाराज



वंशी अवतार, प्रेमस्वरूप, रसिकाचार्य
अनन्त श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु जी महाराज



रसिकावतंश
श्रीदामोदरदासजी महाराज
(श्रीसेवकजी)



श्रीहित कृपामूर्ति परमभागवत
स्वामी श्रीहितदासजी महाराज

|| श्रीहरिवंश ||

|| श्रीराधा वल्लभ ||

श्रीगुरु-वन्दना

नमो॰ नमो जय श्रीहरिवंश।

रसिक अनन्य बेनु कुल मण्डन,

लीला मान सरोवर हंस।।

नमो जयति वृंदावन सहज माधुरी,

रास विलास प्रसंस।

आगमं-निगम अगोचर राधे

चरन सरोज व्यास अवतंस।।

– दास

हितदास



श्रीइष्ट देव वन्दना

श्रृंगार रस माधुर्य्य सार सर्वस्व विग्रहे।

नमो नमो जगद्वन्द्ये वृन्दावन महेश्वरि।।

हे वृन्दावन की महामहिम स्वामिनि ! हे जगत् वन्दनीया! हे श्रृङ्गार, रस, माधुरी की सार सर्वस्व मूर्त्ति !! आपके श्रीचरणों में बार-बार नमन है।

– कृपा भिखारी

दीन हितदास



लेखक के भावोद्‌गार

जाने किस अज्ञात प्रेरणा ने मुझे यह सब लिखने के लिये फिर से बाध्य कर दिया और फल स्वरूप यह गलत–सही 'हित चौरासी' की टीका आज लिख कर पूर्ण हुई।

"तेरे मन कछु और है कर्त्ता के कछु और," मेरे कुछ प्रेमी वैष्णवों की इच्छा थी कि 'श्रीराधा सुधा निधि' की ही तरह श्रीहित ध्रुवदास जी की समस्त कृतियों का एक संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित हो और मैं उस पर शब्दार्थ एवं आवश्यकीय टिप्पणियाँ लिख दूँ प्रेमियों की सद्‌भावना के अनुसार मैंने उक्त ग्रन्थों (ब्यालीस लीला समुच्चय) पर शब्दार्थ एवं टिप्पणियाँ लिखना प्रारम्भ भी कर दिया। कार्यरम्भ करने के कुछ ही दिनों पश्चात् अकस्मात् एक दिन 'हित चौरासी' एवं 'सेवक वाणी' पर भी टीका टिप्पणी लिखने की भावना जागी। मैंने इस भावना को ज्यों ज्यों रोकना प्रारम्भ किया त्यों त्यों यह बलवती होती गयी और प्रारम्भ किए गये कार्य को शिथिल करके इसने अपना कार्य आरम्भ करा लिया। कार्य की प्रगति कहूँ या कुछ और, न कुछ डेढ़ मास में ही 'हित चौरासी' की टीका सम्पूर्ण लिख गयी।

ग्रन्थ तो लिख गया किन्तु मेरे मन में बार–बार आता है कि मैंने 'श्रीराधा सुधा निधि की टीका लिखकर रसिक समाज का एक अपराध किया था, और 'हित चौरासी' पर टीका टिप्पणी लिखकर यह दूसरा अपराध है क्योंकि यह लेखन, प्रकाशन के विचार से हुआ है, यों तो बहुत से पूर्वकालीन सन्तों ने इस ग्रन्थ पर टीकायें लिखी हैं किन्तु उनका उद्देश्य निज रसास्वाद था, मेरी तरह लोक ख्याति किंवा व्यापार नहीं। इसके लिये मैं उन रसिक सन्तों, आचार्यों एवं वैष्णवों से क्षमा की भीख माँगता हूँ।

मैं इस कार्य में अपराध तो तब मानता हूँ, जब इस विहार रस वृन्दावन विलास को शास्त्रीय शब्दों में गोपनीय स्वीकार करता हूँ और जब यह देखता हूँ कि हमारे पूर्वज रसिकाचार्यों ने जिस वृन्दावन रस को प्रकट किया है वह

सत्यं शिवं सुन्दरम् है तो उसके मूल में एक चरम सत्य का दर्शन करता हूँ। वह सत्य उज्वल है, शान्तिपूर्ण है, कल्याणमय है और अमलात्मा मुनिजन वंदनीय है। तब मैं निर्भय होकर एक आनन्द का अनुभव करता हूँ अपनी इस सेवा वृत्ति के द्वारा।

अस्तु; इसी अवलम्ब को लेकर इस अल्पमति ने अपने इस लघु एवं असफल से प्रयास में रसिकावतंस आचार्य्य वर्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभुपाद द्वारा प्रकाश किये गये दिव्य एव परमोज्वल शृङ्गार रस को अपनी शक्ति भर उसके अपने यथार्थ रूप में ही ला रखने की कोशिश की है। उस रस–प्रवाह के विशुद्ध सम्पतन में कोई विकृति न आ जाय इस भय से मैं सदा भयभीत रहा हूँ। हित चौरासी के दिव्य पदों के भावार्थ लिखने में केवल शब्दों के पर्याय वाची दूसरे शब्द लिखने का ही मेरा आग्रह रहा है। कहीं कहीं तो ब्रज भाषा के प्राचीन शब्दों को वर्त्तमान खड़ी बोली का रूप देकर पंक्ति के शेष शब्द ज्यों के त्यों रख दिये गये हैं। ऐसा करने में पद के मूल भाव की रक्षा ही लक्ष्य में रही है। इस बात की और भी रक्षा करने के लिये मैंने भावार्थ के साथ अपना मत जो भी कुछ लिखा है उसे [....] इस कोष्ठ में रख दिया है और जहाँ कहीं मूल के शब्द या पंक्ति के अर्थ लिखने की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ (....) इस लघु कोष्ठ का प्रयोग किया है। कहीं कहीं किसी शब्द, वाक्य या क्रिया के भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिए – शब्द, वाक्य, क्रिया–इस शैली का प्रयोग किया गया है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्रत्येक पद के पूर्व, 'अवतरण' नाम से पद के भीतर आये हुए भावों की परिचय रूपा भूमिका सी है। यह 'अवतरण' –या पद परिचय मेरी अपनी भावना का है। इन अवतरणों में पद के लिये जो भूमि निर्माण की गयी है, वह एक दम ठीक ही है, मैं ऐसा दम भरने का दुस्साहस नहीं कर सकता। इन अवतरणों को प्रत्येक व्यक्ति रस विलास सिद्धान्त का ध्यान रखते हुए अपने भावानुसार अलग–अलग भी निर्मित कर सकता है।

दूसरी बात पदों के मूल पाठ की है। इस ग्रन्थ में प्राचीन से प्राचीन प्रतियाँ जो मुझे मिल सकी हैं, उन्हीं से यहाँ पाठ लिया गया है। वर्तमान् प्रकाशित प्रतियों में और निकट भूतकाल में लिखित प्रतियों में मूल प्रायः अशुद्ध है; क्योंकि ब्रज–भाषा के विचार से शब्दों का जो रूप होना चाहिये

इनमें वह न होकर शुद्ध संस्कृत के अनुसार है। यह बात ब्रजभाषा के सारल्य स्वाद और लावण्य को न्यून सी करती है, अतः मुझे ही क्यों सब भाषा मर्मज्ञों को अनुचित ही प्रतीत होगी। ब्रजभाषा के रूप इन प्रतियों में शुद्ध होकर संस्कृत किंवा हिंदी में किस प्रकार हुए कुछ इसके उदाहरण देखिये–

ब्रजभाषा	**वर्तमान हिन्दी**
भाँमती	भावती
प्राँन	प्राण
जाँमिनी	यामिनी
रमन	रमण
जुद्ध	युद्ध
सैंन	शयन
अंक	अङ्क
राइ	राय
सुर	स्वर
मंजुल	मञ्जुल

– **इत्यादि**

यद्यपि यह शब्द रूपान्तर अर्थ रूवान्तर नहीं करता, तथापि ब्रज–वाणी की रसात्मक धारा एवं लालित्य में अवश्य एक कण्टक है, जिसे मनीषी गण समझ सकते हैं।

मूल पाठ में आये हुए कुछ पारिभाषिक शब्दों के अर्थ प्रसंग में जैसे घटित हो रहे हैं उसी तरह लिखे गये हैं, इससे साहित्यिक सज्जनों को विचार तो अवश्य होगा किन्तु इन शब्दार्थों से पद का भाव समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी और वह सहायता उसी दिशा में होगी जो रसिकाचार्य्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र की रस विहार की किंवा 'हित चौरासी' की दिशा है। पहले इन पारिभाषिक शब्दों पर स्वतन्त्र टिप्पणियाँ लिख दूँ ऐसा मन हुआ किन्तु ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने एवं रस विहार का अत्यन्त स्पष्टीकरण हो जाने के भय से मैंने ऐसा नहीं किया।

इस नित्य विहार रस पूर्ण ग्रन्थ के प्रणेता हैं – रसिकाचार्य्य वर्य्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभुपाद इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में कुल चौरासी ही पद हैं, शायद इसी से हित चौरासी नाम दिया गया है। ग्रन्थ के सम्पूर्ण पद मुक्तक हैं। प्रत्येक पद अपने लिये स्वतंत्र है, वह दूसरे पद की अपेक्षा नहीं रखता, तथापि सम्पूर्ण ग्रन्थ में आद्यन्त केवल एक ही विषय, परमोज्वल श्रृंगार–विशुद्ध वृन्दावन रस विलास वर्णित है; यह वर्णन कितना जागृत वर्णन है, कहने की आवश्यकता नहीं। संस्कृत साहित्य में जिस प्रकार श्रीजयदेव कविराज का गीत गोविन्द महाकाव्य शृङ्गार रस वर्णन के सर्वोच्च सिंहासन पर आसीन है, उसी प्रकार ब्रज भाषा साहित्य में हित चौरासी का स्थान है। काव्य के गुण, अर्थ, अनुप्रास, उक्ति चोज, अलङ्कार, भाव व्यञ्जना, प्रसाद, शब्द माधुर्य्य, अर्थ माधुर्य्य मौलिकता आदि गुणों में यह ग्रन्थ अपने समान आप ही है। वर्तमान् युग के साहित्य महारथी श्रीवियोगी हरि जी "ब्रज माधुरी सार में लिखते हैं–

"भाषा में हित चौरासी एक अनुपम ग्रन्थ है। पढ़ते–पढ़ते कहीं–कहीं तो कवि कोकिल जयदेव का स्मरण हो आता है। श्री गोसाईं जी ने ब्रज साहित्य का भारी उपकार किया है। श्रीहितजी ने आध्यात्मिक पक्ष के अर्थानुसार श्रीराधाकृष्ण का विशुद्ध शृङ्गार वर्णन किया है। इनका वर्णित रास विहार प्रकृति पुरुष का एक दिव्य रहस्य कहा जाता है....।" अस्तु, उपासना और भक्ति के क्षेत्र में श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं। यह वंशी साक्षात् प्रेम रूपा है अतः यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि श्रीहित जी युगल किशोर श्रीराधा वल्लभ लाल के पारस्परिक प्रेम के ही दिव्य अवतार हैं। इनकी इष्टाराध्या हैं नित्य रास रस विहारिणी, वृन्दावन निभृत निकुञ्ज विलासिनी, नित्य नव किशोरी प्रेम प्रतिमा श्रीराधा। अतः श्रीहित हरिवंश चन्द्र ने सर्वत्र ही अपने पद एव श्लोकों में रस मूर्त्ति श्रीराधा के रूप, गुण, लीला, प्रभाव एवं स्वविलास आदि का ही गान किया है, क्योंकि श्रीकृष्ण की वंशी भी तो यही सब कुछ करती है।

वंशी स्वरूप श्रीहिताचार्य्य की वाणी रसिक अनन्यों का जीवन है, वे इस वाणी रस गान का पान करके उन्मत की भाँति गा उठते हैं–

रास रस रचित बानीं जु प्रगटित जगत,
सुद्ध अविरुद्ध परसिद्ध जानी।
स्याम स्यामा प्रगट प्रगट अक्षर निकट,
प्रगट रस श्रवत अति मधुर बानी।।
सो जु बानीं रसिक नित्य निसिदिन रटत,
कहत अरु सुनत रस रीति जानी।
ताहि तजि और गाऊँ न कबहूँ कछू,
प्रान रमि रही (श्री) हरिवंश बानीं।।

–सेवकजी

अस्तु: श्रीहितजी की रसोपासना का साधन भी विशुद्ध प्रेम ही है। इस प्रेम के लक्ष्य और स्वरूप हैं श्रीवन विहारी श्रीराधा और श्रीकृष्ण। इस तत्व की उपासना करने वाले उपासक 'रसिक अनन्य' कहे जाते हैं। इन रसिक अनन्यों का लक्ष्य मोक्षादि न होकर रस स्वरूप नित्य विहार की प्राप्ति है। नित्य विहार में उनका स्वरूप दिव्य नव किशोरी है। इनका भाव दासी है और सुख–तत्सुख है। हित चौरासी में इसी तत्सुख पूर्ण दासी भाव की रस धारा है। पाठकों को इसका विशद वर्णन 'प्राक्कथन' में मिलेगा।

अन्त में इतना ही कहना अलं होगा कि यदि मेरे इस प्रयास से किसी भी सहृदय को कुछ लाभ मिल सका तो मेरा सम्पूर्ण श्रम सफल है– मैं धन्य हूँ।

वृन्दावन
कुंजगली
गुरु पूर्णिमा २००७ वि०

– विनयावनत
हितदास

प्राक्कथन

'रस' एक ऐसा विलक्षण तत्व है जो एक होकर भी अनेक रूपों में प्रतिभासित होता रहता है। इसी लिये रस को ब्रह्म कहा गया है– रसो वै स:, (श्रुति...)। भोजन के छ: और साहित्य के नव (नौ) रस तो प्रसिद्ध ही हैं किन्तु इनके सिवाय रस के और भी भेद प्रभेद हो सकते हैं। इसी विचार से श्रीरूप गोस्वामी ने भक्ति को एक रस स्वीकार किया है जो साहित्य के नौ रसों से परे है। महाप्रभु श्री हित हरिवंश चन्द्र कृत 'हित चौरासी' में जिस रस का गान किया गया है वह भक्ति रस से अत्यन्त परे है। जिसके लिये श्रीहरिराम जी 'व्यास' ने कहा है–

नवधा लौं सब भक्ति उबीठी रति भागौत कथा की।
रहनि कहनि सबहिनु तें न्यारी 'व्यास' अनन्य सभा की।।

नवधा में अन्तिम आत्म निवेदन और श्रीमद् भागवत कथित रति–गोपी प्रेम से भी श्रेष्ठ है रसिक अनन्यों की रहनी एवं करनी। जिस रस को धारण करके उपासक 'रसिक अनन्य' कहलाते हैं; वह है वृन्दावन रस। यह वृन्दावन रस सबसे विलक्षण है। इसके समक्ष धर्म अर्थ, काम, मोक्ष, योग ध्यान, धारणा, ज्ञान कर्म सब निस्तेज हो जाते हैं।

इस 'वृन्दावन–रस' का स्वरूप क्या है ? इसके प्राकटय–कर्त्ता आचार्य्य कौन हैं ? इत्यादि प्रश्न पाठकों के लिये आवश्यकीय हैं; अत: इस विषय में प्रथम हम रसिकाचार्य्य वर्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभुपाद का संक्षिप्त जीवन परिचय देकर फिर उनके द्वारा प्रकाशित 'श्रीवृन्दावन रस' की चर्चा करेंगे–

रसिकाचार्य्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र का परिचय –

"श्रीराधा चरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी" श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद का यथार्थ परिचय तो भक्तमाल कार श्रीनाभा स्वामी के इस छप्पय से मिलता है–

श्रीराधा चरन प्रधान ह्रदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दंपती तहाँ की करत खबासी।।
सर्बसु महा प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहिं दासि अनन्य उत्कट ब्रत धारी।।
श्रीव्यास सुवन पथ अनुसरै सोइ भलैं पहिचानि है।
(श्री) हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानि है।।

– श्री नाभा जी

इन दिव्य विभूतियों का लोक परिचय क्या ? ये तो सदा ही अलौकिक हैं। जैसे इनका आगमन नित्य लोक से होता है वैसे ही इनका अन्त्य और नित्य निवास भी नित्य लोक में ही होता है। बीच का जो थोड़ा सा काल आविर्भाव एवं तिरोभाव के रूप में दीख पड़ता है, एक लीला—कौतुक मात्र है। इस काल में ये चाहे संसारी की तरह व्यवहार कर लें; चाहे योगिराज की तरह; इन्हें बन्धन तो मानो छूते ही नहीं। सच तो यह है कि इन्हें जैसा योग वैसा ही भोग। ये नित्य जल कमल वत् हैं। यदि ये भोगी की तरह रह जाते हैं तो उस भोग में भी महान् योग की शिक्षा प्रदान कर जाते हैं और तब इनके योग की तो चर्च्चा ही कौन करे ? इनके जन्म, कर्म,गुण, रूप सभी अपार होते हैं।

किन्तु विश्व—जनों का स्वभाव भी बड़ा विचित्र है जो ऐसी विभूतियों का लौकिक परिचय—जल कमलवत् रहनी की जानकारी किये बिना असन्तोष का अनुभव करता है, तब उन्हें उन्हीं की रीति से परिचय भी देना पड़ता है। इस दृष्टि से हमारे महाप्रभु पाद का जन्म ब्रज मण्डलान्तर्गत मथुरा के समीप 'बाद' नामक ग्राम में विक्रम संवत् १५५९ वैशाख शुल्क एकादशी सोमवार को हुआ था। पिता का नाम व्यास मिश्र और माता का नाम तारा रानी था। व्यास मिश्र कुलीन गौड़ ब्राह्मण थे। विद्वान् होने के नाते प्रतिष्ठित इतने कि तत्कालीन दिल्ली नरेश सिकन्दर लोदी भी जिनका सम्मान किया करता। इनके ज्यौतिष, आयुर्वेद आदि के ज्ञान पर रीझ कर बादशाह ने इन्हें चार हजारी मनसब की निधि प्रदान की थी। किसी समय व्यास मिश्र बादशाह के साथ अपनी राज नगरी देववन (सहारन पुर) से ब्रज मण्डल सकुटुम्ब आये थे, इसी यात्रा काल में श्रीहरिवंश चन्द्र का जन्म 'बाद' में हुआ था। बाद ग्राम

में सुख पूर्वक छः मास निवास करके व्यास मिश्र सपिरवार देव वन चले गये। हरिवंश चन्द्र का बाल्य काल एवं यौवन देव वन में ही बीता।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' के न्याय से श्रीहरिवंश के बाल्यकाल में ही अनेकों चमत्कार देखने में आये। केवल छः मास की अवस्था में "श्रीराधा सुधा निधि स्तव" का गान, तीन वर्ष की आयु में श्री प्रियाजी (राधा) की भावना–ध्यान सिद्धि श्रीराधा द्वारा प्रत्यक्ष भोग आरोगना, फूलमाला प्रसादी देना, नीलाम्बर उढ़ा देना, पाँच वर्ष की आयु में कुए में कूदकर अनन्त श्री ठाकुर रंगी लालजी का श्रीविग्रह निकालना (प्रकट करना) और उनकी सेवा पूजा की सुन्दर व्यवस्था करना; अल्प काल में ही सर्व शास्त्र पारङ्गत हो जाना, आठ वर्ष की आयु में स्वामिनी श्रीराधा से मंत्र ग्रहण करके शिष्य होना इत्यादि बातें इनके अलौकिक स्वरूप को प्रकट करती हैं।

अस्तु; उपवीत संस्कार और विद्याध्ययन के पश्चात् व्यास मिश्र ने आपका विवाह किया। आपकी धर्मपत्नी श्रीरुक्मणी देवी, पूर्ण पति परायणा, सुशीला और भक्ता थीं अतः उनके संग से आपको राधा भक्ति के प्रचार में अच्छी सहायता मिली। स्वामिनी श्रीराधा की आज्ञानुसार आपने अपने देश में विशुद्ध प्रेम लक्षणा श्रीराधा भक्ति का प्रचार किया। इस तरह घर में ही आपकी आयु बत्तीस वर्ष की हो गयी। इस बीच में आपके तीन पुत्र और एक पुत्री ने जन्म ग्रहण किया ; जिनके नाम क्रमशः श्रीवन चन्द्र, कृष्ण चन्द्र गोपीनाथ और साहिब देवी हैं।

विपुल सम्पत्ति, योग्य सन्तति, अनुकूल पत्नी और सबसे विशिष्ट राज प्रतिष्ठा का भी परित्याग करके आप बतीस वर्ष की आयु में लोक कल्याण की भावना से श्रीवन के लिये विदा हुए। किन्तु श्रीकृष्ण की अचिन्त्य लीला शक्ति ने अपना काम किया। आपको एक की जगह दो दो कन्याओं से विवाह करना पड़ा। दहेज में अपार सम्पत्ति के साथ श्रीराधा वल्लभ जी का श्रीविग्रह भी मिला। आत्मदेव अपनी दोनों कन्याएँ श्रीकृष्ण दासी एवं मनोहरी दासी को श्रीहरिवंश चन्द्र को समर्पित कर भजन करने हिमालय चले गये और आप प्रभु विधान को सहर्ष स्वीकार कर समस्त समाज के साथ श्रीवन आये। विक्रम संवत् १५९१ कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को आपने श्रीवन में प्रथम निवास

किया। व्रज वासियों ने आपका खूब आदर सत्कार किया, रहने को भूमि दी, कुटियाएँ निर्माण कीं, और तन, मन धन से आपकी सेवा में लग गये। भै गाँव के राजा नरवाहन जी तो आपके स्वरूप पर मुग्ध होकर मंत्र शिष्य ही हो गये। अब आचार्य्यपाद अपने परिकर सहित श्रीवन में सुख पूर्वक निवास करने लगे।

आपके श्रीवन आगमन के एक वर्ष पश्चात् संवत् १५९२ कार्तिकारम्भ में ओरछे के राज पण्डित श्रीहरिराम व्यास श्रीवन आए और आचार्य्यपाद के शिष्य हो गए। स्वामी श्रीहरिदास से भी श्रीहिताचार्य्य की गाढ़ी प्रीति हो गयी। तत्पश्चात् श्रीमत् प्रबोधानन्द सरस्वती पाद ने आपकी शरण ग्रहण की और इस प्रकार श्रीवृन्दावन रसिक अनन्यों का खासा अखाड़ा बन गया। इनमें से श्रीहरिवंशी श्रीहरिदासी का योग मानों मणि काञ्चन योग हुआ और उसमें व्यासजी के मिलने पर यह रसिक संगम 'रसिक त्रिवेणी' के नाम से प्रख्यात हो गया।

अस्तु; श्रीहिताचार्य्य पाद श्रीवन में अठारह वर्ष संवत् १६०९ विक्रम तक विराजमान् रहे और शारदीय पूर्णिमा को आप अपने नित्य परिकर में चले गये। आपने अपने १८ वर्ष श्रीवन वास के जीवन में जिस रस की धारा बहायी वह रस–'वृन्दावन रस' के नाम से प्रख्यात है। वह आपके ग्रन्थ श्रीराधा सुधा निधि, हित चौरासी एवं स्फुट वाणी के रूप में प्राप्त है। इस वृन्दावन रस को समझने के लिये पाठकों को तीन बातों का जानना आवश्यक है--

१. श्रीहित हरिवंश का इष्ट तत्व

२. श्रीहित हरिवंश का उपासना भाव

और ३. नित्य विहार का स्वरूप

अतः अब हम इन तीनों का क्रमशः संक्षिप्त वर्णन करेंगे--

श्रीहित हरिवंश का इष्ट तत्व–

श्रुति ने जिसे–रसो वै सः रस रूप ब्रह्म कहा है वह रस ब्रह्म वृन्दावन विलासी श्रीकृष्ण है। ये श्रीकृष्ण समस्त श्रुति स्मृति पुराण एवं तन्त्रादिकों से प्रतिपादित सार–सारतत्व हैं किन्तु फिर उनसे अलक्षित भी हैं। उनके लीला

विहार स्वरूप को अचिन्त्य और अतर्क्य समझ कर ही इन्हें श्रुतियाँ 'नेति नेति' कह कर पुकारती हैं। इसी प्रकार–

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

– श्रुति

अर्थात् "जिस तक वाणी नहीं पहुँच सकती और जो मन एवं इन्द्रियों से भी अप्राप्य है।" ऐसा कहकर श्रीकृष्ण के विहारी स्वरूप का ही संकेत किया गया है। यह विहारी श्रीकृष्ण रूप, रस, शृंगार, माधुर्य्य, अनुराग एवं भाव की परावधि है।

किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसा परात्पर तत्व, अव्यक्त ब्रह्म विहारी श्रीकृष्ण भी किसी अनिर्वचनीय दिव्या किशोरी मणि के श्रीचरणों में अपना शिखि पिच्छ विलुण्ठित करते देखा जाता है।[1] यह श्रीकृष्ण वन्दिता, आराधनीया श्रीराधा ही रसिकाचार्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र की इष्ट आराध्या हैं। इनके तात्विक रूप का वर्णन करते हुए आपने बताया है–

प्रेम्णः सन् मधुरोज्वलस्य हृदयं शृंगार लीला कला,
वैचित्री परमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता।
ईशानी च शची महा सुख तनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा,
श्रीवृन्दावन नाथ पट्ट महिषी राधैव सेव्या मम।।

श्रीराधा सुधानिधि, श्रो.–७८

अर्थात् "जो मधुर एवं उज्वल प्रेम की प्राण स्वरूपा, शृङ्गार लीला कलाओं की विचित्रता पूर्ण परम अवधि भगवान् श्रीकृष्ण की भी आराधनीया और अनिर्वचनीय शासन कर्त्री हैं। जो ईश्वर रूप श्रीकृष्ण की शची तथा परम सुख मय वपु धारिणि परा एवं स्वतन्त्रा शक्ति हैं। श्रीवृन्दावन नाथ श्रीकृष्ण की पट्ट–महिषी श्रीराधा ही मेरी सेव्या–आराधनीया स्वामिनी हैं।"

---

1 रसघन मोहन मूर्त्ति विचित्र केलि महोत्सवोल्लासितम्।
राधा चरण विलोडित रुचिर शिखण्डं हरि वन्दे।।

–श्रीराधा सुधा निधि, श्लोक २००

इन श्रीराधा ने श्रीकृष्ण को निरन्तर अपने वश में कर रखा है। श्रीकृष्ण सदा इनके प्रति चाटुकारी करते रहते हैं, प्रार्थना एवं स्तुति करते हैं और बार–बार उनके चरणों में लोट जाते हैं–

केनापि नागर वरेण पदे निपत्य संप्रार्थितैक परिरम्भ रसोत्सवाया:।
सभ्रूविभङ्गमतिरंङ्गनिधे: .... ।।

श्रीराधा सु. ९

अर्थात् "हे राधिके ! कोई चतुर शिरोमणि किशोर आपके श्रीचरणों में बारम्बार गिरकर आपसे परिरम्भण सुखोत्सव की याचना कर रहे हों....।"

और

किंचैकं बहु मान भङ्गि रसवच्चाटूनि कुर्वत् परम्।

अर्थात् "एक (श्रीकृष्ण) रस पूर्ण वचनों के द्वारा चाटुकारी परायण हैं और दूसरी (श्रीराधा) अत्यन्त मानभङ्गिमा युक्त।"

इसी प्रकार

कालिन्दी तट कुञ्ज मन्दिर गतो योगीन्द्र वद्यत्पद–
ज्योतिर्ध्यान पर: सदा जपति यां प्रेमाश्रु पूर्णो हरि:।

श्रीराधा सुधा निधि ९५

अर्थात् "योगीन्द्रों के समान जिनकी चरण ज्योति के ध्यान परायण होकर प्रेमाश्रु पूर्ण नेत्र तथा गद्‌गद् वाणी से कालिन्दी तट के किसी निकुञ्ज मन्दिर में विराजमान् श्रीहरि भी स्वय जिस राधा नाम का जप करते हैं।"

इतना ही नहीं श्रीकृष्ण तो सदैव श्रीराधा कृपा की वाञ्छा करते रहते हैं–

नैंकु प्रसन्न दृष्टि पूरन करि नहिं मोतन चितयौ प्रमदा तैं।
(जै श्री) हित हरिवंश हंस कल गामिनि भावै सो करहु प्रेम के नातैं।।

– हित चौरासी, पद सं ७३

भाव यह है कि श्रीकृष्ण के हृदय में यह लालसा शेष ही रही आती है कि मेरी स्वामिनी ने कभी प्रसन्नता एवं कृपा पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर नहीं देखा।

अस्तु, उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहितहरिवंश चन्द्र की आराध्या श्रीराधा हैं जो कि श्रीकृष्ण आराध्या , परा एवं स्वतन्त्रा शक्ति ही नहीं वरन श्रीकृष्ण की भी शासन कर्त्री और प्रेम रस (की भी) हृदय रूपा हैं। पुराणों एवं श्रुतियों में राधा के जिस रूप का वर्णन है वह रसिकाचार्य्य श्रीहित हरिवंश को स्वीकार नहीं है क्योंकि वहाँ श्रीराधा का स्वरूप श्रीकृष्ण आराधिका (विशेष प्रेमी भक्ता) मात्र है। अतएव श्रुति अनुमोदित राधा के रूप के भाव को अस्वीकार (गौण) करके आपने श्रीराधा का रूप श्रुति शेखर, श्रुति हृदय और श्रुति अलक्षित ही अपने ग्रन्थों में यत्र तत्र बताया है देखिये–

(१) अलक्ष्यं राधाख्यं निखिल निगमैरप्यातितरां
रसाम्भोधेः सारं...

अर्थात् "राधा नामक कोई रसाम्भोधि सार तत्व समस्त वेदों को भी अत्यन्त अलक्षित है।"

(२) यद वृन्दावन मात्र गोचरमहो यन्नश्रुतीकं शिरो–
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिव शुकादीनां तु यद्ध्यानगम्।।

अर्थात् "जो केवल श्रीवृन्दावन मात्र में दृष्टि गोचर होता है; जिसका वर्णन करने में श्रुति शिरोभाग उपनिषद् भी समर्थ नहीं हैं, जो शुक शिवादि के भी ध्यान में नहीं आता।"

(३) श्रीराधा श्रुति मौलि शेखर लता नाम्नी मम प्रीयताम्।

अर्थात् श्रीराधा नामक श्रुति मौलि शेखर लता मुझ पर प्रसन्न हों।"

श्रीहिताचार्य्य पाद की राधा केवल वेदों से ही अलक्षित नहीं वरं वेद वादियों और वेद प्रतिपाद्य ब्रह्म से भी अलक्षित है–

ब्रह्मेश्वरादि सुदुरूह पदारविन्द श्रीमत्पराग परमाद्भुत वैभवायाः।
सवार्थसार रस वर्षि कृपार्द्र दृष्टेस्तस्या नमोस्तुवृषभानु भुवोमहिम्ने।।

– श्रीराधा सुधा निधि, श्लोक२

अर्थात् "जिनके चरण कमल ब्रह्मा शङ्कर आदि के लिये भी अत्यन्त सुदुरूह हैं,.......मैं उन्हीं श्रीवृषभानु नन्दिनी जू की महिमा को नमन करता हूँ।"

और इसीलिये आपने समस्त आर्ष पौरुषेय ग्रन्थों एवं समस्त आचार्य्यों के मतों का खण्डन सा करते हुए श्रीराधा के प्रकृष्ट रूप का वर्णन किया है। देखिये–

श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे
स्वस्तोत्र स्वकृपात एव सहजोयोग्योप्यहं कारितः।
पद्येनैव सदापराधिनि महन्मार्गं विरुद्धयत्वदे–
काशेस्नेह जलाकुलाक्षि किमपि प्रीतिं प्रसादी कुरू।।

–श्रीराधा सुधा निधि श्लोक २६९

अर्थात् "श्रीराधे ! आपका वैभव श्रुतियों, बुध जनों एवं स्वयं भगवान् के लिये भी अन्वेषणीय है किन्तु फिर भी आपकी कृपा के द्वारा आपका स्तोत्र पद्य रूप करने के लिये मैं सहज योग्य बना दिया गया अतएव हे स्नेह जल पूर्ण आकुल नयनि! सदापराधी एवं महत् मार्गों का भी विरोध करके एक मात्र तुम्हारी ही आशा रखने वाले मुझ पर अपनी अनिर्वचनीय कृपा प्रीति का प्रसाद कीजिये।"

जिन शास्त्रों, श्रुतियों एवं आचार्य्यों द्वारा राधा का यह प्रकृष्ट रूप न देखा जाने से सामान्य किंवा लघु रूप से वर्णित कर दिया गया, उसके लिये आपने आश्चर्य एवं पश्चाताप भी प्रकट किया–

यत्पादाम्बुरुहैक रेणु कणिकां मूर्ध्ना निधातुं न हि
प्रापुर्ब्रह्म शिवादयोप्यधिकृतिं गोप्यैक भावाश्रयाः।
सापि प्रेम सुधा रसाम्बुधि निधी राधापि साधारणी–
भूता काल गति क्रमेण बलिना हे दैव तुभ्यं नमः।।

श्रीराधासुधा निधि श्लोक ७२

अर्थात् "ओ दैव ! तुझे नमस्कार है। धन्य है तेरी महिमा !! जिससे प्रेरित होकर काल क्रम के प्रभाव वश प्रेमामृत–रस–समुद्र श्रीकृष्ण की भी निधि श्रीराधिका साधारण हो गयीं ! अहो ! जो गोपियों के भावों की एकमात्र आश्रय हैं, जिनके चरण–कमलों की रेणु के कण मात्र को ब्रह्मा शिव आदि भी अपने सिर पर धारण करने की इच्छा रखते हुए भी प्राप्त नहीं कर पाते।"

ऐश्वर्य की दृष्टि से श्रीराधा श्रुतिशेखर लता श्रुति अलक्षित, ब्रह्मा शंकर नारदादि से अगम्य, श्रीकृष्ण वन्दिता हैं। माधुर्य्य दृष्टि से प्रेम रस की अधिष्ठात्री, श्रीकृष्ण को भी अपने रस दान से रसिक बनाने वाली और सौन्दर्य्य माधुर्य्य, लावण्य, कारुण्य सुख, छबि, रूप, वैदग्ध्य एवं रति केलि विलास की सार रूपा हैं। जिनका वसनाञ्चल वयार स्पर्श प्राप्त करके योगीन्द्र दुर्गम गति मधुसूदन भी कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं। इनकी चरण रज में श्रीकृष्ण को भी वश में करने की विलक्षण शक्ति है। वैसे तो ये ब्रह्मेश्वरादि दुर्गम हैं तथापि कृपा परवश वृषभानु भवन में प्रकट भी हो जाती हैं तब इनकी चरण रज को गोपियाँ भी धारण करके अपने मनोभिलिषत पदार्थ–रसिक शेखर श्रीकृष्ण को प्राप्त कर सकती हैं। ये राधा कन्दर्प कोटि शर मूर्च्छित नन्द नन्दन की जीवन दात्री संजीवनी हैं। अनन्त भाव भङ्गिमाओं की निधान एवं पूर्णानुराग सागर सार मूर्त्ति होने से इनके अंङ्ग अङ्ग से रस के अमित समुद्र लहरियाँ लेते रहते हैं और लता निकुंज में विराजित कृपा रस पुंज की वृष्टि करती रहती हैं। कोक कलाओं में अतिशय प्रवीण होने से सदा ही सुरत रङ्गिणि बनी रहती हैं प्रियतम उदधि से सङ्गम करने की लालसा नित्य धावमान हैं इनमें।

इन निकुंज अधीश्वरि के चरणों को हृदय में धारण करके श्रीकृष्ण अपने तीव्र स्मर ताप को शान्त करते हैं। यही चरण अपने आश्रित वर्ग के लिये सदा उज्वलतम प्रेम का प्रवाह प्रवाहित करते रहते हैं, अतएव श्रीराधा आश्रितों की चिन्तामणि व्रज नागरियों की चूडामणि, वृषभानु वंश की कुल मणि, सकामी श्याम की शान्ति मणि और हित हरिवंश की हृदय मणि हैं।

अखिल सौन्दर्य्य राशि श्रीराधा जब अपने प्रियतम से बातों के रंग में ढलती हैं तो अरुण होठों से सौन्दर्य्य की अपार राशि निकल निकल कर चारों ओर फैल जाती है। ताम्बूल रंजित दंतावली, सिन्दूर अलंकृत मौक्तिक पंक्ति की शोभा को भी तिरस्कृत करने लगती है। जिनके संलाप में अनन्त अनंग तरंग मालाएँ क्षुभित हो उठतीं और अक्षर प्रत्यक्षर में अपार रस का समुद्र प्रस्रवित होने लगता है। ये अपनी माधुर्य्य स्निग्ध वाणी से निकुञ्ज भवन ही

नहीं समस्त जड़ चेतनमय जगत को संप्लावित कर देती हैं। आपकी चारु मूर्त्ति अनन्त विद्युल्लताओं जैसी पीतारुण और प्रौढ़ अनुराग मद से पूर्ण विह्वल रही आती है। नव यौवन के नित्य विकास में युगल कनक कलशों का सोल्लास विलास ? मानों सघनतम अनुराग सार सरोवर का कमल मुख चन्द्र की कौमुदी प्राप्त करके फिर अपनी छाती चीर कर दो हो गया है। आपके युगल कुच कलश, क्रीड़ा सरोवर के दो कमल कुड्मल हैं अथवा स्वानन्द पूर्ण रस कल्पतरु के दो फल जो भुवन मोहन को भी मोहित करते रहते हैं। कितना लावण्य है राधा सुन्दरी के नेत्र संचलन में कि जिनके कटाक्ष शर–पात से श्याम सुन्दर का वेणु हाथ से गिर पड़ता, पीताम्बर श्री अङ्गों से खिसक पड़ता, सिर से मयूर–पिच्छ स्खलित हो जाता और वे अन्ततः मूर्च्छित होकर गिर भी पड़ते हैं। ये हैं तो अबला (किन्तु इनकी बल–राशि का कोई माप है?) सौन्दर्य्य बल राशि का चमत्कार तो देखिये–

देखौ माई ! अबला के बल–रासि।
अति गज मत्त निरंकुस मोहन निरखि बँधे लट पासि।।
अबही पंगु भई मन की गति बिनु उद्दिम अनियास।
तब की कहा कहौं जब पिय प्रति चाहति भृकुटिविलास।।
कच संजमनि ब्याज भुज दरसति मुसकनि बदन विकास।
हा हरिवंश ! अनीति रीत हित कत डारति तन त्रास।।

–हित चौरासी, पद सं० ५३.

नित्य नव कैशोर से उल्लसित श्रीराधा समस्त व्रज सुंदरियों की चूड़ामणि हैं। अपने श्रीमुख की ज्योत्सना से आप मानो शरत् कालीन अनन्त चन्द्रमाओं का प्रकाश विस्तार करती रहती हैं। श्रीराधा ने अपनी चञ्चल भ्रूभङ्गी के लेश मात्र से ही व्रज मणि श्रीकृष्ण को अपना वशवर्त्ती कर रखा है। श्रीहिताचार्य्य पाद कहते हैं–

देखौ माई सुंदरता की सीवाँ।
ब्रज नव तरुनि कदंब नागरीं निरखि करतिं अध ग्रीवाँ।।
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै रसना कोटिक पावै।
तऊ रुचिर वदनारविंद की सोभा कहत न आवै।।

देव लोक भूव लोक रसातल सुनि कवि कुल मति डरिये।
सहज माधुरी अंग अंग की कहि कासौं पटतरिये।।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रताप रूप गुण वय बल स्याम उजागर।
जाकी भ्रू विलास बस पसुरिव दिन विथकित रस सागर।।

–हित चौरासी पद सं. ५२

जिनके तारुण्य प्रवेश काल में किये गये एक एक भृकुटि–नर्त्तन से अत्यन्त दर्प पूर्ण महा कोदण्ड की टङ्कार मानो शनैः–शनैः विस्फारित होती रहती है जिससे निरन्तर कोटि कोटि कन्दर्प उत्पन्न होते रहते हैं, ऐसी ऐसी अनन्त माधुर्य्य धाराओं से चमत्कृत हैं श्रीराधा स्वामिनी।

चातुर्य की तो मानो खानि ही हैं; इसके सिवाय भ्रूनर्त्तन की चातुरी, चारु नेत्राञ्चलों की खेलन चातुरी,नव नव क्रीड़ा कलाओं की चातुरी, सङ्केत आगम की चातुरी, और सखि जनों में परिहासादि की चातुरी सभी इनके एक से एक है। जिन व्रज–सुंदरियों की लीलाओं में कोटि–कोटि लक्ष्मी समूहों के विशेष लक्षणीय लक्षण शोभा पाते हैं, उन्हीं शत–शत किशोरियों की आराध्या हैं श्रीराधा। उज्वल रस के प्रारम्भिक भाव का सिंचन करता हुआ अति मधुर ज्योतिः स्वरूप है यह राधा तत्व। जो सदा श्यामानुराग मद से विह्वलाङ्ग बना रहता है। आश्चर्य्य है प्रियतम के अङ्क में विराजित होने पर भी प्रेम वैचित्य वश हा मोहन ! हा मोहन !!" इस प्रकार अकस्मात् पुकारने लगती हैं आप। ऐसी श्रीराधा, श्याम सुन्दर के भी रति प्रवाह की बीज स्वरूपा हैं और प्रेम की प्राण स्वरूपा, श‍ृङ्गार लीला कलाओं की अवधि स्वरूपा हैं। इनके इस माधुर्य्य स्वरूप के समक्ष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, वेद कथा और नवधा भक्ति भी व्यर्थ चर्चा है। इन्हें–इनकी चरण–रेणु को ब्रह्मा शंकर, लक्ष्मी शुक नारद ओर सनकादि तो पा ही क्या सकेंगे, वात्सल्य और सुहृद भाव वाले, दास लोग और ऐश्वर्य उपासक कोई भी नहीं पा सकते। यह स्वरूप तो केवल दासी भाव वालों को ही सुलभ है। श्रीराधा चरण किंकरी का भाव सर्वोपरि है जिसके समक्ष विषय चर्चा कोटि–कोटि नरकों जैसी वीभत्स, वेद–कथा नीरस केवल श्रम और कैवल्य मोक्ष भय दायक प्रतीत होने लगता है और तो और परम पुरुष श्रीकृष्ण के भजनोन्मादी शुकादि भी निष्प्रयोजनीय आभासित होने लगते हैं।

यह वे राधा हैं, जिनके नाम का एक बार भी उच्चारण कर लेने पर सबका आकर्षण करने वाले श्रीकृष्ण भी राधा नाम जापक के पास अपने आप आकर्षित हुए चले आते हैं। तब फिर उस साधक को समस्त पुरुषार्थों में तुच्छता का स्फुरण होने लगता है। श्रीकृष्ण स्वयं भी इस नाम का जप करते हैं, सखि जनों के मुख से इस राधा नाम का गान सुना करते हैं, वे कभी कालिन्दी के तट पर बैठ कर योगीन्द्रों की भाँति इसका ध्यान करते और प्रेमाश्रु पूर्ण हो जाया करते हैं तो कभी अति रसानन्द के कारण आनन्द मग्न हो जाया करते हैं। यह राधा नाम देवताओं भक्तों, मुक्तों और श्रीकृष्ण सुहृदों से भी अत्यन्त दूर है। इस राधा नाम की महिमा अनिर्वचनीय है। इस नाम के प्रताप से राधा नाम का गान–स्मरण करने वाले को प्रियतम श्रीकृष्ण अदेय वस्तु देकर भी उसके ऋणी हो जाया करते हैं और उसके अनन्त एवं लेखा न कर सकने लायक अपराधों को तत्काल ही क्षमा करके उसे अपना बना लेते हैं। श्रीहिताचार्य्य पाद कहते हैं–

अनुल्लिख्यिानन्तानपि सदपराधान्मधुपति
र्महाप्रेमाविष्टस्तव परम देयं विमृशति।
तवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृत रसं
महिम्न: क: सीमां स्पृशति तव दास्यैक मनसाम्।।

श्रीराधा सुधा निधि श्लो. १५४

अस्तु; श्रीराधा एक अद्भुत रस तत्व है। जो लावण्य की परम अद्भुतता से परिपूर्ण है, जिसमें लीला गति दृग्भङ्गी, हास आदि की अद्भुतता विराजमान है। जब अद्भुत प्रणय–कोप से आकुल होती हैं तब महा रसिक–मौलि श्रीलालजी सभय कौतुक दृष्टि से देखते ही रह जाते हैं। आपका सौन्दर्य्य भी अत्यद्भुत है। श्रीमुख के अनुपम रसानन्द कन्द चन्द्र की चन्द्रिका के कला–अणु मात्र से ही पूर्णिमा का चन्द्र तुच्छ हो जाता है। अरे ! एक चन्द्र की तो बात ही क्या ? यदि अनेक अनेक राकाशशि एक साथ उदित होकर अपनी प्रेमामृतमयी ज्योति तरङ्गों से अगणित कोटि ब्रह्माण्डों को आपूरित कर दें, तो शायद इन विचित्र चन्द्र समूहों की श्रीराधा मुखचन्द्र की एक किरण से उपमा दी जा सकेगी।

ऐसी परम सुन्दरी श्रीराधा कालिन्दी–कूल वर्त्ती कल्पद्रुम तल भवन में होने वाली केलि–विलास–कला की मूल स्वरूपा हैं। ये एकान्त सहचरी ललितादिकों के भी भावों से परम अगम्य हैं तथा घनीभूत आनन्द की मूर्त्ति तो हैं ही पूर्ण एवं अभिनव प्रेम लक्ष्मी भी हैं। ये प्रेम–लक्ष्मी श्रीराधा श्रीकृष्ण के अधर रस का पान करके सदा उन्मत्त बनी रहती हैं। इनकी पद नखच्छटा का लव मात्र ही समस्त श्यामा–रमणी मण्डल का जीवन है। केलि विभव पूर्ण विलास मूर्त्ति होने के साथ–साथ अधिकाधिक उन्मीलित महामाधुरी के प्रवाह सम्पतन को धारण करने में पूर्ण समर्थ हैं। अतएव माधुर्य्य साम्राज्य की एक मात्र भूमि और रस की एक मात्र सीमा है। इनके अंग–अंग से उज्वल प्रेम रस, लावण्य, महानतम कृपापूर्ण वात्सल्य सार की धाराम्बुधियाँ प्रवाहित होती रहती हैं श्रीराधा वेदों की हृदय–धन–वह संगुप्त निधि हैं कि जिनकी किंचित चरण–कृपा से समस्त श्रुत–अश्रुत विभव तुच्छ होकर मुक्ति भी तुच्छ प्रतीत होने लगती है।

इन्होंने अपने किञ्चित–केलि–विलास पूर्ण कटाक्ष से वृन्दा–विपिन कलभेन्द्र श्रीश्यामसुन्दर को अपना आज्ञा वशवर्त्ती जड़ीभूत क्रीड़ामृग सा बना रखा है; इसीसे आप गोपेन्द्र–कुमार श्रीकृष्ण की सम्मोहन विद्या हैं क्योंकि इनके नेत्र प्रान्त से माधुरी सार का मानो प्रवाह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। ये मद–अरुण विलोचना श्रीराधा सदा ही प्रणय–माधुरी के रस विलास के लिये उल्लास पूर्ण रही आती हैं और सदा नवीन वयः श्री एवं ललित भाव भङ्गिमा को धारण किये रहते हैं। श्रीराधा के श्रीसम्पन्न अधरों से नव नव सुधा माधुरी के कोटि–कोटि प्रवाह प्रवाहित होते रहते हैं। नेत्र कोणों से पुष्प–धन्वा कामदेव के कोटि कोटि प्रचण्ड शर बिखरते रहते हैं। श्रीवक्षोज से अति प्रमत्त रति–कला का सार सर्वस्व भी शोभा प्राप्त किया करता है। और श्रीचरणों से कोटि–कोटि प्रेम पीयूष प्रवाह निरवधि रूप से प्रवाहित होते रहते हैं। श्रीराधा के लास्य गति पूर्ण इन श्रीचरणों में श्रीहरि के कर कमलों से अलक्तक रस रंजित किया जाता है। ये श्रीचरण अनेक विदग्धा गोप रमणियों द्वारा और श्रीहरि के द्वारा वन्दित हैं। महाप्रेम मयी, एवं उन्मद मदन रसमयी श्रीराधा के श्रीचरण–नखच्छटा–प्रवाह में स्नान कर लेने पर भक्त एवं रसिक–हृदयों में

किसी अनिर्वचनीय सरसा एवं परम चमत्कारिणी भक्ति–प्रेम लक्षणा का उदय हो जाता है।

अस्तु, इस प्रकार रसिकानन्य नृपति चक्र चूड़ामणि गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभुपाद की आराधनीया स्वामिनि श्रीराधा श्रुति शास्त्रों से परे, बुधजन अलक्षित एवं श्रीकृष्ण की भी वन्दनीया हैं, इसलिये सर्वापेक्षा विलक्षण हैं। इसीलिये आचार्य्यपाद ने कहा है–

सुनि मेरौ वचन छबीली राधा।
तैं पायौ रस सिंधु अगाधा।।
तू बृषभानु गोप की बेटी।
मोहन लाल रसिक हँसि भेटी।।
जाहि विरंचि उमापति नाये।
तापैं तैं बन फूल बिनाये।।
जो रस नेति–नेति श्रुति भाख्यौ।
ताकौ तैं अधर सुधा रस चारव्यौ।।
तेरौ रूप कहत नहिं आवै।
(जै श्री) हित हरिवंश कछुक जस गावै।।

– हित चौरासी पद सं० १८

अस्तु; अब यह देखना है कि उक्त कथित श्रीराधा की उपासना करने का भाव क्या है और ऐसे उपासकों का स्वरूप क्या है ? अतः नीचे श्रीहित हरिवंश के उपासना सम्बन्धी सखी भाव का किंचित निर्देश किया जाता है–

श्रीहिताचार्य्य पाद का उपासना भाव–

श्रीकृष्णोपासना सम्बन्धी पाँच भाव क्रमशः शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य्य जिनमें मधुर सबसे श्रेष्ठ है। यह भाव शृङ्गार उपासना का ही भाव है अतः रस की चरम अवधि है ऐसा श्रीकृष्ण शृङ्गारोपासना के समस्त आचार्यों ने स्वीकार किया है। इसमें शृङ्गार के आलम्बन हैं श्रीकृष्ण अर्थात् वे आश्रय तत्व हैं और गोपीजन एवं श्रीराधा विषय अर्थात् उपासक हैं। इसे कान्त या जार भाव के रूपों में स्वकीया एवं परकीया भाव के नाम से तत्तत् आचार्यों ने

स्वीकार किया है क्योंकि श्रीकृष्ण शृङ्गारोपासना इन्हीं सम्बन्धों में बन भी सकती है। इनके सिवाय उसकी और कोई गति भी नहीं है।

किन्तु श्रीहिताचार्य्य पाद का रसोपासना सिद्धान्त उक्त दोनों—स्वकीया—परकीया सिद्धान्तों से सर्वथा भिन्न है। जहाँ उक्त भावों के आचार्य्य गण श्रीकृष्ण को आश्रय मानते हैं वहाँ ये श्रीराधा को आश्रय मानते हैं और श्रीकृष्ण एवं सखि जनों को विषय अर्थात् रसोपासक। जैसा कि उनके वचनों में स्पष्ट है—

प्रेम्ण : सन् मधुरोज्वलस्य हृदयं शृङ्गार लीला कला,
वैचित्री परमावधिर्भगवत: पूज्यैव कापीशता।
ईशानी च शची महासुख तनु: शक्ति: स्वतंत्रा परा,
श्रीवृन्दावन नाथ पट्ट महिषी राधैव सेव्या मम।।

अर्थात् "जो मधुर और उज्वल प्रेम की प्राण रूपा, शृङ्गार लीला कलाओं की विचित्र अवधि भगवान श्रीकृष्ण की भी आराधनीया और अनिर्वचनीय शासन कर्त्री हैं। जो ईश्वर रूप श्रीकृष्ण की शची तथा परम सुखमय वपु धारिणी परा और स्वतंत्रा शक्ति हैं। श्रीवृन्दावन नाथ श्रीकृष्ण की पट्टरानी श्रीराधा ही मेरी—अर्थात् सखि समुदाय की सेव्या—आराधनीया हैं।"

उपरोक्त कथन में "भगवत: पूज्यैव" और" राधैव सेव्या मम" विचारणीय है। स्पष्ट है कि श्रीराधा केवल सखियों की ही नहीं वरं श्रीकृष्ण भगवान् की भी आराधनीया हैं अत: यहाँ आश्रय तत्व श्रीराधा और विषय—आराधक तत्व श्रीकृष्ण एवं सखिजन अपने आप बन जाते हैं। इन रस मूर्त्ति श्रीराधा की आराधना करने के ही कारण श्रीकृष्ण एवं सखिजन रसिक कहे जाते हैं। इस 'रसिक' शब्द का प्रयोग आपने अपने सम्पूर्ण ग्रन्थों में राधा के लिये कहीं भी न करके श्रीकृष्ण एवं सखिजन के ही लिये किया है; देखिये—

(१) खेलत रास रसिक ब्रज मण्डन।

हित चौरासी प. १९

(२) जै श्री हित हरिवंश रसिक ललितादिक,
लता भवन रंधनि अवलोकत,

हित चौरासी प. ७२

(३) रास में रसिक मोहन बने, भामिनी।

–हित चौरासी पद ६८;

(४) अधर पान परिरंभन अति रस आनँद मगन सहेली।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक सचु पावत देखत मधुकर केली।।

–हित चौरासी पद ६३.

उक्त चारों प्रसंगों में दो बार श्रीकृष्ण के लिये, एक बार सखि ललितादिकों के लिये और एक बार उपासक किंवा सखियों के लिये 'रसिक' शब्द का प्रयोग किया गया है।

यों तो श्रीराधा भी रस विलास मूर्त्ति हैं अत: रसिक हैं, किन्तु सैद्धान्तिक पक्ष में वे रस रूपा किंवा रस दाता रस की अधिष्ठात्री हैं। यह रसिक समाज स्वसुख के अनुसन्धान से सर्वथा रहित है। श्रीहिताचार्य्य पाद ने इस ओर खासा संकेत दिया है–

(१) अंसनि पर भुज दियें विलोकत इंदु वदन विवि ओर।
करत पान रस मत्त परस्पर लोचन त्रिषित चकोर।।
पग डगमगत चलत वन विहरत रुचिर कुंज घन खोर।
जै श्री हित हरिवंश लाल ललना मिलि हियौ सिरावत मोर।।

– हित चौरासी पद ३१

(२) मुखर नूपुरनि सुभाव किंकनी विचित्र राव,
विरमि विरमि नाथ वदत वर विहार री।।

– हित चौरासी पद ७६

उक्त दोनों पद्यों में "लाल ललना मिलि हियौ सिरावत मोर' और "विरमि विरमि नाथ बदत वर विहार री" पद्यांश तत्सुख भावना के ज्वलन्त उदाहरण हैं। तत्सुख भावना और रसिकता का चोली दामन का सम्बन्ध है। विना तत्सुख भावना के रसिकता सिद्ध ही नहीं हो सकती क्योंकि रसिक वही कहला सकता है जो अपने को मिटा दे। रसिक की परिभाषा करते हुए भगवत रसिक जी ने लिखा है–

जीव ईस मिलि दोइ, नाम रूप गुन परिहरै।
रसिक कहावै सोइ, ज्यौं जल घोरैं शर्करा।।

दिया कहै सब कोइ, तेल तूल पावक मिलै।
तमहिं नसावै सोइ, वस्तु मिलैं भगवत रसिक।।

इसीलिये श्री सेवक जी तत्सुख भावना पूर्ण सखी भाव के उपासकों के सिवाय किसी अन्य भाव वालों को रसिक स्वीकार ही नहीं करते। यहाँ तक कि स्वकीया एवं परकीया सम्बन्ध से गोपी भाव की उपासना करने वाले भी रसिक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उनमें श्रीकृष्ण से रमण आदि स्वसुख भाव का पूर्ण अनुसन्धान है–

रसिक बिनु कहें सबही जु मानत बुरौ,
रसिकई कहौ कैसे जु जानी।
आप आपनी ठौर जेई तहाँ।
आपनी बुद्धि के होत मानी।।
निपट करि रसिक जो होहु तैसी कहौ
अब जु सुनौ यह मेरी कहानी।
जौऽरु तुम रसिक रस रीति के चाड़िले,
तौऽरु मन देहु हरिवंश बानी।।

– सेवक वाणी, वाणी प्रताप प्रकरण

अस्तु, इस रसिक समाज में से श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण का सम्बन्ध रस सम तुल्यता का है, यथा–

आजु बन क्रीड़त स्यामा स्याम।
सुभग बनी निशि शरद चाँदनी रुचिर कुंज अभिराम।।
खंडन अधर करत परिरंभन ऐंचत जघन दुकूल।
उर नख पात तिरीछी चितवन दंपति रस सम तूल।।

हित चौरासी पद ३२

रसिकाचार्य्य श्रीहित जू के मत से रस सम तुल्य दम्पति के विहार की सम्पन्नता सखियों के हाथ में है; मानो वही विहार यंत्र की संचालिका हैं। पारस्परिक तत्सुख भाव के विचार से यों भी कहा जा सकता है कि युगल किशोर सखियों के सुख के लिये ही इस विहार की रचना करते हैं क्योंकि सखियाँ भी तो दोनों में विहार सम्पन्न होता देख कर हर्षित होती हैं; उनके तन

मन एवं प्राण सुख से भर जाते हैं। इन सखियों की यही तो विलक्षणता है कि ये गोपियों की भाँति परस्पर में ईर्ष्या, डाह और मत्सर नहीं करती जैसा कि ब्रज के विहार में देखा जाता है। अब आचार्य्य पाद के एक पद में युगल केलि के समय सखियों की तत्सुख पूर्ण दशा का दर्शन कीजिये—

सुंदर पुलिन सुभग सुख दाइक।
नव नव घन अनुराग परस्पर खेलत कुँवर नागरी नाइक।।
सीतल हंस सुता रस बीचिनु परसि पवन पुलिन सीकर मृदु बरषत।
वर मंदार कमल चंपक कुल सौरभ सरस मिथुन मन हरषत।।
सकल सुधंग विलास परावधि नाचत नवल मिले सुर गावत।
मृगज मयूर मराल भ्रमर पिक अद्भुत कोटि मदन सिर नावत।।
निर्मित कुसुम सैंन मधु पूरित भाजन कनक निकुंज विराजत।
रजनी मुख सुख राशि परस्पर सुरत समर दोऊ दल साजत।।
विट कुल नृपति किसोरी कर धृत बुधि बल नीबी बंधन मोचत।
नेति नेति वचनामृत बोलत प्रनय कोप प्रीतम नहिं सोचत।।
जै श्री हित हरिवंश रसिक ललितादिक लता भवन रंध्रनि अवलोकत।
अनुपम सुख भर भरित विवस असु आनँद वारि कंठ दृग रोकत।।

—हित चौरासी प० ७२

यह निस्वार्थता, यह तत्सुखिता, कान्ता किंवा जारिणी गोपियों में कहाँ ? क्योंकि जहाँ भोक्ता भोग्य भाव विद्यमान है वहाँ शुद्ध रति का उदय नहीं हो सकता। इसी से आचार्य्य पाद ने सखी का स्वरूप भोक्ता भोग्य से दूर रति—केवल रति ही माना है। इसी रति' को दूसरे शब्दों में सखी, सहचरि, सहेली, दासी, किङ्करी, और युगल की सन्धि सहेली, भी कहा गया है। बहुत स्पष्ट है कि बिना रति के प्रीति पूर्ण विलास—विहार की सम्पन्नता नहीं हो सकती, इसीलिये श्रीध्रुवदास जी ने कहा है—

करवावत सब ख्याल इच्छा शक्ति सखी तहाँ।

और

सखी उभय संगम सरस पिवत नैंन पुट झेलि।।

ब्यालीस लीला

अस्तु; ये सन्धि रूपा सखियाँ केवल विहार की ही सम्पन्नता नहीं सिद्ध कराती वरं सब प्रकार की सेवाओं में भी नित्य तत्पर हैं। वे श्रीवृषभानु नन्दिनी के कुञ्ज केलि प्राङ्गण की मार्जनी होने में भी अपना परम सौभाग्य मानती हैं क्योंकि इसी सेवा के कारण उन्हें युगल किशोर के एकान्त विहारावसर में 'नहिं नहिं' मधुर वचनामृत सुनने को मिलते हैं।

कभी हास परिहास में वे अपनी नागर वचन रचना से श्रीस्वामिनी जी को प्रसन्न करने की चेष्टा करतीं और फिर रसद केलि का उल्लास छलका देती हैं। कभी रात भर की सुरत केलि उनींदी श्रीराधा को प्रातः स्नान कराके, सुस्वादु भोजन कराके चरण सम्वाहन का सुख लेती हैं। श्रीवृषभानु किशोरी राधा अपनी रसच्छटा से हमें सींचती रहें, हमें अपने प्रेम पूर्ण शीतल आलिंगन से कृतार्थ कर दें। हम उनके सत्प्रेम सिंधु की अजस्र धारा का प्रवाह करने वाले श्रीचरण–कमलों को अपने सिर पर धारण करें, ऐसी इच्छा करती रहती हैं। सखियाँ सुरत भवन चलिता राधा का समयोचित सामग्री लेकर अनुगमन करतीं और कुञ्ज रन्ध्रों से केलि का दर्शन करके अपने तन, मन एवं प्राणों को परितृप्त करती हैं। कभी सुन्दर मुकुट, नवीन चन्द्रिका,गुञाहार आदि भूषण निर्माण कर युगल को धारण करातीं तो कभी सङ्केत कुञ्ज में पल्लव आस्तरण रचकर श्याम के निकट श्यामा को पहुँचाती हैं। और इसके फल में चाहती हैं, केवल राधा कृपा कटाक्ष।

नव सङ्गम के समय लज्जावती श्रीराधा को प्रियतम के समीप पहुँचाकर माला, कर्पूर और ताम्बूल बीटिका आदि पहुँचाना उनके सहचरी भाव की सार्थकता है। इतना करके वे दूर खड़ी रहकर युगल के मधुर संलाप से उच्छलित अनङ्ग–तरङ्ग माला रूप प्रत्येक शब्द को सुनतीं और रति विहारावसर जनित कङ्कण किङ्किणि एवं नुपूरों की झंकार सुनकर वे रस समुद्र में डूब जाती हैं। फिर सुरत विरत श्रीराधा की कुन्तल केश माला को अपनी कोमल कराङ्गुलियों से सुलझातीं, उनकी कुच तटी में कंचुकि धारण करातीं, चरणों में नूपुर मणि मंजीर पहनातीं और तलवों में अलक्तक रस का लेपन कर अपने को सुखी करती हैं।

इन सखियों का जिस सुरत केलि अवलोकन तक अधिकार है वहाँ श्रीकृष्ण के शान्त, दास्य एवं वात्सल्य भाव वाले भक्तों का प्रवेश तो होगा कहाँ से, सख्य और मधुर भाव के भक्तों का भी अधिकार नहीं है। आचार्य्यपाद ने बताया है–

दूरे सृष्टयादि वार्त्ता न कलयति मनाङ् नारदादीन् स्वभक्तान्।
श्रीदामाद्यैर्सुहृद्भिः न मिलति हरति स्नेह वृद्धिं स्वपित्रोः।।

और–

गोविन्द प्रियवर्ग दुर्गम सखी वृन्दैरनालक्षिता,

– श्रीराधा सुधा निधि

इन सखियों की चाटुकारी वृन्दाटवी कन्दर्प श्रीलालजी भी करते हैं, क्योंकि इन्हीं सखियों की कृपा से उन्हें श्रीप्रिया के प्रसादोत्सव की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सखियाँ एकान्त केलि दर्शन, विविध परिचर्या, हास–परिहास आदि प्रत्येक सेवा सख्यत्व की अधिकारिणी हैं। इनके सेवक–सेव्य भाव का प्रेमाधिक्य के कारण उच्छेद हो चुका है फिर भी वह सेवा–परायणा है प्रेमाविष्ट होने के कारण।

युगल की विविध वन क्रीड़ाओं में इन सखियों का सहयोग है। वे रास–नृत्य में नृत्य करतीं, वाद्य बजातीं, भाव निदर्शन करतीं एवं समस्त आयोजन करती हैं। ये सखियाँ समस्त संगीत कलाओं में विदग्ध हैं। श्रीस्वामिनि जी विना रास कदापि सम्भव नहीं है। अतः उन्हें आगे कर ये रास क्रीड़ा में आनन्द लेती हैं। यदि मानिनि राधा रास में उपस्थित न होना चाहें तो ये लाखों युक्तियों द्वारा उन्हें प्रसन्न करके रास में लावेंगी और तब रास क्रीड़ा विस्तार होगी। इनकी युक्ति–पूर्ण मधुर वचनावली कितनी मधुर होती है, देखिये–

(१) तेरौई ध्यान राधिका प्यारी गोवर्धन धर लालहिं।
कनक लता सी क्यों न विराजति अरुझी स्याम तमालहिं।।
गौरी गान सुतान ताल गहि रिझवत क्यों न गुपालहिं ?
यह जौवन कंचन तन ग्वालिनि। सफल होत इहिं कालहिं।।

मेरे कहें बिलंब न करु सखि ! भूरि भाग तो भालहिं।
(जै श्री) हित हरिवंश उचित हौं चाहति स्याम कंठ की मालहिं।।

– स्फुट वाणी पद

(२) मोहनी मदन गोपाल की बाँसुरी।
माधुरी श्रवन पुट सुनत सुनि राधिके!
करत रतिराज के ताप कौ नासु री।।
सरद राका रजनि बिपिन बृंदा सजनि!
अनिल अति मंद सीतल सहित बासु री।
परम पावन पुलिन भृंग सेवत नलिनु
कल्पतरु तीर बलवीर कृत रासु री।।
सकल मंडल भलीं तुम जु हरि सौं मिलीं,
बनी वर बनित उपमा कहौं कासु री।
तुम जु कंचन तनीं लाल मरकत मनी
उभै कल हंस हरिवंश बलि दासु री।।

हित चौरासी प. २६

नित्य रास के अवसरों पर इन सखियों के चित्त में कभी गोपियों की भाँति श्रीकृष्ण से आलिंगन, चुम्बन एवं रमण आदि की वासना नहीं जागतीं। इनका रासोत्सव श्रीराधा के सुखार्थ ही होता है–

प्रसृमर पटवासे प्रेम सीमा विकासे मधुर मधुर हासे दिव्य भूषा विलासे।
पुलकित दयितांसे संवलद्बाहु पाशे तदति ललित रासे कर्हि राधा मुपासे।।

–श्रीराधा सु० १५९

अर्थात् "जिस रास में विस्तार प्राप्त पटवास, प्रेम सीमा का विकास, मधुर मधुर हास, दिव्य आभूषणों का विलास एवं प्रियतम के अंस पर सुवलित बाहु पाश है, उस रास में श्रीराधा की मैं कब उपासना करूँगी ?"

इन तत्सुख मयी कैतव रहिता सखियों की पूर्ण प्रीति का प्रकाश हमें युगल की सुरत केलि के उपरान्त की जाने वाली सखियों की सेवा में देखने को मिलता है–

प्रातः पीतपटं कदा व्यपनयाम्यान्यांशु कस्यार्पणात्
कुञ्जे विस्मृत कंचुकीमपि समानेतुं प्रधावामि वा।
वध्नीयां कवरीं युनज्मि गलितां मुक्तावली मञ्जये–
नेत्रे नागरि रङ्गकैश्चपि दधाम्यङ्गं व्रणं वा कदा।।

–श्रीराधा सुधा निधि श्लो०७५

अर्थात् "हे नागरि ! किसी समय प्रातः काल आपने किसी का पीत पट भ्रम में बदलकर पहिन लिया होगा, तब मैं उसे बदलकर नील निचोल धारण कराऊँगी। इसी प्रकार निकुञ्ज–भवन में आप अपनी कंचुकि भूल आयी होंगी, मैं उसे दौड़कर शीघ्रता–पूर्वक ले आऊँगी। विहार में आपकी कबरी शिथिल हो गयी होगी, उसे मैं पुनः सँवार दूँगी। आपकी मुक्ता माल टूट गयी होगी, मैं उसे पिरो दूँगी और आपके नेत्रों में फिर से अञ्जन लगाकर, कस्तूरी कुङ्कुम मलय आदि से अङ्गों के क्षतों को लेपित कर दूँगी। स्वामिनि ! क्या कभी ऐसा होगा ?"

इसी प्रकार केलि अवसर में मानिनी प्रिया को अनेक युक्तियों से मनाकर प्रियतम के समीप ले जाने में इन्हें परम रस का आस्वादन होता है, सखियों की नुति देखिये–

छाँड़ि दै मानिनी मान मन धरिबौ।
प्रनत सुंदर सुघर प्रान वल्लभ नवल
वचन आधीन सौं इतौ कत करिबौ।।
जपत हरि विवश तव नाम प्रति पद विमल,
मनसि तव ध्यान ते निमिष नहिं टरिबौ।
घटति पलु पलु सुभग सरद की जामिनी
भामिनी सरस अनुराग दिसि ढरिबौ।।
हौं जु कछु कहति निजु बात सुनि मानि सखि,
सुमुखि बिनु काज घन विरह दुख भरिबौ।
मिलत श्रीहरिवंश हित कुञ्ज किसलय सयन,
करत कल केलि सुख सिंधु में तरिबौ।।

–हित चौरासी पद ८३

इसी प्रकार और भी—

कृष्णः पक्षो नव कुवलयं कृष्ण साररत्तमालो,
नीलाम्भोदस्तव रुचि पदं नाम रूपैश्च कृष्णा।
कृष्णे कस्मात्तव विमुखता मोहन श्याम मूर्त्ता,
वित्युक्त्वा त्वां प्रहसित मुखी किन्तु पश्यामि राधे।।

—श्रीराधा सुधा निधि;८८ श्लो०

अर्थात् "हे श्रीराधे ! कृष्ण पक्ष काल अथवा श्रीकृष्ण के पक्ष वाले नवीन नील—कमल, कृष्ण सार मृग, श्याम—तमाल, नील सजल मेघ, एवं कृष्णा नाम रूप वाली कृष्णा (यमुना) ये सब के सब आपको प्रिय हैं। फिर क्या कारण है कि आपने श्याम मूर्त्ति मन मोहन से ही विमुखता प्रतिकूलता धारण कर रखी है ?"

"स्वामिनि ! इस प्रकार कहने के पश्चात् क्या मैं आपको प्रहसित—मुखी (विगत—माना) न देख सकूँगी।"

जब प्रियाजी अपने मान का परित्याग करके प्रियतम सङ्गम के लिये चलने को तैयार होती हैं तो ये अपने हाथों उनका समस्त शृङ्गार करती हैं। अहा ! कितना सुन्दर शृङ्गार है ! कपोल स्थलों पर ललित पत्रावली, कमल दलवत् नयनों में काजल, विम्बाफल सदृश अधरोष्ठों में ताम्बूल रङ्ग एवं युगल—उरोजों में केशर का अनुलेपन ! अहा ! पद की ललित अंगुलियों में सुरङ्ग लाक्षारस ! कैसी अद्भुत शोभा है—

पत्रालीं ललितां कपोल फलके नेत्राम्बुजे कज्जलं
रंग विम्ब फलाधरे च कुचयोः काश्मीरजा लेपनम्।
श्रीराधे नव सङ्गमाय तरले ! पादाङ्गुली पंक्तिषु
न्यस्यन्ती प्रणयादलक्तक रसं पूर्णाः कदा स्यामहम्।।

—श्रीराधा सुधा निधि २२२

इत्यादि उपरोक्त वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहित हरिवंश चन्द्र के सखी भाव में स्वसुख, स्वकीयत्व, परकीयत्व आदि कुछ भी न होकर तत्सुख, रति पूर्ण सखी—दासी भाव है। इस दासी—भाव का लक्ष्य है कैतव—रहित होकर राधा—चरण सेवन। इनकी इस निष्कैतव प्रीति से रीझ कर प्रियतम उन्हें

आलिङ्गन दान दें अथवा श्रीप्रियाजी ही उन्हें श्रीलालजी का रतिसुख प्राप्त करने के लिये मानो अपना अधिकार सौंप दें; तो भी इन सब दशाओं में भी सखियाँ श्रीकृष्ण–रस से निर्लिप्त रह कर श्रीराधाचरण रस का ही आस्वादन करती हैं; श्रीहिताचार्य्य पाद कहते हैं–

यदि स्नेहाद्राधे दिशसि रति लाम्पट्य पदवीं
गतं ते स्वप्रेष्ठं तदपि मम निष्ठं श्रृणु यथा।
कटाक्षैरालोके स्मित सहचरैर्जात पुलकं,
समाश्लिष्याम्युच्चैरथ च रसये त्वत्पद रसम्।।

–श्रीराधा सुधा निधि श्लो. ८७

अर्थात् "हे राधे ! रति लाम्पट्य पदवी प्राप्त अपने प्रियतम के प्रति जब आप स्नेह वश मुझे सौंप देंगी, तब भी मेरी निष्ठा क्या होगी, उसे सुनिये–मैं मन्द–मन्द मुसकान के साथ तिरछे नेत्रों से प्रियतम की ओर देखूँगी, बस इतने मात्र से ही उनका शरीर पुलकित हो जायगा, पश्चात् मैं उन्हें पुनः एक गाढ़ आलिंगन भी करूँगी जिससे और भी वे प्रेम विह्वल हो जावेंगे किन्तु इतना सब होते हुए भी मुझे आपके रसमय चरण कमलों का ही रसानुभव होगा।"

अस्तु; अब यह देखना है कि इस सहचरि भाव की उपासना करने वाले रसिक उपासकों का क्या स्वरूप है; क्योंकि इनका स्वरूप भी सखी के सिद्ध स्वरूप का निदर्शन करता है। श्रीहिताचार्य्य पाद ने अपने रसिक स्वरूप का अनुसन्धान करते हुए लिखा है–

प्रथम तो मैं वृन्दारण्य निकुञ्ज मन्दिर में इस प्रकार विलाप करती हुई फिरूँ कि "हे राधे ! मैंने आपको नव सङ्गम के लिये चतुर सङ्केत द्वारा जो मार्ग दिखाया है उस पर न चलोगी क्या ?" तथा आपकी कुच तटी चर्चित कस्तूरी से पङ्किल कालिन्दी सलिल में बारम्बार स्नान करके अपने कुदेह जनित मल को त्याग कर निर्मल हो जाऊँ। तत्पश्चात् आपकी मन भाँवती परिचारिका बनूँ। मैं अपनी स्वामिनी श्रीराधिका के निज कर कमलों द्वारा स्नेह पूर्वक दिये हुए प्रसाद रूप दुकूल एवं कञ्चुकि पट को यथा स्थान दिव्य देह कुचादि में धारण करूँ और सदा स्वामिनीजी के पार्श्व में स्थित रहकर विविध परिचर्याओं में चतुरा किशोरी के रूप में अपने आपको देखूँ। प्रेम विवशाकृति होकर राधाकेलि

के साक्षी प्रकट उज्वल रस पूर्ण अद्भुत एवं पवित्र श्रीवृन्दावन में निवास करते हुए नेत्र–पिण्डों में स्थित तेजोमय निकुञ्ज की भावना करती हुई उसी के अनुसार अपने उपयोगी कोमल वपु का अवलोकन करूँ।

अपने इस दिव्य स्वरूप में स्थित होकर रसिक अनन्य उपासक भावना में ही अपनी स्वामिनीजी की सेवा परिचर्या में रत होता है। इस परिचर्या का वही स्वरूप है जो सिद्ध सखियाँ ललितादि करती रहती हैं इस परिचर्या का वर्णन ऊपर आ चुका है, अतएव यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

अस्तु; जिस प्रकार नित्य विहार भोग, मोक्ष, वैकुण्ठ, द्वारका, मथुरा, साकेत, व्रजभूमि और व्रज वृन्दावन से परे नित्य वृन्दावन में सम्पन्न है उसी प्रकार इस नित्य विहार के उपासक रसिक अनन्य गण भी योगी, कर्मकाण्डी, ध्यानी, ज्ञानी भक्त एवं मुक्तों से भी परे हैं इनका स्वरूप सर्वाश्चर्यमय है। रसिकाचार्य्य इनके स्वरूप का निदर्शन करते हैं–

रसिक कहते हैं–"धर्म अर्थ, काम और मोक्ष ये उत्तम चार फल यदि विश्व में उत्कृष्टता को प्राप्त हैं तो भले ही रहें हमें इनकी व्यर्थ चर्चा से क्या ? और ईश्वर की उस एकान्त भक्तियोग पदवी को भी हम मौलि–मण्डन मानते हैं किन्तु उससे भी हमें क्या लेना–देना है ? हमारे चित्त को तो वृन्दावन की सीमा में विराजमान आश्चर्य रूपा किसी किशोरी मणि के कैङ्कर्य्य–रसामृत के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

धर्माद्यर्थ चतुष्टयं विजयतां किं तद्वृथावार्त्तया,
रैकान्तेश्वर भक्ति योग पदवी त्वारोपिता मूर्द्धनि।
यो वृन्दावन सीम्नि कश्चन घनाश्चर्य्यः किशोरी मणि–
स्तत्कैङ्कर्य्य रसामृतादिह परं चित्ते न मे रोचते।।

–श्रीराधा सुधा निधि ७७

गुरुतम भजन रूप पराक्रम युक्त कोई महा बुद्धिमान् पुरुष गण इस पृथ्वी पर विरले ही हैं जो राधिका पद रस मत्त स्थिति वश न तो अपने बाहुमूल में कभी शङ्ख चक्रादि वैष्णव चिह्न धारण करते और न कभी ललाट–पटल पर विचित्र हरिमंदिर (तिलक) ही रचते हैं। उनके सुहावने कण्ठ भाग में तुलसी की

सुहावनी माला भी धारण नहीं रह पाती। अर्थात् ये सभी वाह्य लक्षण ज्ञान से शून्य हुए अन्तरङ्ग भावना में लीन हैं। ऐसे गूढ़ाश्चर्य रूप उज्वल रसाश्रित रसिक गण वेदोक्त कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करें या न करें, माला चन्दन आदि विषय समूहों का भोग करें या न करें; इससे उनको न कोई हानि है और न लाभ ही। अहो ! राधाकान्त के भाव में पारङ्गत मति ऐसे रसिक क्या कभी अल्पज्ञ बहिर्मुख अथवा अन्य सकाम पुरुषों में से किसी के साथ मिल भी सकते हैं ? जिनके लिये विषय चर्चा कोटि–कोटि नरक जैसी वीभत्स, श्रुति कथा व्यर्थश्रम, मोक्ष भयप्रद और परेश भजनोन्मद शुकादि उपेक्षणीय है। जो केवल श्रीराधिका पद रस में निमग्न हैं। कैसी राधिका? किशोरावस्था के अद्भुत माधुरी प्रवाह से जिनकी अङ्ग–प्रत्यङ्ग छबि सर्वाग्रगण्य हो रही है जो प्रेमोल्लास प्रवाह के कारण सर्व श्रेष्ठता को प्राप्त हैं–ऐसी राधिका का जो महा पुरुष तद्गत चित्त से निरन्तर ध्यान करते हैं; उन्होंने कर्मों को नहीं छोड़ा वरं कर्मों ने ही उन्हें छोड़ दिया है और वे परम श्रेष्ठ भगवद्धर्म की ममता से भी मुक्त होकर सर्वाश्चर्य्य पूर्ण रसमयी परम गति को प्राप्त हो चुके हैं। ऐसे महानतम् पुरुषों के लिये बारम्बार नमस्कार है।[9]

इन रसिकों की परम उपरामता की झाँकी कीजिये–

रहो दास्यं तस्या; किमपि वृषभानोर्व्रजवरी–
यसः पुत्र्याः पूर्ण प्रणय रस मूर्त्तेर्यदि लभे।
तदा नः किं धर्मैः किमु सुर गणैः किं च विधिना
किमीशेन श्याम प्रिय मिलन यत्नैरपि च किम्।।

–श्रीराधा सुधा निधि ११५

अर्थात् "यदि व्रज वरीयान् वृषभानुराय की पूर्ण प्रेम रस मूर्त्ति पुत्री का हमें एकान्त दास्य लाभ हो जाय तो फिर हमें धर्म से, देवता गणों से, ब्रह्मा और शङ्कर से, अरे ! श्याम सुन्दर के प्रिय मिलन यत्न से भी क्या प्रयोजन है ?"

इसी प्रकार उपरामता के साथ निष्ठा का भी दर्शन करें–

किं वा नस्तैः सुशास्त्रैः किमथ तदुदितैर्वर्त्मभिः सद्गृहीतै–
र्यत्रास्ति प्रेम मूर्त्तेर्नहि महिम सुधा नापि भावस्त दीयः।

किंवा वैकुण्ठ लक्ष्म्याप्यहह परमया यत्र मे नास्ति राधा,
किन्त्वाशाप्यस्तु वृन्दावन भुवि मधुरा कोटि जन्मान्तरेऽपि।।

–श्रीराधा सुधा निधि, २१६

अर्थात् "जिनमें प्रेम मूर्त्ति श्रीराधा की महिमा सुधा किंवा उनके भाव का वर्णन नहीं है उन शास्त्र समूहों से अथवा उन शास्त्र विहित साधुजन गृहीत मार्ग समूहों से भी हमको क्या प्रयोजन है ! अहा ! जहाँ हमारी श्रीराधा नहीं हैं उस वैकुण्ठ शोभा श्री से भी हमको क्या ? किन्तु कोटि जन्मान्तरों में भी वृन्दावन भूमि के प्रति हमारी मधुर आशा बनी रहे, यही वाञ्छा है।"

अस्तु; इस प्रकार श्रीहिताचार्य्य के सिद्धान्तानुसार सखियों एवं रसिक अनन्यों का स्वरूप भाव सब उपासकों से विलक्षण दृष्टिगत होता है। उक्त कथित "श्रीहरिवंश के इष्ट तत्व' और "उपासना भाव" सखी के योग से जिस विहार की सिद्धि सम्पन्नता होती है उसकी ओर इङ्गित किया जाता है।

३–नित्य विहार का स्वरूप–

श्रुति, पुराण एवं इतिहासादि में श्रीकृष्ण की जिन शृङ्गार–लीलाओं का वर्णन है, वह श्रीहिताचार्य्य पाद का नित्य विहार न होकर ब्रज विहार है या और कुछ है, क्योंकि जैसे उनकी आराध्या श्रुति अगोचर हैं उसी प्रकार उनसे सम्पन्न होने वाला विहार अपने आप श्रुति –अगोचर सिद्ध हो जाता है। आचार्य्य पाद अवतार तत्व कृत विहार को काल–सापेक्ष मानते हैं नित्य नहीं। वे नित्य विहार एवं ब्रज विहार का अन्तर एक पद में बड़ी कुशलता से दिखाते हैं–

रहौ कोऊ काहू मनहिं दियैं।
मेरे प्राननाथ श्रीस्यामा सपथ करौं तिन छियैं।।
जे अवतार कदंब भजत हैं धरि दृढ़ व्रत जु हियैं।
तेऊ उमगि तजत मर्जादा बन विहार रस पियैं।।
खोयें रतन फिरत जे घर घर कौन काज ऐसें जियैं।
(जै श्री) हित हरिवंश अनत सचु नाहीं बिनु या रजहिं लियैं।।

– स्फुट वाणी पद, २०

आप अपने उपास्य इस नित्य विहार को इसी भूतल स्थित वृन्दावन में संतत है ऐसा मानते हैं–

जै श्री हित हरिवंश विपिन भूतल पर संतत अविचल जोरी।

–हित चौरासी पद ७०

और (जै श्री) हित हरिवंश करौ दिन दोऊ अचल विहार।

–हित चौरासी पद ५७

यह नित्य विहार, गोपी एवं गोपीकान्त के स्वकीया परकीया, मिलन एवं विरह से परे स्व पर भेद रहित शुद्ध प्रेम रति है। श्रीहित महाप्रभु के मत से स्वकीया, परकीया और मिलन एवं विरह प्रत्येक अलग–अलग अपनी अपनी जगह में अपूर्ण हैं। स्वकीया में मिलन है किन्तु विरह जन्य प्रेम वेदना नहीं। परकीया में विरह है किन्तु नित्य मिलन की सुखानुभूति नहीं। इसे आपने चकई और सारस के वार्त्तालाप के प्रसङ्ग से इस प्रकार समझाया है–

चकई प्रान जु घट रहैं पिय विछुरंत निकज्ज।
सर अंतर अरु काल निसि तरफ तेज घन गज्ज।।
तरफ तेज घन गज्ज लज्ज तुहि वदन न आवै।
जल विहून करि नैंन भोर किहिं भाइ बतावै।।
(जै श्री) हित हरिवंश विचारि बाद अस कौंन जु बकई।
सारस यह संदेह प्रान घट रहैं जु चकई।।

– स्फुट वाणी पद ५;

भाव यह कि सारस के विचार से चकई का विरह जन्य प्रेम अपूर्ण है जो विरह में भी प्रियतम के विना जीवित रह पाती है किन्तु सारस के विरहानुभूति रहित प्रेम को चकई तुच्छ मानती है; देखिये–

सारस सर विछुरंत कौ जो पलु सहै सरीर।
अगिन अनंग जु तिय भखै तौ जानै पर पीर।।
तौ जानै पर पीर धीर धरि सकहि वज्र तन।
मरत सारसहिं फूट पुनि न पर्‌यौ जु लहत मन।।

अन्त में आचार्यपाद अपना मत देते हैं कि प्रेम विरह के विना सभी प्रकार के प्रेम चाहे वह मिलन में हों या विरह में, विडम्बना ही हैं।

जै श्री हित हरिवंश विचारि प्रेम विरहा विनु वा रस।
निकट कंत नित रहत मरम कहा जानै सारस।।

–स्फुट वाणी पद ६

प्रश्न हो सकता है कि यह 'प्रेम विरहा' क्या है ? इसका संक्षिप्त उत्तर इतना ही है कि जहाँ नित्य–मिलन में तीव्र प्रेमोत्कण्ठा के रूप में विरह है वह सूक्ष्म प्रेम–गति ही 'प्रेम–विरहा' है। यह प्रेम विरहा नित्य विहार रस का प्राण है। प्रेम विरह का स्वरूपाङ्कन करते हुए आचार्य्यपाद ने लिखा है–

कहा कहौं इन नैननिं की बात।
ये अलि प्रिया वदन अंबुज रस अटके अनत न जात।।
जब जब रुकत पलक संपुट लट अति आतुर अकुलात।
लंपट लव निमेष अंतर ते अलप कलप सत सात।।
श्रुति पर कंज, दृगंजन, कुच विच मृग मद ह्वै न समात।
जै श्री हित हरिवंश नाभि सर जलचर जाँचत साँवल गात।।

–हित चौरासी, पद ६०

इस प्रकार युगल किशोर के नित्य मिलन में स्थूल विरह की कल्पना तो नहीं है किन्तु मिलन में भी प्रेम की क्षीणता न होकर नित्य नूतन स्वाद, चाह चटपटी रूप सूक्ष्म विरह पूर्ण रूप से है। प्रेमासव पूर्ण रूप माधुरी का पान करके दोनों किशोर किशोरी नित्य अतृप्त–विरही हैं–

देखत आप में रूप न कबहुँ समात हैं।
दोउ इक रस रीति न प्रेम समात हैं।।
पलु पलु में रुचि बढै सखी मुसिकात हैं।
मुख सौं मुख रहे जोरि तऊ ललचात हैं।।

– रहस्य लता

इस रूप लालच रूप विरह का कोई ओर छोर है? इसमें कितनी प्यास है–

अरुझे मन सुरझत नहिं कैहूँ । जेहि अँग ढरत होत सुख तैहूँ।।
एकै रुचि दुहुँ में सखि बाढ़ी । परि गई प्रेम ग्रंथि अति गाढ़ी।।

देखत देखत कल नहिं माई । तिनकौं प्रेम कहयौ नहिं जाई।।
ऐसे रसिक किसोर विहारी। उज्वल प्रेम विहार अहारी।।
अति आसक्त परस्पर प्यारे। एक सुझाव दुहुँनि मन हारे।।

–नेह मंजरी

इसी प्रकार और भी–

निरखि माधुरी सहज की नैंन न मानत हार।
बढ़ी तहाँ रुचि की नदी धीरज कूल बिदार।।
छिन छिन औरैं और छबि पल पल में गति और।
नागर सागर रूप के परम रसिक सिर मौर।।
कबहुँ लाड़िली होत पिय लाल प्रिया ह्वै जात।
नहिं जानत यह प्रेम रस निसि दिन कितहिं विहात।।
सुरँग चूनरी एक में रँग भीनें सुकुमार।
लपटे ऐसी भाँति सौं नहिं समात बिच हार।।
नैंन कटोरी रूप की भरी प्रेम सद मोद।
अद्भुत रुचि पीवत बढ़ी आनँद रँग दुहुँ कोद।।
अंगनि की छवि माधुरी निरखत हूँ न अघाहिं।
नैंन भँवर भूले फिरैं रूप कमल वन माँहिं।।
जद्दपि पिय देखत रहै मन की सोच न जाइ।
कैसेहूँ इक बार ये देखैं नैंन अघाइ।।
अति आसक्त सनेह बस मोहन रूप निधान।
तजि स्यानप राख्यौ न कछु अपने तन मन प्राँन।।
छिन छिन माँहिं अचेत ह्वै पल पल माँहि सचेत।
नहिं जानत या रंग में गये कलप जुग केत ।।
नख सिख लौं दोउ अरुझि रहे नेकहुँ सुरझत नाँहिं।
ज्यौं ज्यौं रुचि बाढ़ै अधिक त्यौं त्यौं अति अरुझाँहिं।।

–रंग विहार

नित्य विहार के केवल चार अंग हैं, जिसमें से नित्य नव किशोरी श्रीराधा एवं नित्य नव किशोर रसिक शेखर प्रियतम श्रीकृष्ण के स्वरूप का बहुत कुछ

परिचयात्मक वर्णन हो चुका है और सखियों के स्वरूप पर भी "उपासना भाव" इस शीर्षक से प्रकाश डाला जा चुका है तथापि सखियों के सुख एवं अधिकार का नित्य विहार में क्या स्वरूप है? यह जानना इस प्रसङ्ग में आवश्यक है। इसका स्पष्टीकरण श्रीध्रुवदास जी इस प्रकार करते हैं–

लाल लाड़िली प्रेम ते सरस सखिनु कौ प्रेम।
अटकी हैं निजु प्रेम रस तिनहिं न परसत नेम।।

अर्थात् "लाड़िली लाल के प्रेम से भी सरस प्रेम है सखियों का; क्योंकि वे स्वाभाविक एक रस अविच्छिन्न प्रेम में अटक रही हैं, उन्हें नियम स्पर्श नहीं कर पाते , अतः–

सखियन के सुख पर सुख नाहीं। आनँद मोद रँगी मन माहीं।।
रूप रसासव यहे अहारा। तन मन की कछु नाहिं सँभारा।।
एकै रस नित भींजी रहहीं। साँझ भोर समुझयौ नहिं कबहीं।।
सो रस करति रहति नित पानैं। निसि बासर बीतत नहिं जानैं।।

– प्रेम लता

और भी–

सुरत रंग विवि वदन पर श्रम जल कन रहे सोहि।
रसिक सखी ललितादि सब छबि अनूप रहीं जोहि।।
कोमल अंचल पवन डुलावैं। अति आसक्त नैंन भरि आवैं।।
एक वैस सब सखी सहेली। मानौ नेह बाग की बेली।।
सींची नवल कटाच्छनि जल सौं। फूलीं चाह फूल फल दल सौं।।
एक रूप तन मन अनुरागीं। जुगल हेत हित रस सौं पागीं।।

–रसानन्द

नित्य विहार में जो उज्वलतम महा मधुर रस उच्छलित होता है उसके ठहरने का एक ही स्थान है सखियों का हृदय। श्रीआचार्य्य पाद कहते हैं–

निविड़ कानन भवन, बाहु रंजित रवन, सरस आलाप, सुख पुंज बरसावै।
उभै संगम सिंधु सुरत पूषन बंधु द्रवत मकरंद हरिवंश अलि पावै।।

और

मदन मुदित अंग–अंग बीच–बीच सुरत रंग।
पलु पलु हरिवंश पिवत नैंन चषक झेलि।।

–हित चौरासी ८१, १७

श्रीध्रुवदासजी कहते हैं कि युगल में उत्पन्न रस कहाँ जाकर ठहरा–

प्रेम रसासव छके दोउ करत विलास विनोद।
बढ़त रहत उतरत नहीं गौर–स्याम छबि मोद।।
मैंड़ तोरि रस चल्यौ अपारा। रही न तन मन कछू सँभारा।।
सो रस कहौ कहाँ ठहरानौं। सखियनि के उर नैंन समानौं।।
तेहि अवलम्ब सबै सहचरी। मत्त रहत ठाढ़ी रँग भरी।।

– रति मंजरी

सखियों के **'मन–नैंन'** में जाकर रस नित्य स्थिति पाता है अतः ये युगल रस की कोषाध्यक्ष हैं–

जुगल प्रेम रस कोष तहाँ की अधिकारिनु जु सहेली।

– चाचा हित वृन्दावन दास

केवल कोषाध्यक्ष ही नहीं हैं, ये सखियाँ इस रस की पूर्ण मार्मिकता की भेदी हैं, चाचाजी कहते हैं–

महाभाव दंपति रस बतियाँ समुझत संधि सहेली।
कमल गंध कौ अलि ज्यौं मरमी जा उर लगन गहेली।।
दादुर मीन चिन्हार न तासौं जदपि रहैं नित भेली।
वृन्दावन हित रूप जानि ततसुखजुउपास दुलेली।।

– जुगल सनेह पत्रिका

अस्तु; नित्य विहार का चतुर्थ अंग श्रीधाम वृन्दावन है। श्रीहित हरिवंश चन्द्र का वृन्दावन भूतल स्थित होकर भी सबसे परे है। नित्य एक रस है, आनन्द मय है और प्रेम मय है। यहाँ शुद्ध माधुर्य्य रस की कैशोर लीला नित्य निरन्तर होती रहती है। वृन्दावन का स्वरूप वर्णन करते हुए आचार्य्य पाद ने लिखा है कि–"श्रीराधिका कृपा बिनु सबके मननि अगम्य" है, और–

किं ब्रूमोन्यत्र कुण्ठी कृतक जन पदे धाम्न्यपि श्रीविकुण्ठे
राधा माधुर्य्यवेत्ता मधुपतिरथ तन्माधुरीं वेत्ति राधा।
वृन्दारण्य स्थलीयं परम रस सुधा माधुरीणां धुरीणां
तद्द्वन्द्वं स्वादनीयं सकलमपि ददौ राधिका किङ्करीभ्यः।।

–श्रीराधा सुधा निधि १७५;

अर्थात् "अन्यत्र की तो बात ही क्या विकुण्ठ धाम की श्री भी (श्रीराधा माधुर्य्य के अभाव से) कुंठित हो गयी है। क्योंकि श्रीराधा के माधुर्य्य को केवल श्रीमाधव जानते हैं और श्रीमाधव के माधुर्य्य को श्रीराधा जानती हैं। इस आस्वादनीय युगल को परम रस–सुधा माधुरी अग्रगण्य श्रीवृन्दारण्य स्थली ने श्रीराधा किङ्करी गणों को सम्पूर्ण रूप से प्रदान कर दिया है।

ऐसे वृन्दावन को रसिक जन सर्व त्याग पूर्वक ग्रहण करते हैं; क्योंकि यहाँ श्रीराधा नामक एक दिव्य निधि सदा विराजमान् है जो, सज्जनों को भव से उद्धार करने वाले भाव रूप सुधा रस का प्रवाह है। यह वृन्दावन श्रीराधा करों से स्पर्श की हुई पल्लव–वल्लरी से मण्डित, पदाङ्कों से चिन्हित मनोहर स्थल युक्त एवं श्रीराधा यशोगान से मुखरित मत्त खगावली से सेवित है। यह राधा केलि पुञ्ज का नित्य कुञ्ज कानन है। इस नित्य कानन में श्रीनन्द नन्दन की दर्प युक्त बाहुओं के आलिंगन से शिथिलाङ्गी एवं अनन्त रस–कला विस्तारक घनीभूत आनन्द मूर्त्ति प्रेम प्रतिमा किशोरी राधा का नित्य निवास है। वृन्दावन के नव लता मन्दिर में तीव्र काम के उन्माद से उन्मादित रति केलि कलाओं के कौतुक–पूर्ण रस स्वरूप एवं आनन्द मय किशोराकृति युगल विराज रहे हैं। यह वन मधुर एवं रस केलि धाम क्यों है ? इस लिये कि इसमें विदग्ध नागरी मणि श्रीराधा एवं रसिक शेखर श्रीकृष्ण कभी गान से, कभी अमन्द हिन्दोल से कभी कुसुम सुरभित वायु से तो कभी सुरत–केलि चातुरी के प्रकाश पूर्वक क्रीड़ा किया करते हैं।

यह वृन्दावन साक्षात् राधा रूप है। और अपने राधा रूप से प्रियतम श्रीकृष्ण को अन्य राधा की भाँति अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। कितना साम्य है राधा और श्रीवन में ! श्रीराधा की रोम राजि श्रीवन की यमुना है, अङ्ग

प्रभा बन्धूक बन्धु है। श्रीराधा की चम्पकाङ्ग छबि श्रीवन की चम्पक लताओं का विकास है। एक ओर नाभि है तो दूसरी ओर सरोवर। वक्षोज या पुष्प–गुच्छ एक ही बात है। भुजाएँ हैं लताएँ और नूपुरों की झङ्कार है मधुपों की झङ्कार।

इस प्रकार वृन्दावन तत्स्वरूप होकर भी लीला के लिये प्रेम धाम है तब इस प्रेम धाम की श्रीराधा ही स्वामिनी हैं इसी वृन्दावन की वेतस् कुञ्जों में रहस्य रूपा श्रीराधा स्वामिनि का अविचल निवास है।

कहाँ तक कहा जाय ? वृन्दावन की महिमा अनन्त है। श्रीहिताचार्य्य पाद इस वृन्दावन की महिमा का प्रभाव वर्णन करते हुए कहते हैं कि हमारे जैसा परम अधम तुच्छ गहर्य कर्मा प्राणी भी निगम पदवी से परे श्रीराधा का और श्रीराधा के भी हृदय में निवास करने वाले श्रीकृष्ण का अपने हृदय में दर्शन करता है। यदि सौभाग्य से इस वन में यह पार्थिव देह छूट जाय तो निश्चय ही नव रस कोमल कला मूर्त्ति श्रीराधा की दासी होने का अवसर मिल सकता है क्योंकि यहाँ का चराचर मात्र राधा रूप है, भले ही दूसरों की दृष्टि में वह दर्शन सम्भाषण के योग्य न हो किन्तु वास्तव में वह महा योगीन्द्रों के लिये वन्दनीय, दर्शनीय सघन रस दाता और एक मात्र आनन्द मूर्त्ति है।

वृन्दावन का यह प्रकृष्ट महिमामय रूप केवल राधा किङ्करियों के अथवा इस भाव वाले रसिकों के ही हृदय में ही सम्यक्तया प्रकट हो सकता है। यद्यपि वृन्दावन पापियों को भी रस दान करते हैं तथापि श्रीराधा कृपा के बिना इनके स्वरूप का वास्तविक प्रकाश नहीं हो सकता। इस प्रकार श्रीवृन्दावन की महिमा और उनका स्वरूप आश्चर्यमय ही नहीं अत्याश्चर्यमय है।

अस्तु; उपरोक्त वर्णन में जिस नित्य विहार के अङ्गों की ओर संकेत किया गया है उन सबसे सम्पन्न होने वाले वृन्दावन विहार किंवा नित्य विहार की झाँकी कीजिये–

प्रथम जथा मति प्रनऊँ श्रीवृन्दावन अति रम्य।
श्रीराधिका कृपा बिनु सबके मननि अगम्य।।
वर जमुना जल सींचन दिनहीं सरद बसंत।
विविध भाँति सुमनसि के सौरभ अलि कुल मंत।।

अरुन नूत पल्लव पर कूँजत कोकिल कीर।
निर्त्तनि करत सिखी कुल अति आनंद अधीर।।
बहत पवन रुचि दायक सीतल मंद सुगंध।
अरुन नील सित मुकुलित जहँ तहँ पूषन बंधु।।
अति कमनीय विराजत मंदिर नवल निकुंज।
सेवत सगन प्रीति जुत दिन मीन ध्वज पुंज।।
रसिक रासि जहँ खेलत स्यामा स्याम किसोर।
उभय वाहु परिरंजित उठे उनींदे भोर।।
कनक कपिश पट सोभित सुभग साँवरे अंग।
नील वसन कामिनि उर कंचुकि कसूँभी सुरंग।।
ताल रबाब मुरज डफ बाजत मधुर मृदंग।
सरस उकति गति सूचत बर बँसुरी मुख चंग।।
दोउ मिलि चाँचरि गावत गोरी राग अलापि।
मानस मृग बल बेधत भृकुटी धनुष दृग चापि।।
दोउ कर तारिनु पटकत लटकत इत उत जात।
हो हो होरी बोलत अति आनँद कुलकात।।
रसिक लाल पर मेलत कामिनि बन्दन धूरि।
पिय पिचकारिनु छिरकत तकि तकि कुंकुम पूरि।।
कबहुँ कबहुँ चंदन तरु निर्मित तरल हिंडोल।
चढ़ि दोऊ जन झूलत फूलत करत किलोल।।
वर हिंडोर झँकोरनि कामिनि अधिक डरात।
पुलकि पुलकि वेपथु अँग प्रीतम उर लपटात।।
हित चिंतक निजु चेरिनु उर आनँद न समात।
निरखि निपट नैंननि सुख त्रिन तोरतिं बलि जात।।
अति उदार विवि सुंदर सुरत सूर सुकुमार।
(जै श्री) हित हरिवंश करौ दिन दोऊ अचल विहार।।

–हित चौरासी, पद ५७

अस्तु ; गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र का नित्य विहार एक विलक्षण और अत्यन्त गूढ़ है, जिसके लिये श्रीध्रुवदासजी ने लिखा है--

जो रस कहयौ हरिवंश हित विरलौ समुझन हार।
एक दोई जो पाइये खोजत सब संसार।।

क्योंकि इन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म प्रेम की बात कही है। इस सूक्ष्म प्रेम का सरस गान 'हित चौरासी' की पदावली है। यद्यपि श्रीहरिवंश कृपा के बिना उस गान रस में किसी का प्रवेश नहीं है तथापि चञ्चु प्रवेश के ही लिये सही, उस विधा का इस प्राक्कथन में दिग्दर्शन कराया गया है अतएव पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि 'हित चौरासी' में जो कुछ है उसे रसिक जनों की कृपा के द्वारा समझें सुनें और अन्तर्गत करें।

विनीत

हितदास



श्रीहित हरिवंश चन्द्रो जयति।
श्रीहित राधावल्लभो जयति।

हित चौरासी

(सार्थ एवं सटिप्पण)

– १ –

अवतरण–श्रीराधा पद पङ्कज मधुकर, रसिकावतंस अनन्त श्रीगोस्वामी हित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद ने महामधुर एवं परमोज्वल शृङ्गार–श्रीवृन्दावन रस विलास की जो अजस्र एवं अनुपम प्रेम तरङ्गिणी प्रवाहित की है, उसकी एक एक छलक प्रत्येक कल्लोल ही हित चौरासी' के प्रत्येक पद हैं। प्रथम छलक रूप इस पद में प्रेमोत्सर्ग और 'तत्सुखित्व सुखितम्' की महान् एवं सर्वोत्कृष्ट झाँकी है। इसमें प्रेम की एकात्मता का गहरा परिचय मिलता है। यह पद रस सिद्धान्त का मूल है–प्राण है। इस पद वर्णना में श्रीहिताचार्य्य चरण ने श्रीराधा के मुख से (श्रीहित अलि के प्रति) जो कुछ कहलवाया है, उससे युगल किशोर के पारस्परिक असीम प्रेम, त्याग तत्सुखित्व, सेवा भाव ऐकान्तिक एकात्म भाव का सुन्दर दर्शन होता है।

अस्तु, रसधाम श्री वृन्दावन में वसन्त की सुहावनी सन्ध्या है। समस्त वन अरुणिम नव नव पल्लव से सज्जित एवं पुष्पों से आभूषित हो रहा है, मानो आनन्द मोद में झूम झूम कर रँग रलियाँ सी कर रहा है। प्रेमामृत वाहिनी कलिन्द नन्दिनी के सुरम्य तट पर परम मनोहर एवं दिव्य लता भवन है। लता गृह के चारों ओर सखि समूह अपने अपने सेवा कार्य में संलग्न हैं। कुंज के अभ्यन्तर कक्ष में प्रेम, माधुर्य्य एवं रस की अधिष्ठात्री नवल किशोरी श्रीराधा अपने कोटि प्राणोपम प्रियतम के सुकण्ठ में अपनी कोमल बाहु लता लपेटे सुन्दर सुकोमल कुसुम शय्या पर विराज रही हैं। सम्मुख निकट ही मणिमय चौकी पर रूप लावण्यमयी, दिव्य गुण गण विचक्षणा, प्रेम प्रतिमा श्रीहित सजनि ऐसी शोभित हैं जैसे दूसरी नवल किशोरी श्रीराधा।

ऐसे सुख पूर्ण अवसर में रस का स्रोत प्रवाहित करती हुई रसेश्वरी श्रीप्रियाजी ने अपनी निकट सहचरि श्रीहित सजनि से कहा–

श्रीहित अलि–राधावल्लभीय रसोपासना क्षेत्र में रसिक महानुभावों ने रसिकाचार्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभुपाद के मुख्यतः चार रूप बताये हैं–

(१) **आचार्य्य रूप** – व्यास नन्दन एवं तारा तनय श्रीहित हरिवंश

(२) **वंशीरूप** – श्रीकृष्ण के अधरों से लगी श्रीराधा का यशोगान कारिणी युगल की नित्य संगिनी

(३) **श्रीराधा सहचरी रूप**– निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा की स्वरूप भूता अन्तरङ्ग सहचरि, सखि, सहेली सजनि और दासी आदि रूपों से निरन्तर छायावत् साथ रहते हुए सुख चिन्तन करने वाली एक अन्तरङ्ग सखि जिसे हित अलि, हित सखि, हित सजनि आदि नामों से कहा गया है।

(४) **सर्व व्यापक हित रूप** – ब्रज साहित्य में 'हित' शब्द का सरलार्थ प्रेम है। ये श्रीहित हरिवंशचन्द्र उसी हित' अर्थात् प्रेम के अवतार हैं। यह इस प्रकार है कि आप भगवान श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार हैं और वंशी साक्षात् प्रेम रूपा है। जैसा कि पद्म पुराण में कहा है–

वंशी तत्प्रेम रूपिका।

वंशी उन (श्रीकृष्ण) की प्रेम रूपा है'। और श्रीहित हरिवंश चन्द्र स्वयमेव वंशी हैं)

यथा–

त्वमसि हि हरिवंश श्याम चन्द्रस्य वंशः,
परम रसदनादैर्मोहिताऽशेष विश्वः।

– श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती पाद

(हे हरिवंशचन्द्र ! यह निश्चय है कि आप स्वयं श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार हैं; जिस वंशी ने अपने परम रसमय नाद से सम्पूर्ण विश्व को मोहित कर लिया था) प्रेम ही परमात्मा है, सर्वोपरि तत्व है। यह प्रेम निर्गुण सगुण व्यापक, एवं महान् है। अतः प्रेम रूप श्रीहित हरिवंशचन्द्र भी व्यापक हैं।

राग विभास

मूल – जोई जोई प्यारौ करै, सोई मोहिं भावै;
भावै मोहिं जोई, सोई सोई करैं प्यारे।
मोकौं तो भाँवती ठौर प्यारे के नैननि में।
प्यारौ भयौ चाहै मेरे नैननि के तारे।।
मेरे तन मन प्रानहूँ तें प्रीतम प्रिय;
अपने कोटिक प्रान प्रीतम मोसौं हारे।
(जै श्री) हित हरिवंश हंस हंसिनी साँवल गौर
कहौ कौन करै जल तरंगनि न्यारे।।१।।

भावार्थ–(श्रीप्रियाजी ने कहा"हे सखि!) प्यारे श्रीलालजी जो जो भी कुछ करते हैं, मुझे वह सभी प्रिय लगता है और मुझे जो कुछ प्रिय लगता है, वे भी वही सब करते हैं। यदि मुझे केवल उनके ही नेत्रों में रहने योग्य सुहावना स्थल है तो वह भी मेरे नयनों के तारे (पुतलियाँ) बन जाना चाहते हैं। सखि ! वे मुझे मेरे अपने तन, मन और प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं परंतु उन्होंने तो मुझ पर अपने कोटि कोटि प्राण न्यौछावर कर दिये हैं। श्रीराधा की प्रेम विभोरता से भावित श्रीहित सजनी (हित हरिवंश) ने कहा–

"हे श्यामल गौर ! आप दोनों वृन्दावन प्रेम पयोधि रूप मान सरोवर के हंस हंसिनी हैं। आप जल तरङ्गवत अपृथक हैं तब आपको पृथक कर ही कौन सकता है ?

टिप्पणी–(१) जल तरंगनि:–

श्रीराधा और श्रीकृष्ण केवल कथनमात्र के लिये ही दो हैं, वास्तव में तो ये एक ही प्रेम तत्व के दो विग्रह हैं। इनके तन दो हैं किन्तु मन, प्राण , आत्मा एक ही हैं। क्रीड़ा के लिये ही एक प्रेम ने अपने दो और इसीप्रकार अनेक रूप धारण कर रखे हैं। इनके युगल स्वरूप के एकत्व समर्थन के विषय में शास्त्रों में अनेकों वाक्य मिलते हैं यथा–संहिता में–

य: कृष्ण: सापि राधा या राधा कृष्ण एव स:।

(जो श्रीकृष्ण हैं, वही श्रीराधा हैं और जो श्रीराधा हैं वही श्रीकृष्ण हैं।)

इसी प्रकार श्रीराधा तापिन्युपनिषद् में भी–

ये यं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि–
र्देहश्चैक: क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्।।

"(ये रससमुद्र श्रीराधा और श्रीकृष्ण वास्तव में एक देह हैं, केवल क्रीड़ा के लिये ही दो होकर प्रकट हैं।)"

ऐसे ही वहीं श्रीराधातापिन्युपनिषद् में फिर भी

राधया सहिते देवो माधवे नैव राधिका।
योऽनयोर्भेदं पश्यति स संसृतेर्मुक्तो न भवति।
यस्तु राधां विना तं ध्यायति, प्रवदति, प्रपठति स मूढतमोत्तम:।

(श्रीराधा के सहित श्रीकृष्ण ही पूर्ण श्रीकृष्ण हैं। जो इन दोनों में भेद दृष्टि रखता है, वह कभी संसृति (आवागमन रूप संसार) से मुक्त नहीं हो सकता। जो श्रीराधा के बिना माधव का सेवन करता, पठन करता और कथन वर्णन करता है वह मूढ़ों में भी महामूढ़ है)

अतएव श्रीहिताचार्य्य पाद ने यहाँ जल तरङ्गवत् कहकर दोनों की एकता प्रकट की है।

(२) जोई जोई प्यारो करै सोई मोहिं भावै;
भावै मोहिं जोई सोई करैं प्यारे।

इस पंक्ति में श्रीप्रियाजी ने यह बताया है कि मुझे अपने प्रियतम की सब चेष्टाएँ प्रिय लगती हैं और मुझे उनका कुछ भी अप्रिय नहीं है परन्तु विशेषता यह है कि प्रियतम भी वही करते हैं जो कुछ मुझे प्रिय है और जो मुझे अप्रिय है उसे तो वे कभी भूलकर भी नहीं करते इस कथन में दोनों के चित्तों की एकता प्रकाश मिलता है।

दूसरी पंक्ति–

मोकौं तो भाँवती ठौर प्यारे के नैननिं में,
प्यारौ भयौ चाहै मेरे नैननिं के तारे।

इसमें यह बताया गया है कि दोनों–प्रिया प्रियतम एक दूसरे के सौन्दर्य्य–माधुर्य्य पर पूर्ण मुग्ध हैं। इन दोनों की दृष्टियों में विश्व के अन्य

सौन्दर्य्य आते तक नहीं। यदि श्रीप्रियाजी को प्रियतम के नयनों में भाँवती ठौर है, तो प्रियतम भी उनकी आँखों के तारे बन जाना चाहते हैं। जब आखों के तारे ही बन जायेंगे, तब तो अपने प्रिय–पात्र के सिवाय और कुछ दिखेगा ही नहीं, प्रियतम मय त्रिलोकी बन जायगी। कितनी साध है आत्मसात हो जाने की ? इस आत्म सात भावना के साथ साथ विश्व विस्मृति की भी कैसी अव्यक्त सूचना मिलती है इस कथन में !

मेरे तन मन प्रानहूँ तें प्रीतम प्रिय
अपने कोटिक प्रान प्रीतम मोसों हारे।

इस पंक्ति में प्रेम के महान् उत्सर्ग का रूप है जहाँ युगल किशोर ने अपने कोटि कोटि प्राण एक दूसरे पर न्योछावर कर रखे हैं।

स्पष्ट है कि प्रेम राज्य में प्रतिक्षण त्याग पूर्वक प्रेमास्पद के प्रति पूर्ण तत्सुख भावना निवास करती है। और यही प्रेम का सहज स्वभाव है। उक्त पंक्ति में दूसरी बात यह है कि प्रेमास्पद के प्रति किये गये अपने महान्तम प्रेम को भी प्रेमी अत्यन्त नगण्य मानता है और प्रेमास्पद के अल्प प्रेम को भी महान समझता है।

प्रेमी प्रेमास्पद एक विशाल 'प्रेम गरीबी' लिये रहते हैं यह प्रेम गरीबी बहुत ही स्वाभाविक है। मेरे तन मन हारे' इस पंक्ति में प्रेम गरीबी का बड़ा ही सरस चित्र अङ्कित किया गया है। प्रेम मणि श्रीप्रियाजी अपने प्रति किये गये श्रीलालजी के प्रेम को स्वयं अपने प्रेम से कोटि कोटि गुना मान रही हैं।

इसके सिवाय एक बात और भी यह ध्वनित हो रही है कि जिस प्रेम में कोटि कोटि तन मन और प्राण न्योछावर किये जा सकते हैं, उसमें फिर और क्या शेष रह जाता है ? सबको अपने अपने तन, मन प्राण और आत्मा ही सबसे अधिक प्रिय हैं वरं आत्मा की प्रियता से ही सर्वत्र प्रियता आभासित होती है किन्तु जब वही प्राण, तन, मन आत्मा उस प्रेम पर न्यौछावर हो गये, तब अन्यान्य लोक वैभव स्वर्ग–भोग किंवा मोक्ष पर्यन्त की क्या महत्ता है ? यथा–

'लोक वेद कुलकानि सब, देत बहाये प्रेम।

(रसखान)

अस्तु दोनों प्रेमी हैं, दोनों प्रेमास्पद हैं। दोनों दोनों पर अपने कोटि कोटि प्राणों को न्यौछावर करते हैं, दोनों प्रेम सरोवर के हंस हंसिनी हैं ये दो होकर भी एक हैं ऐसा ही कुछ महात्मा श्रीभगवत रसिकजी ने कहा है—

परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा।
दोउ चातक, दोउ स्वाति, दोऊ घन, दोउ दामिनी अमन्दा।।
दोउ अरविंद, दोऊ अलि लंपट, दोऊ लोहा, दोऊ चुम्बक।
दोऊ आशिक, महबूब दोऊ मिलि, जुरे जराफा अंबक।।
दोऊ मुदार, दोउ मोर, दोऊ मृग, दोऊ राग रस भीने।
दोउ मनि विसद, दोऊ पर पन्नग, दोऊ वारि दोउ मीने।।
'भगवत रसिक' विहारिनि प्यारी रसिक विहारी प्यारे।
दोउ मुख देखि जियत अधरामृत पियत होत नहिं न्यारे।।

— २ —

अवतरण—किसी विशेष सम्भ्रम से श्रीस्वामिनी को मान हो गया है। वे निकुञ्जान्तर भाग में विमना सी बैठी हैं। श्रीस्वामिनीजी को श्रीहित सजनि मधुर वचनों द्वारा चाटुकारी करती हुई प्रसन्न करना चाह रही हैं अतएव श्रीलालजी के गुण,रूप आदि के प्रशंसा पूर्ण शब्दों द्वारा उनके चित्त में प्रियतम मिलन का प्रलोभन उत्पन्न कर रही हैं। कुछ ही समय में उनका प्रयास सफल भी हो जाता है और सहज ही भोली श्रीराधा का मान कर्पूर की भाँति उड़ जाता है। पश्चात् वे शीघ्र ही अपने प्राणाधार प्रियतम से जा मिलती हैं। इस पद में उसी सरस वचन रचना और मान भञ्जन भावना का वर्णन है। मानवती श्रीप्रियाजी से हित सजनि ने कहा—

राग -विभास

मूल — प्यारे बोली भामिनी, आजु नीकी जामिनी;
भेंटि नवीन मेघ सौं दामिनी।।
मोंहन रसिक राइ री माई तासौं जु मान करै,
ऐसी कौन कामिनी।

(जै श्री) हित हरिवंश श्रवन सुनत प्यारी राधिका,
रमन सौं मिली गज गामिनी।।२।।

भावार्थ–(श्रीहित अलि ने कहा–) "हे भामिनि ! (तुम्हें) प्यारे (श्रीकृष्ण) ने बुलाया है।(देखो) आज (कैसी) सुन्दर रात्रि है ? अतः आप नवीन मेघ (रूप श्रीलालजी) से ऐसे भेंटिये (मिलिये) जैसे दामिनि। अरी माई ! मोहन लाल रसिक राज से मान करे भला ऐसी कौन कामिनी होगी ?

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं कि (सखि के) उक्त शब्द सुनते ही गज गामिनि प्यारी राधिका अपने रमण (प्रियतम) से जा मिलीं।

– ३ –

अवतरण–श्रीवृन्दावन के मञ्जुल निकुञ्ज भवन में सम्पूर्ण रात्रि युगल किशोर ने ऐकान्तिक रति विहार किया है। प्रातः काल उनकी रति विगलित स्थिति को देखकर सखियाँ परस्पर में युगल किशोर के रति सूचक चिह्नों का दर्शन करती हुई आनन्द मग्न हो रही हैं। उसी समय श्रीहित सखीजी अन्यान्य (ललितादि) सखियों से युगल किशोर की प्रातः कालीन सुखान्त छबि का वर्णन करती हैं–

राग–विभास

मूल–प्रात समै दोऊ रस लंपट,
सुरत जुद्ध जय जुत अति फूल।
श्रम–वारिज घन बिंदु वदन पर
भूषन अंगहिं अंग विकूल।।
कछु रह्यौ तिलक सिथिल अलकावलि,
वदन कमल मानौं अलि भूल।
(जै श्री) हित हरिवंश मदन रँग रँगि रहे,
नैंन बैंन कटि सिथिल दुकूल।।३।।

भावार्थ–प्रातः काल दोनों रस लम्पट सुरत–युद्ध में विजय एवं प्रसन्नता पूर्वक संलग्न हैं। मुख पर श्रम वारि (प्रस्वेद) की सघन बूँदें शुभ्र मौतिक जैसी

शोभित हैं एवं समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गों के आभरण अस्त व्यस्त हैं। (ललाट पटल का) तिलक कुछ कुछ शेष रह गया है। अलकावलि शिथिल (ढीली) हो चुकी है (और बिखर रही है, जिससे ऐसा) विदित होता है कि वदन कमल पर प्रमत्त भ्रमर मँडरा रहे हैं।

श्रीहित हरिवंश कहते हैं कि (युगल किशोर) प्रेम (मदन) के (आनन्द) रङ्ग में रञ्जित हो रहे हैं, उनके नयन वचन, कटि एवं कटि के वस्त्र (सारी आदि) सभी तो शिथिल हैं।

टिप्पणी–

'मदन रँग रँगि रहे'

श्रीवृन्दावन विहार में शृङ्गार और शृङ्गारोत्तर रस की ही प्रधानता है। इस रस का वर्णन करने में रसिकाचार्य्य एवं रसिक महानुभावों ने यत्र–तत्र प्रेम के विशुद्ध अर्थ में काम, मदन, मार, स्मर, मन्मथ, मनसिज, मनोज आदि शब्दों का प्रयोग किया है। चूँकि उक्त सभी शब्द 'कामदेव' के ही अर्थ के वाचक हैं, तथापि उन महात्माओं का भाव और अर्थ इन प्रयोगों में प्रेम से ही रहा है। शास्त्रों एवं सन्तों ने इसका बड़ा सुन्दर स्पष्टीकरण किया है। 'श्रीचैतन्य चरितामृत' के प्रणेता श्रीकृष्ण दासजी ने काम और प्रेम का अर्थ समझाते हुए कहा है–

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार काम नाम।
श्रीकृष्णेर प्रीति इच्छा तार प्रेम नाम।।
अतएव काम प्रेमे बहोत अन्तर।
काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर।।
अतएव गोपीगण न करे विचार।
कृष्ण सुख हेतु करे संगम विहार।।

(निज सुख की वासना ही काम है और प्रेमास्पद को सुखों की पूर्ति करना ही प्रेम है। इस न्याय से सखियों किंवा श्रीप्रिया प्रियतम का प्रेम, पूर्ण तत्सुख रूप होने से काम आदि शब्दों के द्वारा प्रकट किये जाने पर भी उज्वल प्रेम है।

दूसरे इस दिव्य शृङ्गार रस को काम आदि शब्दों से प्रकट करने का एक तात्पर्य और भी यह है कि यह वृन्दावन विहार रस स्थूल दृष्टि से देखने पर 'काम रस' जैसा ही दिखता है किंतु वास्तव में वह ऐसा है नहीं। इसे यों समझ सकते हैं जैसे शुद्ध खाँड़ से एक तूँबी का आकार निर्मित कर दिया जाय; जो केवल देखने में कड़वी तूँबी सी दिखने पर अन्तर वहिर माधुर्य्य से ओत प्रोत हो।

उक्त प्रसङ्गों में व्यवहृत 'काम' शब्द के अर्थ को श्रीगोपाल तापिन्युपनिषद में इस प्रकार समझाया गया है–

प्रेमैव गोप रामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।

"(इन गोप रमणियों का प्रेम ही काम नाम से कहे जाने की परिपाटी है)

– ४ –

अवतरण–मनोरम प्रात: काल है। रुचिर कुञ्ज भवन में सम्पूर्ण रात्रि भर श्रीयुगल किशोर रसिक राज किसी अनिर्वचनीय रस विहार में तल्लीन रहे हैं, फिर भी दोनों के चित्तों से रस की लालसा न्यून नहीं हुई वरं वृद्धि को ही प्राप्त हुई है किन्तु प्रात: काल होने से विवशता पूर्वक विहार–उपरत होना पड़ा है। जिन प्रेम मयी सखियों ने सम्पूर्ण रात्रि कुञ्ज रन्ध्रों से लगकर विहार दर्शन पूर्वक अपना जीवन रखा है, वे अरुणोदय काल में अनन्त अनन्त यूथों के रूप में रुचिर कुञ्ज प्राङ्गण में उपस्थित हैं। समस्त साभिलाष सखियों की भावनाओं की साक्षी श्रीहित सजनि कुञ्ज के अन्तर्भाग में प्रवेश करती हैं। वहाँ पर श्रीस्वामिनी जी की रति विगलित दशा का अपूर्व दर्शन करके कुछ मुसका देती हैं। हित सजनि की विशेषार्थ व्यञ्जिका हँसी से सङ्कुचित होकर श्रीप्रियाजी लजा जाती हैं एवं अपने रति रस सूचक चिह्नों को छिपाने लगती हैं। तब उनके संगोपन रूप व्यर्थ प्रयास की उपेक्षा पूर्वक रस–वृद्धि करती हुई श्रीहित अलिजी कहती हैं–

राग विभास

मूल–आजु तौ जुवति तेरौ वदन आनंद भरयौ,
पिय के संगम के सूचत सुख चैन।
आलस बलित बोल, सुरँग रँगे कपोल,
विथकित अरुन उनींदे दोउ नैंन।।
रुचिर तिलक लेस, किरत कुसुम केस;
सिर सीमंत भूषित मानौं तैं न।
करुना करि उदार राखत कछु न सार;
दसन वसन लागत जब दैंन।।
काहे कौं दुरत भीरु पलटे प्रीतम चीरु,
बस किये स्याम सिखै सत मैंन।
गलित उरसि माल, सिथिल किंकनी जाल,
(जै श्री) हित हरिवंश लता गृह सैंन।।४।।

भावार्थ–"हे युवति ! तुम्हारा जो यह मुख आनन्द से प्रफुल्लित है उसी से तुम्हारे प्रियतम सङ्गम जनित सुख की सूचना मिल रही है। जैसे तुम्हारे बोल आलस्य से लटपटाये हुए हैं वैसे ही तुम्हारे कपोल भी सुरङ्ग (ताम्बूल पीक) से रँग गये हैं। दोनों नयन विशेष थकित से, अरुण एवं उनींदे हैं; ललाट पर तिलक भी लेश मात्र ही रह गया है। वेणी से पुष्प खिसक खिसक कर गिर रहे हैं और सिर में मानों आपने सीमन्त रेखा भूषित ही नहीं की है। तुम बड़ी उदार हो हे उदार स्वामिनी जब तुम श्रीलालजी के लिए अपने अधरासव का दान करने लगती हो तब कुछ भी शेष नहीं रखती, (सर्वस्व दे डालती हो।) हे भीरु ! अब (रात्रि के अंधकार में धोखे से बदले हुए) प्रियतम के इन वस्त्रों को क्यों छिपा रही हो? हे स्वामिनि ! तुम ऐसी रस विचक्षणा हो कि श्याम को शत् शत मदन की घातों (शिक्षा) के द्वारा अपना वशवर्त्ती कर लिया है।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं "अहो ! तुम्हारे तो उर की माला भी कुम्हला गयी है तथा किङ्किणी जाल भी शिथिल है, अत: निश्चित है कि तुमने अवश्य ही लता गृह में शयन विलास किया है।"

– ५ –

अवतरण–प्रातः पावन समीरण बह रहा है। समस्त वन खग–वृन्द कलरव से मुखरित है। यमुना तटवर्त्ती ललित लता मन्दिर से निकल कर रसिक युगल किशोर गल बहियाँ दिये झूमते डगमगाते से चले आ रहे हैं उनींदे नयन बार–बार झँप जाते हैं। वस्त्र एवं भूषण शिथिल हैं, कहीं कपोलों पर पीक है तो कहीं नयनों में मलिन मषि रेखा है। उर पर खण्डित मालावलि शोभित हैं। वस्त्र पलट चुके हैं, प्रियाजी के श्रीअंग में पीताम्बर की शोभा है और प्रियतम के नीलाम्बर की। श्रीअंग में ललिता, विशाखादि सखियाँ चँवर व्यजन ढुराती चल रहीं हैं, बीच बीच में युगल के विगलित वस्त्राभरणों को सम्हाल भी देती हैं। कुछ प्रशंसा परायण सहचरियाँ अपने कोकिल कण्ठ से मधुर मधुर विभास गाती हैं। गान वर्णित भाव का लक्ष्य अपनी ओर समझकर युगल एक दूसरे की ओर देखकर मुसकुराते और फिर प्रेमलज्जा से भर जाते हैं छटा का वर्णन श्रीहित हरिवंश जी इस प्रकार करते हैं

राग विभास

मूल–आजु प्रभात लता मंदिर में,
सुख वरषत अति हरषि जुगल वर।
गौर स्याम अभिराम रंग भरे,
लटकि लटकि पग धरत अवनि पर।।
कुच कुमकुम रंजित मालावलि,
सुरत नाथ श्रीस्याम धाम धर।
प्रिया प्रेम के अंक अलंकृत,
चित्रित चतुर सिरोमनि निजु कर।।
दंपति अति अनुराग मुदित कल,
गान करत मन हरत परस्पर।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रसंसि परायन,
गायन अलि सुर देत मधुर तर।।५।।

भावार्थ—मंगल प्रभात की वेला में हर्षोन्मादित युगल किशोर अलसाये हुए लटक लटक कर लता भवन की मंजुल भूमि पर मादक गति से चलते हैं। वृन्दावन निकुञ्ज धाम में सूरत–विलासी श्रीश्यामसुन्दर की मालाएँ श्रीराधा के उरोज चर्चित केशर लेप से मण्डित हैं। इसी प्रकार श्रीप्रियाजी के श्रीअंगों में प्रेम चिह्न (नख क्षत) अलङ्कृत हैं, जिन्हें चतुर शिरोमणि लाल ने अपने हाथों से चित्रित किया है।

श्रीहित हरिवंश कहते हैं कि अत्यधिक प्रेम उल्लसित दम्पति मधुर मधुर गान करते हुए एक दूसरे का मन हरण कर रहे हैं, और उस गान के साथ प्रशंसा परायण सखियाँ अपना मधुर तर स्वर मिला रही हैं।

— ६ —

अवतरण— सम्पूर्ण रात्रि युगल किशोर ने लता मन्दिर में एकान्तिक रस विलास किया है। प्रभात हुआ जानकर श्रीलाल जी अकेले ही निकुञ्ज भवन से चल निकले किन्तु सामने से आते हुए श्रीहित अलिजी ने उन्हें देख लिया। श्याम सुन्दर के श्रीवपु में रति विहार के अनेकों चिह्न चिह्नित थे। उन्हें देख कर हित सखि मुसका गईं। श्याम सुन्दर ने लजाकर उन चिन्हों को छिपाना चाहा किन्तु दोनों प्रेमियों के एकान्त मिलन का भेद खुल ही चुका था। अतः उसका सुखवर्द्धन करती हुए श्रीहित सजनि ने कहा—

राग विभास

मूल—कौन चतुर जुवती प्रिया, जाहि मिलत लाल चोर ह्वै रैंन।
दुरवत क्यौंऽब दूरै सुनि प्यारे, रंग में गहले चैंन में नैंन।।
उर नख चंद विराने पट, अटपटे से बैंन।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक राधापति प्रमथित मैंन।।६।।

भावार्थ—(श्रीहित अलि ने कहा—) "हे लाल ! ऐसी कौन चतुर युवती प्रेयसी है (जिससे) आप रात्रि में चोरी चोरी मिलते हैं ? हे प्यारे ! आनन्द विलास रंजित एवं सुख पूरित आपके नयन भला कहीं छिपाने से छिप सकते हैं ? वक्षस्थल पर ये नख चन्द्र के चिह्न पलटे हुए पराये वस्त्र और तिस पर

यह अटपटे से बोल ? बहुत स्पष्ट है कि रसिक राधापति ! आप मदन के द्वारा विशेष प्रमथित कर दिये गये हैं।"

टिप्पणी—

उर नख चन्द्र—यहाँ "उर नख चन्द्र, बिराने पट, अटपटे से बैन, ये तीन चिह्न विशेष बताये गये हैं। इनमें तीनों लक्षण नायिका में और नायक में अन्तिम दो ही घटित होने चाहिये क्योंकि प्रथम लक्षण उर नख चन्द्र' नायिका के अङ्गों में सम्भव है क्योंकि वही उसकी पात्र है, पयोधर मर्दन आदि के विचार से। किन्तु इस पद में यह लक्षण—उर नख चन्द्र —नायक के अङ्ग में बताया गया है।

(१) श्रीहिताचार्य्य पाद ने अन्यत्र भी अपने कई पदों में नखाघात की परिस्थितियाँ उपस्थित की हैं। एक स्थल में गौर—श्याम भुज की मनोहर कलह दिखायी है, जिसमें हाथापाई से मालावलि टूट जाने का भी वर्णन है। वहाँ अधिक सम्भव है कि प्रिया कर नखों से प्रियतम के उर पर नख क्षत हो जायँ; यथा—

गौर स्याम भुज कलह मनोहर नीबी बन्धन मोचत डोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश करत कर धूनन प्रनय कोप मालावलि तोरी।।

(२) रस समतुल्य दम्पति किसी एकान्तिक क्रीड़ा में रत हैं। क्रीड़ा का वर्णन है—

खंडन अधर करत परिरंभन एँचत जघन दुकूल।
उर नख पात, तिरीछी चितवन दम्पति रस सम तूल।।
वे भुज पीन पयोधर परसत वाम दृशा पिय हार।

—हित चौरासी पद संख्या ३२

रस समतुल्य दम्पति की प्रायः सभी क्रियाएँ दोनों ओर से समतुल्य होंगी, अतः उर नख पात' भी नायक के वक्षस्थल पर हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

(३) रस क्षेत्र की एक परम गोप्य भावना है—विपरीत रति। इसमें नायक बन जाता है नायिका और नायिका बन जाती है नायक। तब उनकी समस्त चेष्टाऐं तद्वत हो जाती है। ऐसी दशा में निर्मित नायिका के 'उर नख चन्द्र' स्वभाविक हैं।

उक्त पद संख्या छः में इसी प्रकार की रति विपरीत क्रीड़ा का कुशल सङ्केत प्रतीत होता है।

— ७ —

अवतरण— शरद की रात्रि में शीतल एवं मन्द समीर सौरभ वासित व्यजन झल रहा है। सुधाकर अपनी सुधा रश्मियों से वृन्दावन का सिञ्चन कर रहा है। अतीव सुखमय अवसर है। किसी सघन नव पल्लव मण्डित लता मण्डप में रसिक शेखर युगल किशोर अनिर्वचनीय रस क्रीडा में तल्लीन हैं और बाहर कुञ्ज रन्ध्रों से लगी रस लोलुप सहचरियाँ युगल किशोर की रसमयी क्रीड़ा के दर्शन से परम सुख का अनुभव कर रही हैं। इस निभृत निकुञ्ज विहार रस का वर्णन श्रीहित हरिवंश महाप्रभु इस प्रकार करते हैं—

बिलावल

मूल—आजु निकुंज मंजु में खेलत,
नवल किसोर नवीन किसोरी।
अति अनुपम अनुराग परसपर,
सुनि अभूत भूतल पर जोरी।।
विद्रुम फटिक विविध निर्मित धर,
नव कर्पूर पराग न थोरी।
कौंमल किसलय सैंन सुपेसल,
तापर स्याम निवेसित गोरी।।
मिथुन हास परिहास परायन,
पीक कपोल कमल पर झोरी।
गौर स्याम भुज कलह मनोहर,
नीवी बंधन मोचत डोरी।।
हरि उर मुकुर बिलोकि अपनपौ,
विभ्रम विकल मान जुत भोरी।
चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधत,
पिय प्रतिबिंब जनाइ निहोरी।।

'नेति नेति' बचनामृत सुनि सुनि,
ललितादिक देखतिं दुरि चोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश करत कर धूनन,
प्रनय कोप मालावलि तोरी।।७।।

भावार्थ – सुन्दर निकुंज मंदिर में नवल किशोर स्याम एवं नवल किशोरी श्रीराधा रस क्रीड़ा संलग्न हैं। दोनों का पारस्परिक अनुराग भी अति अनुपम है। यह अनोखी जोड़ी भूतल (स्थित श्रीवृन्दावन) में ही सुनी एवं देखी जाती है निकुंज मंदिर की भूमि दिव्य मूँगा स्फटिक आदि नाना मणियों से खचित है। उस मणिमय भूमि पर नव कर्पूर की रज बिखर रही है। सुकोमल नव पल्लव रचित एक शय्या सुशोभित है। उस शय्या पर श्याम सुन्दर ने श्रीप्रियाजी को आग्रह पूर्वक विराजमान किया है। भाव यह है कि उन्हें निकुआन्तर्गत शय्या में पौढ़ाया है। हास परिहास परायण युगल किशोर ने परस्पर कपोल–कमल पर ताम्बुल की पीक अंकित करके रस विस्तार किया है। उस समय गौर–श्याम का बाहु कलह बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। पश्चात् श्यामसुन्दर श्री प्रियाजी के कटि बन्धन मुक्त करने का सरस प्रयास करते हैं। श्रीराधा प्रियतम के उज्वल वक्ष में अपनी छवि देखकर विभ्रम से व्याकुल तथा मान–युक्त हो जाती हैं। तब प्रियतम उनके अत्यन्त सुन्दर चिबुक को सहलाकर अनुनयपूर्ण निवेदन करते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि यह आपकी सुन्दर छवि का ही प्रतिबिम्ब है। श्रीहित हरिवंश कहते हैं कि इस प्रेम कलह में श्रीप्रिया के मुख से 'नेति–नेति' वचनामृत सुनकर ललितादि सहचरी छिपकर चोरी चोरी इस प्रेम कलह का दर्शन कर रही हैं। श्रीप्रियाजी ने हाथापाई करते हुए प्रणय कोप वश श्रीलालजी के वक्ष स्थल की मालाएँ तोड़ दीं।

टिप्पणी–(१) मान जुत भोरी–

वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा अद्भुत रूप लावण्य की वह पराकाष्ठा हैं। अपने नित्य नवीन रूप सौन्दर्य्य पर स्वयं मुग्ध होकर द्वैतात्मक भ्रम से व्याप्त हो जाती हैं। अतः प्रियतम के हृदय मुकुर में अपना प्रतिबिम्ब देखकर मानवती हो गयीं कि जाने किस सुन्दरी ने इन के हृदय पर अधिकार कर लिया और इन्होंने उसे स्थान दे रखा है।

इसलिये वे विभ्रम से व्याकुल हो गयीं। इस भ्रम और मान का निवारण श्रीलालजी ने बड़ी चतुरता से किया। उन्होंने अपने दीन अनुनय से श्रीप्रियाजी को जँचा दिया कि मेरे हृदय की मणि चौकी में आपका ही प्रतिबिम्ब है; किसी अन्य सुन्दरी का नहीं।

— ८ —

अवतरण — आज की रात्रि किसी अनिर्वचनीय विलास रस के आस्वादन में बीती है। युगल किशोर रात भर के अनींदे हैं, प्रभात हुआ जान कर सखि जन उन्हें शय्या कुञ्ज से मङ्गल कुञ्ज में ले जा रही हैं। सालस प्रिया के पग डगमगाते जा रहे हैं। प्रभात की इस छबि को देखकर श्रीहित अलि ने श्रीप्रियाजी से कहा—

बिलावल

मूल— अति ही अरुन तेरे नयन नलिन री।
आलस जुत इतरात रँगमगे,
भये निसि जागर मषिन मलिन री।।
सिथिल पलक में उठति गोलक गति,
बिंधयौ मोंहन मृग सकत चलि न री।
(जै श्री) हित हरिवंश हंस कल गामिनि,
संभ्रम देत भ्रमरनि अलिन री।।८।।

भावार्थ — अरी सखि ! आज तुम्हारे नयन कमल बड़े अरुणिम हैं। रात्रि के भर विलास एवं जागरण के चाव से अत्यन्त आलस्य युक्त हो रहे हैं। मिलन के गौरव से गर्वित, प्रेम रंग से छलक रहे हैं एवं कज्जल रंजित श्यामलता से शोभित है। सम्मोहन कारी नयनों की थकित पलकों में युग गोलक की मंथर गति ने मोहन मृग (श्रीश्याम सुन्दर) को वेध सा दिया है वे रस मुग्ध अवस्था में गति हीन से हो गये हैं।)

श्रीहित हरिवंश कहते हैं—हे मरालवत् सुन्दर गति शीले ! तुम तो एक ओर भ्रमरों को अपने नेत्रों की सुन्दरता से कमल का संभ्रम उत्पन्न कर रही हो

तथा दूसरी ओर अपनी सुन्दर मराल गति द्वारा सखियों से रात्रि के रति विलास के गोपन की चेष्टा करती हुई प्रिय संगम के रहस्य का संशय उत्पन्न कर रही हो मानो कि तुमने प्रियतम से समागम ही प्राप्त नहीं किया हो।

— ९ —

अवतरण—नाना तरु लताकीर्ण श्रीवृन्दावन के मध्य भाग में अत्यन्त रमणीय नव निकुञ्ज मन्दिर है। मन्दिर के दिव्य कक्ष में महा महा मणि रत्नों से खचित उच्च सिंहासन है। सिंहासन अनेक अनेक कोमल और स्वच्छ आस्तरणों से मण्डित है। यथा योग्य स्थलों पर कनक तारों से जटित उपवर्हण (तकिये) रखे हैं। उन उपवर्हणों का सहारा लिये युगल किशोर सिंहासनासीन हैं। चारों ओर प्रधान प्रधान सखियाँ चँवर, व्यजन, ताम्बूल, परिमल पात्र दर्पण आदि लिये खड़ी हैं।

युगल किशोर की छबि छटा देखते ही बनती है। सखियों ने उन्हें बहुत बहुत प्रकार से सजाया है। दिव्य वस्त्र आभूषण अंगों में झलक रहे हैं। ललाट पटल पर खौर है। काले घुँघराले कुन्तल कहीं तो भ्रमर की तरह मुख कमल मधु का पान कर रहे हैं; तो कहीं काली, कोमल नागिनियों की भाँति एकत्र करके बाँध दिये गये हैं। अतुल शोभा है। जिसका वर्णन श्रीहिताचार्य्य पाद करते हैं—

सारंग

मूल— बनी श्रीराधा मोहन की जोरी।
इंद्र नील मनि स्याम मनोहर,
सात कुंभ तनु गोरी।।
भाल बिसाल तिलक हरि,
कामिनि चिकुर चंद्र बिच रोरी।
गज नाइक प्रभु चाल, गयंदनि—
गति वृषभानु किसोरी।।

नील निचोल जुवति, मोहन पट–
पीत अरुन सिर खोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक राधा पति,
सुरत रंग में बोरी।।९।।

भावार्थ–अति अनुपम जोड़ी है श्रीराधा मोहन की। मनोहर श्याम सुन्दर इन्द्र नील मणि की भाँति हैं। तो वृषभानु किशोरी श्रीराधा काञ्चन तनु हैं। लाल के विशाल भाल पर तिलक शोभित है, तो कामिनि प्रिया की केश चन्द्रिका के मध्य (माँग) में रोरी लसित है। मोहन लाल की गति (चाल) मत्त गजराज जैसी मोहक और श्रीवृषभानु नन्दिनी की मत्त करिणी जैसी मद मथंर है। नव तरुणि श्रीराधा के श्रीअंग में नीलाम्बर शोभिते हैं और श्याम सुन्दर के श्यामाङ्ग पर पीत कौशेय धारण है। उपरोक्त नख शिख शृङ्गार की पूर्णता शिरोभाग पर लसित अरुण खोरी (छोर) कर रहा है। श्रीहित हरिवंश कहते हैं यह जोड़ी सौन्दर्य्य एवं रस की सीमा है। राधापति श्रीकृष्ण रसिक चूड़ामणि हैं और श्रीराधा सुरत रस सिन्धु रूपा हैं।

टिप्पणी–इस पद में युगल किशोर के वाह्य और आन्तर शृङ्गार का साम्य दिग्दर्शन है। क्रमशः वपु वर्ण से प्रारम्भ करके चन्दन लेप गमन गति, पट धारण और अन्त में रस की ओर सङ्केत है। इसमें अन्तिम बात 'रसिक राधा–पति, सुरत रंग में बोरी' यह पदांश श्रीहिताचार्य्य का हृदय और पूर्ण पद का जीवन स्वरूप है।

– १० –

अवतरण–मध्याह्न शृंगार के उपरान्त युगल किशोर रास–रस परायण हैं जहाँ नृत्य–पूरक नाना सुमधुर ताल–स्वर युक्त वाद्य झंकृत हो रहे हैं। रास लास्य विचक्षणा श्रीराधा की अद्भुत नृत्य गति पर सहचरि वृन्द अपने प्राण बलिहार करता है–

सारंग

मूल–आजु नागरी किसोर, भाँवती विचित्र जोर,
कहा कहौं, अंग अंग परम माधुरी।

करत केलि कंठ मेलि बाहु दंड गंड–गंड,
परस, सरस रास लास मंडली जुरी।।
स्याम–सुंदरी विहार, बाँसुरी मृदंग तार,
मधुर घोष नूपुरादि किंकनी चुरी।
(जै श्री.) देखत हरिवंश आलि, निर्त्तनी सुधंग चलि,
वारि फेरि देत प्राँन देह सौं दुरी।।१०।।

भावार्थ– आज रस विदग्धा श्रीराधा एवं ललित नायक श्याम सुन्दर अनुपम छटा से शोभित हैं। अंग प्रत्यंग से प्रस्फुट रूप माधुर्य्य अवर्णनीय है। सहचरि परिकर में अनुराग विवश युगल, परस्पर स्कन्ध वाहु परिवेष्टित, कपोल का स्पर्श किये हुए सरस रास लास्य का विस्तार करते हैं। सुन्दर श्यामा–श्याम के रास विहार में वंशी मृदंग और तार वाद्यों का मधुर घोष क्षरित है एवं श्रीअंग पर धारण नूपुर किंकिणी वलयादि आभूषणों का मधुर सिञ्जन स्वर सम्मिलित है।

नृत्यगति शीला श्रीराधा की तीव्र नृत्य गति को देखकर स्वामिनी की अंग भूता रस विमुग्धा हित अलि अपने प्राणों को बारम्बार न्यौछावर करती हैं।

– ११ –

अवतरण–शरद की सुन्दर रजनी है। आकाश में निर्मल एवं पूर्ण चन्द्र सुशोभित है। मञ्जुल श्रीवृन्दावन में चन्द्र देव की शुभ्र किरणों का वितान तना हैं। शीतल पवन सौरभ भार लेकर मन्थर मन्थर गति से बह रहा है। यमुना के निकट तट पर एक रम्य कुञ्ज कुटी है लतावेष्टित, प्रसून पल्लव मण्डित।

रस लम्पट श्रीमोहनलाल अनुनय एवं चाटुकारी पूर्ण वचनों से प्रियतमा श्रीराधा को प्रसन्न करना चाह रहे हैं। इस पद में दिव्य सौरत पूर्व रस का वर्णन किया गया है।

विलावल

मूल–मंजुल कल कुंज देस, राधा हरि विसद वेस,
राका नभ कुमुद–बंधु, सरद जामिनी।

साँवल दुति कनक अंग, विहरत मिलि एक संग;
नीरद मनि नील मध्य, लसत दामिनी।।
अरुन पीत नव दुकूल, अनुपम अनुराग मूल;
सौरभ जुत सीत अनिल, मंद गामिनी।
किसलय दल रचित सैंन, बोलत पिय चाटु बैंन;
मान सहित प्रति पद, प्रतिकूल कामिनी।।
मोहन मन मथत मार, परसत कुच नीवी हार;
वेपथ जुत 'नेति–नेति,' बदति भामिनी।
"नरवाहन" प्रभु सुकेलि, वहु विधि भर, भरत झेलि,
सौरत रस रूप नदी जगत पावनी।।११।।

भावार्थ–शरद् की मधुमयी राका निकुंज प्राङ्गण को पूर्ण चन्द्र की रजत् रश्मियों से आलोकित कर रही हैं। सुन्दरातिसुन्दर निकुञ्जातर कक्ष में सौन्दर्य्य धाम श्रीराधा एवं श्रीहरि सुन्दर शृंगार से सुसज्जित हैं। विहरणशील युगल की श्याम और गौर अङ्ग कान्ति मिलकर ऐसे प्रतिबिम्बित हैं जैसे नील मणिवत् जलधर में चपला का चाञ्चल्य। श्याम सुन्दर के सुभग अङ्ग पर पीत दुकूल सज रहा है और श्रीराधा के गोराङ्ग पर लाल (सुरङ्ग) चूनरी फब रही मानो यह अरुण पीत वस्त्र अनुराग प्रेम के मूलाधार हैं। इधर सुवासित शीतल समीर मन्द मन्द व्यजन झल रहा है। निकुञ्ज भवन में किशलय दल निर्मित शय्या पर (विराजित) प्रियतम अनेक अनुनय विनय एवं प्रणय वाक्यों के द्वारा प्रेयसी श्रीराधा को सुरत केलि के हेतु सहमत करने का प्रयास करते हैं। किन्तु कामिनी कणकण में रस तृषा वर्द्धन करती हुई प्रति पद क्षण क्षण में वामता ग्रहण करती जा रही है। प्रेमावेशित मोहन का मन स्मर रुज से व्यथित हो गया है। अतः बारम्बार उरोज कटि बन्धन एवं हार आदि का स्पर्श कर देते हैं तब लज्जा क्रान्त कंपित कामिनी "नहीं" "नहीं" का मधुर शब्द रूप मौक्तिक क्षरित करतीं है। श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं कि श्रीयुगल की इस कल्लोल माला को नरवाहन हृदय में विविध प्रकार से अनवरत धारण करते हैं क्योंकि यह सुख केलि सरिता जगमंगल मयी है।

टिप्पणी—हित चौरासी के एकादश एवं द्वादश संख्या वाले दो पद श्रीहित महाप्रभु ने किसी विशेष बात पर रीझ कर अपने शिष्य नरवाहन जी को भेंट किये हैं। एवं उनके नाम की छाप दी है। वस्तुतः दोनों पद श्रीहित हरिवंश चन्द्र रचित हैं।

— १२ —

अवतरण — आज वंशीवट के तट की शोभन यमुना पुलिन पर श्याम सुन्दर ने रास नृत्य की आकाँक्षा की है। सुखद शीतल एवं उज्वल शारदीय राका रजनी है। अनन्त सहचरि समूह एकत्रित हो गया है। किन्तु रासेश्वरी राधा जिनके बिना रास नृत्य सम्भव नहीं, अन्यत्र मानिनी बनी बैठी हैं। हित अलि लाल पर करुणा करके प्रिया को मनाने गयीं। मानिनि के निकट जाकर उन्होंने कहा—

मूल—चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान;
रास रच्यौ स्याम तट कलिंद नंदिनी।
निर्तत जुवती समूह, राग रंग अति कुतूह;
बाजत रस मूल मुरलिका अनंदिनी।।
बंसीवट निकट जहाँ, परम रमनि भूमि तहाँ;
सकल सुखद मलय बहै वायु मंदिनी।
जाती ईषद विकास, कानन अतिसै सुवास;
राका निसि सरद मास, विमल चंदिनी।।
नरवाहन' प्रभु निहारि, लोचन भरि घोष नारि,
नख सिख सौंदर्य काम दुख निकंदिनी।
विलसहि भुज ग्रीव मेलि भामिनि सुख सिंधु झेलि;
नव निकुंज स्याम केलि जगत बंदिनी।।१२।।

भावार्थ — हे रस विचक्षण राधिके चलकर देखो कि केवल तुम्हारे ही कारण श्याम सुन्दर ने कलिन्द नन्दिनी यमुना के तट पर रास की रचना की है। जहाँ समस्त युवति समूह अत्यधिक राग—रङ्ग और उत्साह पूर्वक नृत्य परायण है तथा श्याम सुन्दर की रस मूल एवं आनन्दमयी वंशी का मधुर गान मुखरित है परम रम्य स्थली वंशीवट के निकट सुखद मलयज पवन मन्द मन्द

प्रवाहित है और मन्द मुकुलित मल्लिकादि पुष्प श्रीवृन्दा कानन को अपनी सुगन्ध से पूरित कर रहे हैं। मधुमयी शरद् शर्वरी पूर्ण हिमकर की मरीचिमाला से अलंकृत है। श्रीहित सखी कहती हैं–हे गोप कुमारि ! हे भामिनि !! आप नरवाहन के प्रभु प्रेम स्मर ताप से व्यथित श्रीश्याम सुन्दर को प्रेममयी चितवन से धन्य धन्य कीजिये; हे निखिल सौन्दर्य्य राशि! आप मानत्याग पूर्वक प्रियतम के कण्ठ को अपनी मृणाल बाहुओं से अलंकृत करते हुए अतुल आनन्द राशि का अवगाहन कीजिये। नव निकुञ्जान्तर्गत आपकी यह श्याम सङ्गम केलि का उज्वल रस अखिल विश्व वन्द्य है। सर्व श्रेयस्कर है।

– १३ –

अवतरण – प्रातः काल श्रीप्रियाजी अपने मणिमय निकुञ्ज प्राङ्गण में बैठी अपनी त्रुटित माला का गुम्फन कर रही थीं। उसी समय परम ललित नायक श्रीलालजी उस वीथी से हो निकले और उन्होंने जान बूझ कर एक 'काँकरी' प्रियाजी की ओर फेंकी। प्रियाजी ने लाल की ओर देखा और वे नायकोचित प्रियतम के गुण, रूप एवं माधुर्य्य पर मुग्ध हो गयीं। 'काँकरी फेंकने का प्रयोजन पूर्ण हुआ।

श्रीप्रियाजी अपनी मन:स्थिति हित सखी से कह रही हैं–

मूल– **नंद के लाल हर्‌यौ मन मोर।**
हौं अपने मोतिनु लर पोवति,
काँकरि डारि गयौ सखि भोर।।
बंक बिलोकनि चाल छबीली,
रसिक सिरोमनि नंद किसोर।
कहि कैसें मन रहत श्रवन सुनि,
सरस मधुर मुरली की घोर।।
इंदु गोबिंद वदन के कारन,
चितवन कौं भये नैंन चकोर।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक रस जुवती।
तू लै मिलि सखि प्रान अँकोर।।१३।।

भावार्थ–श्रीप्रियाजी ने कहा– "सखि ! नन्द नन्दन ने तो मेरा मन हर लिया है। मैं अपने भवन में बैठी मुक्ता माल पिरो रही थी उन्होंने सबेरे सबेरे मुझ पर काँकरी फेंक कर मेरी तन्मयता भंग करके अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

नयनाभिराम रसघन मोहन मूर्त्ति नन्द किशोर की तिरछी चितवन एवं मद मत्त पद गति को देखकर तथा मधुर रस पूर्ण वंशी स्वर को सुनकर किस प्रकार मन स्थिर रह सकता है ? अथ च इन्दीवर श्याम के मुख दर्शन के लिये मेरे नेत्र चकोर वत् तृषित हैं।

श्रीहित हरिवंश कहते हैं कि श्रीप्रिया मुख से उपरोक्त बात सुनकर (सखी ने कहा कि हे युवति ! तुम प्राणों को न्यौछावर करती हुई अपने प्रियतम रसिक वर लाल का मिलन प्राप्त करो।

– १४ –

अवतरण–युगल किशोर के स्नान का समय है अतः सखियों ने दोनों का कुआन्तर किया है किन्तु प्रियतम श्रीलालजी को यह अल्प कालीन वियोग भी असह्य है। वे आतुर होकर हित सजनी से प्रार्थना करते हैं कि मुझे प्रियाजी के निकट आप पहुँचा दें। किन्तु हित सजनी भी उन्हें इस समय प्रियाजी के स्नान कुञ्ज में पहुँचाने में आपत्ति मान रही है। (अन्ततः प्रियतम के सन्तोष के लिये उन्होंने एक उपाय निकाला कि वे उन्हें सहचरि बनाकर ही कुञ्ज तक ले जायँ किन्तु उनके सहचरि बनाकर यहाँ तक लाने का भेद खुल गया, तो अवश्य प्रियाजी रूठ जायेंगी)। ऐसी दशा में चतुर हित सजनी ने एक चाल चली।। वे एक खासे समय तक श्रीलालजी को बातों में उलझाये रहीं तब तक प्रियाजी स्नान कर चुकीं। प्रियतम को उलझाये रखने की बातें थीं–उनको सहचरि कैसे बनाया जाय ? और कैसे प्रिया जी तक ले जाया जाय ताकि भेद न खुले। यदि कदाचित भेद खुल गया तो क्या क्या हो सकता है ? इत्यादि !

समस्या के निराकरण में बहुत सा समय लग गया तब तक श्रीप्रियाजी स्नान शृङ्गार से निवृत हो लीं और पश्चात् हित सजनी ने उन्हें प्रियाजी के समीप पहुँचा दिया। दोनों मिल गये। वियोग व्यथा मिट गयी।

इस पद में हित सजनी एवं लाल की उसी समस्या वार्त्ता का वर्णन है–

मूल– अधर अरुन तेरे कैसे कैं दुराऊँ?

रवि ससि संक भजन किये अपबस,
अदभुत रंगनि कुसुम बनाऊँ।।
सुभ कौसेय कसिव कौस्तुभ मनि,
पंकज सुतनि लै अंगनि लुपाऊँ।
हरषित इंदु तजत जैसे जलधर,
सो भ्रम ढूँढ़ि कहाँ हौं पाऊँ।।
अंबु न दंभ कछू नहीं व्यापत,
हिमकर तपै ताहि कैसे कैं बुझाऊँ।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक नवरँग पिय
भृकुटि भौंह तेरे खंजन लराऊँ।।१४।।

भावार्थ– (हित सखि ने कहा–) "हे रसिक वर लाल ! आपके अत्यन्त अरुण अधरों का राग किस प्रकार छिपाऊँ ? यदि मैं कदाचित् उन अधरों की अद्भुतता कुसुम रङ्गों से रंजित करूँ तो भी मुझे रवि शशि रूप प्रेम की आशङ्का है, (अर्थात् ताप शैत्य उभय गुण विशिष्ट प्रेम आपके अधरों में वैवर्ण्य, शुष्कता, कम्पन आदि रूपों में प्रियतमा दर्शन के समय प्रकट हो ही जायगा। तब मेरा रङ्ग निर्माण रूप प्रयास व्यर्थ होगा।) यदि आपके कौस्तुभ मणि को उज्वल कौशेय वस्त्रों से छिपा दिया जाय और पङ्कज पराग के लेपन पूर्वक आपकी श्याम अंग कान्ति का अदर्शन भी कर दूँ किन्तु जब जलद अवगुण्ठन से निर्मुक्त चन्द्रमा की भाँति आपका श्रीमुख उल्लसित हो उठेगा (और इससे आपका भेद खुलने लगेगा, तब मैं वहाँ पर श्रीप्रिया के सम्मुख) कौन सा मिष (संभ्रम) उपस्थित करूँगी? तब तो उस समय वहाँ पर श्रीप्रियाजी के समक्ष न शीतल वचन काम देंगे और न दम्भ, छल या कृत्तिमता ही सफल हो सकेगी। अरे! जब चन्द्रवत! शीतल स्वभाव मयी श्रीप्रिया ही तप्त (कुपित) हो उठेंगी तब मैं उन्हें किन वचनों के द्वारा शान्त व प्रबोधित करूँगी।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं "किन्तु फिर भी हे रसिक नायक प्रियतम! आपके खञ्जन वत् चपल नयनों का श्रीराधा की भृकुटियों से– अवश्य मिलन करा दूँगी।"

नोट : इस पद के भावार्थ में प्राचीन टीकाकारों का प्रायः वैमत्य है। लेखक ने भी अपने विचारानुसार सामान्य अर्थ प्रकट किया है।

— १५ —

अवतरण— प्रातः काल स्वामिनी श्रीराधा की सुरतालस पूर्ण तन्मय दशा को देखकर हित सखी सावधान करने के हेतु मधुर सम्भाषण पूर्वक उनका ध्यान आकृष्ट करती हैं—

मूल—अपनी बात मोसौं कहि री भामिनी,
आँगी मौंगी रहति गरब की माती।
हौं तोसौं कहत हारी सुनि री राधिका प्यारी,
निसि कौ रंग क्यौं न कहति लजाती।।
गलित कुसुम बैंनी सुनि री सारँग नैंनी,
छूटी लट, अचरा वदति, अरसाती।
अधर निरंग रँग रच्यौ री कपोलनि,
जुवति चलति गज गति अरुझाती।।
रहसि रमी छबीले रसन बसन ढ़ीले,
सिथिल कसनि कंचुकी उर राती।
सखी सौं सुनि श्रवन वचन मुदित मन,
चली हरिवंश भवन मुसिकाती।।१५।।

भावार्थ—प्रियतम मिलन सुख उन्म के गौरव से उन्मादित हे श्यामे ! तुम अपने हृदय का रसमय आवेश मुझसे प्रकट करो जो तुम गुमसुम मौन पूर्वक आस्वादन कर रही हो। लाड़िली राधे ! मैं तुमसे पूछते पूछते परिश्रान्त प्राय हो गयी हूँ किन्तु तुम अपने सरस चिन्तन की अन्तर्मुखी वृत्ति से तनिक भी निवृत्त नहीं होतीं। रात्रि कालीन मधुमय प्रिय सङ्गम का सुख वर्णन क्यों नहीं करती, अपनी इस निज दासी से लज्जा क्यों?

हे मृग नयनी! तुम्हारे श्रीअङ्गों पर रति चिह्न स्पष्ट है। वेणी गुम्फित पुष्प विगलित हैं केश राशि शिथिल है एवं सहज लज्जा का अनुभव करती हुई तुम वसनाञ्चल की ओट लिये बोलती हो। मधुप मोहन ने तुम्हारे अधर कमल कोष

का मुक्त पान किया है, जिससे अधर कमल की अरुणता मन्द है, सुभग कपोलों पर प्रेमावेशित प्रियकृत चुम्बन पूर्वक रुचिर ताम्बूल राग रंजित है। रस विमुग्ध युवति ! तुम मत्त करिणि की भाँति मन्थर पद न्यास पूर्वक अभिगमन करती हो। इस प्रकार रस उद्दीपन कराती हुई सखी कहती है अब अधिक गोपन का प्रयास मत करो। तुमने छबीले नायक के साथ सुरत रसोत्सव सुख लूटा है तभी तो तुम्हारे कटि भूषित वस्त्राभरण श्लथ हैं एवं वक्षस्थल पर बन्धन निर्मुक्त अरुण कंचुकि शोभित है।

हित हरिवंश कहते हैं–प्रिय सहचरि से अपने मदनारधन की बात सुनकर प्रसन्न भूता शुचि स्मिता श्रीराधा निकुंज मंदिर की ओर चल पड़ी।

– १६ –

अवतरण–चूँकि श्रीलालजी परम ललित नायक हैं वचन विदग्ध और क्रिया चतुर भी हैं, फिर भी उनके अनेक प्रयत्नों एवं सावधानी के पश्चात् भी परम रूप, गुण, लावण्य मयी अतुला नायिका श्रीराधा कभी कभी मानिनि बन ही बैठती हैं। कभी तो मान सकारण होता है कभी अकारण ही। रस वृद्धि के लिये कह दें या उनके भोलेपन में मान तो हो ही जाता है। तब रूठी हुई भोली प्रिया को मना लेना प्रियतम के लिए काम रखता है। ऐसे अवसरों पर वे किसी का आश्रय ढूढ़ते हैं तब उन्हें चतुर दूतिका हित सजनी के सिवाय और कोई दृष्टि ही नहीं आता।

आज भोलीं स्वामिनी रूठ बैठी हैं। प्रियतम उन्हें नहीं मना सके हैं। अब उन्होंने अपनी प्रियतमा को मना लाने के लिये श्रीहित सजनी को दूतिका बनाकर उनके पास भेजा है। दूतिका जाकर अपनी वचन चातुरी से क्षण भर में ही प्रसन्न कर लेती है और इतना प्रसन्न कर लेती है कि प्रियाजी प्रेमाकुल होकर अति आतुर भाव से प्रियतम से जा मिलती हैं। मिलन के अवसर में "आलिंगन चुंबन परिरम्भन," जाने क्या क्या होता है। इतना कि कोटि कोटि काम समूह भी व्याकुल हो उठते हैं, उनके अनन्त रस विलास से। इस विषय का रस पूर्ण वर्णन श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु की अमृत वाणी में देखें। दूतिका नायिका से रास रस प्रसङ्ग का वर्णन करते हुए रस उद्दीपन पूर्वक कहती है–

टोड़ी

मूल– आजु मेरे कहैं चलौ मृगनैंनी।
गावत सरस जुवति मंडल में,
पिय सौं मिलैं भलैं पिक बैंनी।।
परम प्रवीन कोक विद्या में,
अभिनय निपुन लाग गति लैंनी।
रूप रासि सुनि नवल किसोरी,
पलु पलु घटति चाँदनी रैंनी।।
(जै श्री) हित हरिवंश चली अति आतुर,
राधा रमन सुरत सुख दैंनी।
रहसि रभसि आलिंगन चुबंन,
मदन कोटि कुल भई कुचैंनी।।१६।।

भावार्थ–(दूती ने कहा–) "हे मृग लोचनि राधे ! आज मेरे कहने पर चलो तो सही ! हे पिक वचनि वहाँ युवति मण्डल में सरस गान परायण प्रियतम से मिलन ही श्रेष्ठ है–भला है। आप तो कोक विद्या में परम प्रवीण हैं, अभिनय (क्रीड़ाओं) में निपुण हैं और नृत्य की अलग लाग आदि गतियों के लेने में भी कुशल हैं। हे रूप राशि नवल किशोरी, सुनिये ! (विलम्ब उचित नहीं है।) अरी ! क्रमशः पल पल करके चाँदनी रात घट ही तो रही है !"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं (कि सखी के वचनों को सुनकर) रमण (प्रियतम) को सुरत सुख प्रदान करने वाली श्रीराधा अत्यन्त आतुर भाव से चल पड़ीं और उन्होंने एकान्त के रस भरे आलिङ्गन चुम्बन आदि से कोटि कोटि मदन कुल को भी बेचैन कर दिया, (अर्थात कोटि कोटि काम को भी सन्तप्त कर दिया!)

– १७ –

अवतरण–आज वृन्दावन के मञ्जुल निकुञ्ज भवन में ब्रज सुन्दरी श्रीराधा और श्रीमोहन लाल हिल मिल कर किसी अनिर्वचनीय प्रेम सुख का आस्वादन कर रहे हैं। श्रीहित सखी उस अनिर्वचनीय सुख का दर्शन रस पान कर रही हैं

और उस दर्शन सुखानुभव का वर्णन अपनी सहेलियों से इस प्रकार कर रही हैं–

टोड़ी

मूल– **आजु देखि व्रज सुन्दरी मोहन बनी केलि।**
अंस अंस बाहु दै किसोर जोर रूप रासि,
मनौं तमाल अरुझि रही सरस कनक बेलि।।
नव निकुंज भ्रमर गुंज, मंजु घोष प्रेम पुंज,
गान करत मोर पिकनि अपने सुर सौं मेलि।
मदन मुदित अंग अंग, बीच बीच सुरत रंग,
पलु पलु हरिवंश पिवत नैंन चषक झेलि।।१७।।

भावार्थ – (श्रीहित सजनी कहती हैं–)" सखियों! देखो आज ब्रज सुन्दरि श्रीराधा और मोहन की क्रीड़ा (कैसी भली) बनी है ! रूप की राशि युगल किशोर परस्पर एक के स्कन्ध पर दूसरे की बाहुलता लपेट कर ऐसे शोभित हैं मानो तमाल (द्रुम) से सरस स्वर्ण बेलि लिपट रही हो। नव निकुञ्ज में भ्रमर समूह का सुन्दर और मधुर गुञ्जार हो रहा है। गुञ्जार क्या है प्रेमपुञ्ज है उस गुञ्जन से अपना–अपना स्वर मिलाकर मयूर और कोयल भी गान कर रहे हैं। इधर युगल किशोर भी अङ्ग–अङ्ग से प्रेम मुदित होकर बीच बीच में सुरत आनन्द ले रहे हैं और हरिवंश चन्द्र (सजनी रूप से) इस आनन्द रस को अपने नयन पात्रों में झेल कर प्रति पल पान कर रहे हैं (अर्थात् दर्शन का रस पी रहे हैं।)

– १८ –

अवतरण – इस पद में श्रीहिताचार्य्य चरण ने अपनी स्वामिनि वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा के रूप प्रभाव एवं महत्व का वर्णन स्तुति व्याज से किया है। वे कहते हैं–

आसावरी

मूल–सुनि मेरो वचन छबीली राधा।
तैं पायौ रस सिंधु अगाधा।।

तूँ वृषभानु गोप की बेटी।
मोहनलाल रसिक हँसि भेंटी।।
जाहि विरंचि उमापति नाये।
तापै तैं वन फूल बिनाये।।
जौ रस नेति नेति श्रुति भाख्यौ।
ताकौ तैं अधर सुधा रस चाख्यौ।।
तेरौ रूप कहत नहिं आवै।
(जै श्री) हित हरिवंश कछुक जस गावै।।१८।।

भावार्थ– "हे छविमयी राधे ! तू मेरी बात सुन ! तूने रस का गम्भीर समुद्र पाया है। यद्यपि तू वृषभानु गोप की ही बेटी है, फिर भी तूने प्रसन्नता पूर्वक रसिक मोहन लाल का आलिङ्गन किया है, जिन श्रीकृष्ण का नमन ब्रह्मा और उमापति शङ्कर भी करते हैं, तूने उन्हीं से फूल विनाये (चुनवाये) हैं। अरी ! जिस श्रीकृष्ण (परम पुरुष भगवान)' के रस (लीला, प्रभाव, गुण माहात्म्य आदि) के लिये श्रुतियों ने भी (असमर्थता पूर्वक) नेति नेति कह दिया तूने तो उसका भी अधर रस पान किया है। राधे! तेरा रूप तो कुछ कहने में ही नहीं आता, हित हरिवंश तो तेरा कुछ थोड़ा सा सुयश मात्र ही गा रहा है)"

टिप्पणी–

तैं, तूँ, तेरौ–

'हित चौरासी' के प्रायः अधिकांश पदों में देखा जाता है कि ग्रन्थकार अपनी इष्टाराध्या, महामहिम स्वामिनि सर्वेश्वरी श्रीराधा के लिये भी यत्र तत्र तैं, तूँ तेरौ, तोसौं आदि सामान्यता सूचक एक वचन शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। किन्तु जब परमार्थ दृष्टि से उपास्य उपासक सम्बन्ध में ऐसा व्यवहार कुछ उचित नहीं माना जाता तब आचार्य्य वर्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र के द्वारा ऐसा होना अवश्य एक रहस्य होगा, अतः विचारणीय है।

भक्ति क्षेत्र में भगवत् सम्बन्ध पाँच भावों के द्वारा स्थापित है ऐसा शास्त्रों का मत है। वे पाँच भाव क्रमशः शान्त, दास्य, सख्य वात्सल्य एवं मधुर के नाम से कहे जाते हैं। इनमें प्रत्येक क्रमशः उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ है क्योंकि

उनमें क्रमशः भगवदीय, ज्ञान, ऐश्वर्य, माहात्म्य, प्रभुता आदि का लोप हो जाता है। और अन्तिम मधुर भाव में सर्व दोष वर्जित विशुद्ध प्रेम ही प्रेम रह जाता है। यहाँ तक कि भक्ति का लोप कह दें तो अत्युक्ति न होगी। शान्त भाव से दास्य इसलिये श्रेष्ठ है कि दास्य के चित्त में ज्ञान और मुक्ति की स्पृहा मिटकर अनुराग का बीज पाया जाता है। दास भक्त का सर्वस्व अपने प्रभु का होता– प्रभु के लिये होता है।

दास से सखा भाव श्रेष्ठ है क्योंकि सखा में दास की अपेक्षा भगवदैश्वर्य्य ज्ञान का भी अभाव होकर प्रेम का प्राबल्य है।

सख्य से वात्सल्य इसलिये श्रेष्ठ है कि माता और पिता को अपना पुत्र जितना प्यारा होता है, सम्भव है मित्र को मित्र. उतना न हो, क्योंकि पुत्र ही पिता या माता की आत्मा है। भगवती श्रुति कहती है–

आत्मावै जायते पुत्रः।

अर्थात् ("पिता की) आत्मा ही पुत्र रूप में प्रकट होती है।"

किन्तु इस वात्सल्य रस में भी सर्व भावेन द्वैत का अभाव नहीं है। पूर्णतया वह उत्सर्ग नहीं जो दाम्पत्य सम्बन्ध में है, जिसे कान्त भाव भी कहते हैं। यही मधुर रस है। इसीमें प्रेम आनन्द, तन्मयता और सर्व दोष वर्जित एकात्मता है। यहाँ ऐश्वर्य नहीं, ज्ञान नहीं, माहात्म्य नहीं, मुक्ति की वासना तक नहीं। है तो केवल प्रेम–सङ्कोच रहित प्रेम ही। इसे देखिये श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में–

मथुरा से उद्धव आये हैं गोपियों के पास श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर। चाहते हैं अपनी बात उनसे एकान्त में कहूँ क्योंकि वे सोच रहे हैं कि हैं तो आखिर ये बातें श्रीकृष्ण और गोपियों के प्रणय सम्बन्ध की ही न ! फिर कैसे कही जाय सबके बीच? उनको क्या पता था कि गोपियों ने श्रीकृष्ण के लिये अपनी लोक लाज कुल मर्यादा, मान प्रतिष्ठा, स्वर्ग अपवर्ग, भोग मोक्ष सब छोड़ दिया है। वे श्रीकृष्ण भगवान की भक्त नहीं है। वे हैं नन्द किशोर की प्रणयिनि। वे श्रीकृष्ण के मथुरा पुरी के ऐश्वर्य से कुण्ठित नहीं, वे आज भी उन्हें ब्रज का ग्वाला समझ रही है। अभी भी पूर्व की भाँति वे उन्हें गालियाँ सुना सकती हैं, ताने दे सकती हैं, जो एक प्रेमी के लिये योग्य है।

गोपियाँ उद्धव के मन की बात जान गयीं और उन्होंने एक भ्रमर को बीच में लेकर श्रीकृष्ण एवं उद्धव के प्रति जो कुछ कहा उससे उनके ऐश्वर्य ज्ञान रहित शुद्ध प्रेम का अच्छा परिचय मिलता है। उन्होंने कहा–

मधुप कितव वन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्या,
कुच विलुलित माला कुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं;
यदु सदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक।।

श्रीमद्भागवत १०।४७।१२

अर्थात् "हे मधुकर ! हे छलिया के मित्र ! तू हमारे चरणों का स्पर्श मत कर, क्योंकि तेरी मूछें हमारी सौतों के कुचों पर विलुलित माला के कुङ्कुम से सनी हुई है। ऐसे क्षणिक प्रेम करने वाले तुम्हारे जैसे जिनके दूत हैं, जो यदुवंशियों की सभा में विडम्बनीय है एवं उन मानिनियों का जो कृपा प्रसाद है उस प्रेम को मधुपति श्रीकृष्ण ही वहन करें।"

इसके आगे वे और भी बहुत कुछ कह गयीं। उनकी बातें उद्धव को कुछ जँची नहीं। उद्धव ने युक्ति उपस्थित की, "गोपियों ! तुम जिसकी इतनी छीछालेदर कर रही हो जानती हो वह कौन हैं ? ब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्। और तुम कौन हो ? जीव कितना अनुचित है तुम्हारा प्रयास ?

गोपियों ने इसका भी खासा जवाब दिया

कौन ब्रह्म की जोति ज्ञान कासौं कहौ ऊधौ?
हमरे सुन्दर स्याम प्रेम कौ मारग सूधौ।।

उद्धव अवाक् रह गये। उन्हें अब सूझा 'प्रेम कौ मारग सूधौ' है। उसमें ऐश्वर्य नहीं है, ज्ञान नहीं है माहात्म्य नहीं है और वह सब कुछ भी नहीं है जो प्रेम से अतिरिक्त है।

अस्तु; प्रेम में पूज्य पूजक भाव का अभाव होकर निरन्तर निकट साहचर्य पूर्ण सम भाव रहता है। क्योंकि इस साम्य–साहचर्य के बिना सहज रस विलास सम्भव नहीं। इस प्रेम में सङ्कोच, लज्जा एवं भय भी प्रेम रूप होकर शोभा पाते हैं, और अन्य रूपों में इनका भी अभाव रहता है, क्योंकि यह भी निः सङ्कोच प्रेम

के व्यवधान हैं। प्रेम में सङ्कोच लज्जा एवं भय के अभाव की स्पष्ट झाँकी आचार्य्य चरण श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु ने बड़े ही अनोखे ढंग से करायी है। सखियाँ श्रीलालजी से कहती हैं–

किं रे धूर्त्त प्रवर निकटं यासि नः प्राणसख्या,
नूनं बाला कुच तट कर स्पर्श मात्राद्विमुह्येत।

– श्रीराधा सुधानिधि।

अर्थात् "क्यों रे धूर्त्त श्रेष्ठ ! तू हमारी प्राण प्यारी सखि (श्रीराधा) के निकट आ रहा है ? निश्चय है कि तू इस बाला के कुच तट स्पर्श मात्र से ही विमोहित हो जायगा।"

अस्तु, उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेम में ऐश्वर्य, ज्ञान, माहात्म्य, लज्जा, घृणा सङ्कोच, भय और ऐसी ऐसी अन्यान्य अनेक बातों का सर्वथा त्याग है– अभाव है। आचार्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु ने उसी दिव्यतम रस का गान किया है जो प्रेम का सार और विशुद्ध रूप है। जिसका लक्ष्य श्रीहित ध्रुवदासजी ने इस प्रकार कराया है–

औरौ भजन आहिं बहुतेरे।
ते सब प्रेम भजन के चेरे।।
नारदादि सनकादि 'ध्रुव; उद्धव अरु ब्रह्मादि।
गोपिनु कौ सुख देखि किय, भजन आपुनौ बादि।।
तिन गोपिनु तें दुर्लभ माई।
नित्य विहार सहज सुखदाई।।
सिव श्रीपति जदपि ललचाहीं।
मन प्रवेस तिनहूँ कौ नाहीं।।
ऐसे रसिक किसोर विहारी।
उज्वल प्रेम–विहार अहारी।।
अति आसक्त परसपर प्यारे।
एक सुभाव दुहुँनि मन हारे।।
रस मय बढ़ी नेह की बेली।
तेहि अवलंबे नवल नवेली।।

'हित ध्रुव' दुर्लभ सबनि तें, नित्य विहार स्वरूप।
ललितादिक निजु सहचरी, सो सुख लहतिं अनूप।।
दुर्लभ कौ अति दुर्लभ माई।
वृंदा विपिन सहज सुख दाई।।

....

इहि विधि विलसत प्रेमहिं सजनी।
जानत नहिं कित वासर रजनी।।
प्रेम धाम वृंदा विपिन, मध्य मधुर वर जोर।
सरिता रस सिंगार की, जगमगात चहुँ ओर।।
वैभव सब ऐश्वर्यता, ठाढ़ी सेवत दूरि।
परसन पावत कबहुँ नहिं, श्री वृन्दावन धूरि।।
ब्रह्म जोति कौ तेज जहाँ, जोगेश्वर धरैं ध्यान।
ताही कौ आवरन तहाँ, नहिं पावै कोउ आन।।

अतएव श्रीहिताचार्य्य पाद ने श्रीकृष्ण आह्लादिनी निकुञ्जेश्वरी रस प्रतिमा श्रीराधा अपनी आराध्या के लिये एक वचन समता सूचक, ऐश्वर्य भाव रहित "तूँ, तैं, तेरौ, तोसौं आदि शब्दों का प्रयोग किया है क्योंकि प्रेम नगर की यही रीति है–

यत्राधर्म एव धर्मः स्थापितः।

अर्थात् "जहाँ अधर्म ही धर्म रूप में स्थापित है।"

— १९ —

अवतरण — सर्वश्री सम्पन्न वृन्दावन नाना दिव्य तरु लता गुल्मों से अलङ्कृत हैं। शरद की शोभन ऋतु है। विमल चन्द्रिका पूर्ण रजनी है। आकाश से भूतल तक चन्द्र देव की शीतल रश्मियों का वितान तन रहा है।

ऐसे सुन्दर अवसर में श्याम सुन्दर ने अपनी महामधुर वंशी बजायी और अनेकों ब्रज बालाएँ रास क्रीड़ा के लिये एकत्र हो गयी हैं। रास नृत्य में युगल किशोर सबके मध्य में शोभित है। इस झाँकी का वर्णन श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु इस प्रकार करते हैं–

आसावरी

मूल–खेलत रास रसिक ब्रजमंडन।
जुवतिन अंस दियें भुज दंडन।।
सरद विमल नभ चंद विराजै।
मधुर मधुर मुरली कल बाजै।।
अति राजत घन स्याम तमाला।
कंचन वेलि बनीं ब्रज बाला।।
बाजत ताल मृदंग उपंगा।
गान मथत मन कोटि अनंगा।।
भूषन बहुत विविध रँग सारी।
अंग सुधंग दिखावतिं नारी।।
बरषत कुसुम मुदित सुर जोषा।
सुनियत दिवि दुंदुभि कल घोषा।।
(जै श्री) हित हरिवंश मगन मन स्यामा।
राधा रमन सकल सुख धामा।।

भावार्थ – युवतियों के स्कन्ध पर भुज दण्ड दिये (अर्पित किये) रसिक ब्रज भूषण (श्रीलालजी)रास क्रीड़ा कर रहे हैं। आकाश में शरद् (ऋतु) का चन्द्रमा शोभित है और (श्रीलालजी की) मधुर मधुर मुरली बज रही है। जैसे घनश्याम तमाल (श्रीलालजी) शोभा पा रहे हैं, वैसी ही व्रज बालाएँ भी स्वर्ण लता सी हैं। ताल वाद्यों में मृदङ्ग और उपङ्ग (रास नृत्य के समय) बज रहे हैं और (सखियों का मधुर) गान कोटि कोटि कामदेवों का भी मन मथे दे रहा है। (सखियों के) भूषण भी बहुत हैं और वे (सब) अनेकों रङ्ग की सारियाँ पहने हैं। (ऐसी शोभा के साथ वे अपने) अङ्गों से सुधङ्ग नृत्य दिखा रही हैं किंवा सुधङ्ग नृत्य के अङ्गों का प्रकाश कर रही हैं। (जिसे देखकरआकाश स्थित) देव पत्नियाँ प्रसन्न हो हो कर फूलों की वर्षा करती हैं और आकाश से दुंदुभियों के मधुर मधुर शब्द भी (वहाँ) सुने जाते हैं।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि (इस रास में) सकल सुख धाम श्रीराधा और उनके रमण (श्रीलालजी) मग्न मन हैं– अत्यन्त आनन्दित हैं।

किन्हीं एक टीकाकारों ने इस पद की टीका करते समय पद को निकुञ्ज परक बनाने के लिये इसके शब्दार्थों को ही बदल दिया है। वे 'व्रज' शब्द का अर्थ समूह करते हैं चूँकि यह ठीक है पर समय और स्थल से असङ्गत भी। इस 'समूह' अर्थ से ब्रजमण्डल का अर्थ मण्डन और ब्रज बाला समुदाय बाला होना चाहिये किन्तु ऐसा न करके येन केन कान पकड़ कर व्रज बाला का अर्थ श्रीराधा कर लिया गया है। ऐसे ही सुर जोषा का सरलार्थ देवपत्नी न करके कुछ और ही किया गया है। वह यह सुर–वृन्दावन के वृक्ष और योषा उनकी पत्नियाँ अर्थात् लताएँ इस प्रकार सुरयोषावृन्दावन की लताएँ। वे पुष्प बरसाती हैं अर्थात् उनसे फूल झरते हैं ....इत्यादि।

ये सभी अर्थ किसी सङ्कुचित क्षेत्र में कुछ भाव प्रवण व्यक्तियों के लिये ही मान्य हो सकते हैं भाषा साहित्य एवं विद्वत समाज के विशाल प्राङ्गण में कदापि नहीं।

अस्तु ऐसे अर्थ जिस लिये किये गये हैं वह भावना अवश्य वन्दनीय है पर मान्य नहीं, ऐसा मेरा अपना आग्रह है।

टीकाकार महोदय की वह भावना है–आचार्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र के द्वारा प्रकटित रस विलास को व्रज लीला से परे–नित्य विहार के रूप में बताने की, जो स्वयं सिद्ध हैं और जिसका सूत्र कुछ और है। ब्रज रस और निकुञ्ज रस से तारतम्य भेद ओर ऐक्य की शैली सिद्ध रसिक महानुभावों के शब्दों में जैसी कुछ झलकती है यहाँ केवल उसका दिग्दर्शन मात्र कराये जाने की चेष्टा की जा रही है–

'सुधर्म–बोधिनी' में रसिक श्रीलाड़िली दास जी निकुञ्ज भावना और रस क्या है ? इस प्रकार प्रकट करते हैं–

चिदानंद हित सिंधु रस, सेवक भाव गँभीर।
अमित कोटि लीला लहरि, मीन रसिक मन धीर।।
चित् स्वरूप सौं भोक्ता, आनँद तासु कौ भोग।
हित स्वरूप सौं साक्षी, होत न कबहुँ वियोग।।
सर्व देह मय विपिन है, सर्व मनोमय लाल।
सर्वसु इंद्री सखीगन, सर्व आतमा बाल।।

भोग रूप सब प्रियाकौ, भोगी मोहन लाल।
संधि सखी हित दुहुँनि कौ मिलवत हैं सब काल।।

इस सर्व व्यापी हित निकुञ्ज विलास का सूत्र है–

जो रस रीति सबनि तें दूरि।
सो सब विश्व रही भरपूरि।।
मूरि सजीवन कहि दई।।

–सेवक श्रीदामोदर जी।

इसी महान् दृष्टि को पाकर श्री भगवत रसिक जी ने अपने उर में ही उस अनिर्वचनीय निकुञ्ज रस का दर्शन और पान किया और एक अजीब मस्ती में वे बोल गये–

हमारौ वृन्दावन उर और।
माया काल तहाँ नहिं व्यापै, जहाँ रसिक सिर मौर।।

. . . .

भगवत रसिक बताई सतगुरु अमल अलौकिक ठौर।।

इस 'अमल अलौकिक ठौर' और उसके रस को पाकर उनकी दृष्टि ही 'पलट' गयी। उन्होंने दुई–द्वैत का परदा फाड़ फेंका फिर देखा–

जहँ देखें तहँ आपनौं इष्ट धर्म, गुरु धाम।
कारज कारन जगत में परि पूरन रति काम।।
परिपूरन रति काम समुझि समता जिन लीनीं।
निंदा स्तुति सुपरि विषमता बुधि तजि दीनीं।।
शत्रु मित्र नहिं कोइ ऊँच नहिं नीच कोऊ तहँ।
सो घट भगवत रसिक स्याम स्यामा संतत जहँ।।

किन्तु यह दर्शन भाव ऐनक के सहारे किंवा दृष्टि बदल जाने पर ही सम्भव है जिन्होंने इसे पाया वे दलीलों से ऊपर उठकर कह गये–

चसमा नित्य विहार कौ दियौ विहारिनि मोहिं।
भई प्रीति परतीति उर अंतर लीनौं जोहि।।
अंतर लीनौं जोहि निरंतर निजु धन पायौ।
सुक नारद सनकादि नेति निगमागम गायौ।।

भगवत यह रस रीति प्रकट परिपूरन ससमा।
प्रेम पियूष न स्रवै भाव रूपी बिनु चसमा।।

इस तरह भाव चश्मे के द्वारा निकुञ्ज की ओर ताकने की दृष्टि ही कुछ और है जो शब्दों के अर्थ बदलने से कदापि सिद्ध नहीं है।

– २० –

अवतरण – आज निभृत निकुञ्ज में रस मूर्त्ति श्रीराधा अपने प्रियतम रसिक शेखर श्रीलालजी से मिली हैं। उनके श्रीअङ्गों में मिलन रति रस की सूचना देने वाले अनेकों चिह्न प्रकट हैं। चतुर श्रीराधा अपनी अन्तरङ्गा हित सजनी पर भी आज अपने विहार का प्रकाश नहीं होने देना चाहतीं अतः रति चिह्नों को छिपाती हैं। यह सङ्गोपन क्यों है ? प्रथम स्नेह है न ! जो कि स्वाभाविक भी है। श्रीराधा के इस दुराव को लखकर हित सखि को कुछ परिहास सा सूझ पड़ा। वे हँसती मुसकाती सी रति विमर्दिता श्रीराधा से बोलीं–

धनाश्री

मूल– मोहन लाल के रस माती।
बधू गुपति गोवति कत मोसौं, प्रथम नेह सकुचाती।।
देखि सँभार पीत पट ऊपर कहाँ चूनरी राती।
टूटी लर लटकति मोतिनु की नख विधु अंकित छाती।।
अधर बिंब खंडित, मषि मंडित गंड, चलति अरुझाती।
अरुन नैंन घूँमत आलस जुत कुसुम गलित लट पाती।।
आजु रहसि मोंहन सब लूटी विविध . आपनी थाती।
(जै श्री) हित हरिवंश वचन सुनि भामिनि भवन चली मुसकाती।।२०।।

भावार्थ– ["हे राधे ! तू] मोहन लाल के रस में उन्मत्त है। हे बधू ! उस (एकान्त मिलन की) गोप्य बात को क्यों मुझसे छिपा रही है? इसीलिये न कि प्रथम स्नेह के कारण सङ्कोच है ! अरी ! जरा सम्हाल कर देख तेरे शरीर पर तो पीताम्बर है और (जाने) रँगदार चूनरी कहाँ गयी ? हृदय पर (एक तो) मोतियों की टूटी लड़ लटक रही है, (दूसरे) वक्षस्थल नख चन्द्रों से अङ्कित है।

(अहो ! तेरे) बिम्बाफल जैसे अधर खण्डित है—क्षत विक्षत हैं, कपोल भी कज्जल से रँगे हुए है और तू चलती भी कुछ उलझती सी लटपताती सी (अर्थात् गति भी शिथिल है) सखि ! तेरे अरुण नयन आलस्य से भरे होने के कारण घूम घूम—झँप झँप जाते हैं, फूलों की मालाएँ मसल गयी हैं और केश लटें भी बिखर चुकी हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु (सखी रूप से) कहते हैं– ("राधे ! अतः बहुत स्पष्ट है कि) आज मोहन (श्रीलालजी) ने एकान्त में अपनी सारी विविध प्रकार की धरोहरें लूट लीं।"

इस प्रकार श्रीहरिवंश के वचनों को सुन कर भामिनि (श्रीराधा) मुसकाती (निकुञ्ज) भवन की ओर चली गयीं।

टिप्पणी– 'प्रथम नेह'

महाप्रभु श्रीहित हरिवंश चन्द्र ने जिस तत्व का उपदेश किया है वह नित्य विहार है। नित्य शब्द का अर्थ ही है कि जो अनादि हो, अनन्त हो। फिर भी इस नित्य विहार की यह विशेषता है कि अनादि अनन्त होकर भी प्रतिक्षण नवीन है। इसके प्रत्येक अङ्ग नवीन हैं। यहाँ प्रिया नयी हैं और प्रियतम भी नये। सखियाँ नयी हैं और वृन्दावन भी नया ही। यहाँ तक नये कि अभी पूर्णतया परिचय भी नहीं हो पाया,। भले ही अनादिकाल से विहार परायण हैं। कैसा आश्चर्य है?

न आदि न अंत विहार करैं दोऊ,
लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।
नई नई भाँति नई नई काँति,
नई नवला नव नेह विहारी।।

ऐसी दशा में जबकि 'चिन्हारी' ही नहीं हो पायी है तो प्रतिदिन और प्रतिक्षण का मिलन स्नेह प्रणय, रस, सुख और विलास सभी कुछ नवीन है और जब नवीन है तो प्रथम है ही इसमें क्या सन्देह ? इस नवीनता का विलक्षण रूप श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज बताते हैं–

श्रीलालजी कहते हैं–

प्यारी जू जब जब देखौं तेरौ मुख,
तब तब नयौ नयौ लागत।
ऐसी जिय होत कबहुँ मैं न देखी री,
दुति कौं दोति न लेखनी न कागत।।

अनादि काल से जिस प्रियतमा का मुख दर्शन किया जा रहा है, आज भी वह श्रीलालजी के लिये नया ही है ! और ऐसे दर्शनानन्द में कोटि कोटि कल्प बीतनें पर भी तृप्ति नहीं क्योंकि प्रतिक्षण नूतनता है न ! इसी बात को चाचा श्रीहित वृन्दावन दास जी कहते हैं–

देखत देखत ओट कोट से होत अनमिले मानैं।
ऐसौ प्रेम बली उर खेलै को कवि रीति बखानैं।।
कानन कथा अगोचर सबतें प्रेमी ही पहिचानैं।
वृंदावन हित रूप न परच्यौ सो अचिरज सो मानैं।।

वास्तव में यह बात उसके लिये आश्चर्य पूर्ण ही है जिसने 'हित रूप' का–प्रेम तत्व का किञ्चित् भी परिचय नहीं प्राप्त किया है। इस पुरातन तम प्रेम राज्य की नित्य नवीनता का परिचय आचार्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद क्या दे रहे हैं, पाठक देखें–

नयौ नेह नव रंग, नयौ रस, नवल श्याम वृषभानु किसोरी।
नव पीतांबर, नवल चूनरी, नई नई बूँदनि भींजति गोरी।।
नव वृंदावन हरित मनोहर नव चातक बोलत मोर मोरी।
नव मुरली जु मलार नई गति श्रवन सुनत आये घन घोरी।।
नव भूषन नव मुकुट विराजत नई नई उरप लेत थोरी थोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश असीस देत मुख चिर जीवौ भूतल यह जोरी।।

इस पद में बहुत स्पष्ट है कि इस वृन्दावन की प्रत्येक वस्तु नवीन है। यहाँ नेह नया है अतः प्रथम भी है। युगल किशोर सदा सर्वदा अपने प्रेम में नवीनता का अनुभव करते रहते हैं और यही प्रेम का स्वभाव है जैसा कि रसखान जी ने कहा है–

नित प्रति वढ़िबोई करै, पूरन कला अशेष।
पै पूनौं यामें नहीं यातें प्रेम विशेष।।

और श्री नारद भक्ति सूत्र में–

प्रति क्षण वर्द्धमानं सूम्मतर सूक्ष्ममनुभव रूपम।

अर्थात् "(यह प्रेम) प्रतिक्षण बढ़ने वाला सूक्ष्मम से सूक्ष्म तथा अनुभव गम्य है।"

अतएव उक्त पद में 'प्रथम नेह' इस अनादि अनन्त नित्य विहार की एक अनोखी बात है–विशेषता है।

– २१ –

इस पद में भी उपरोक्त बीसवें पद के ही अनुसार प्रातः कालीन सुरतान्त छवि का वर्णन है। सुरत छवि पूर्ण श्रीराधा का दर्शन करके श्रीहित सखि उनसे कुछ परिहास सा कर रही हैं क्योंकि उन्हें युगल किशोर के एकान्तिक विहार के लक्षण श्रीप्रियाजी के श्रीअङ्गों में दीख पड़े हैं। यद्यपि लज्जा भरित कामिनि किशोरी उन्हें छिपाना चाहती हैं पर हित सखी से छिपा लेना भी तो कठिन है। इसी दशा का वर्णन करते हुए श्रीहित सखी अपनी स्वामिनि श्रीराधा से कहती हैं–

धनाश्री

मूल– तेरे नैंन करत दोऊ चारी।
अति कुलकात समात नहीं कहुँ मिले हैं कुंज विहारी।।
विथुरी माँग कुसुम गिरि गिरि परैं, लटकि रही लट न्यारी।
उर नख रेख प्रकट देखियत हैं, कहा दुरावति प्यारी।।
परी है पीक सुभग गंडनि पर, अधर निरँग सुकुमारी।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिकनी भामिनि, आलस अँग अँग भारी।।२१।।

भावार्थ– [हे राधे !] तेरी दोनों आँखें ही तो चारी (चुगल खोरी) कर रही हैं–बता रही हैं ! कितनी प्रसन्न हैं ये ? इनकी प्रसन्नता मानो कहीं समाती नहीं [इसी से विदित होता है कि तुझे कहीं न कहीं कुञ्ज बिहारी] (श्रीलालजी) [अवश्य] मिले हैं। अरी ! तेरी माँग भी तो विखर गयी है और उसमें से फूल

झर झर कर गिर पड़ते हैं साथ ही केश लट भी (कबरी से) अलग ही लटक रही है। हे प्यारी ! छिपाती क्यों हो ? वक्ष स्थल पर चिह्नित नख रेखा कितनी स्पष्ट देख रही हूँ मैं और सुकुमारी के अधर फीके हो चुके हैं एवं सुन्दर कपोलों पर पीक भी अङ्कित है।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र [सखी भाव से] कहते हैं "अहो रसिक मणि भामिनि ! तेरे अङ्ग–अङ्ग में कितना भारी आलस्य है, [जो रात्रि के जागरण एवं रति श्रम का द्योतक हैं।"]

– २२ –

अवतरण–स्वामिनि श्रीराधा नित्य परम सौन्दर्य्य मयी हैं। उनके एक एक अङ्ग सौन्दर्य्य एवं माधुर्य्य के निधान हैं किन्तु इस पद में केवल उनके स्वाभाविक अभिराम नयनों के सरस लावण्य, माधुर्य्य और चाञ्चल्यादि गुणों का वर्णन है जो सुख समुद्र और मन रञ्जन हैं। स्तुति व्याज से आचार्य्य चरण कहते हैं–

मूल– नैंननिं पर वारौं कोटिक खंजन।
चंचल चपल अरुन अनियारे,
अग्र भाग बन्यौ अंजन।।
रुचिर मनोहर बंक बिलोकनि,
सुरत समर दल गंजन।
(जै श्री) हित हरिवंश कहत न बनै छबि,
सुख समुद्र मन रंजन।।२२।।

भावार्थ – (हे राधे ! तुम्हारे) नयनों पर मैं कोटि कोटि खञ्जनों को भी न्यौछावर कर दूँ। (कितने सुन्दर हैं तुम्हारे नयन ?) चञ्चल हैं, चपल हैं– अत्यन्त चपल हैं, अरुण है और अनियारे–कोर दार भी। तिस पर उनके अग्र भाग में और अञ्जन भी लग रहा है। इन नयनों का रुचिर, मनोहर एवं कटाक्ष पूर्ण बक्र (तिरछा) (नयन नोकों से) अवलोकन तो सुरत युद्ध में (विपक्षी) दल का मथन ही करने वाला है।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं–"सखी! इनकी छवि तो कुछ कहते ही नहीं बनती। अरी ! ये तो सुख समुद्र हैं और मन का रञ्जन करने वाले भी।"

टिप्पणी– 'चंचल चपल'

इस पद में स्वाभाविक ही एक आशङ्का का विषय है कि श्रीहिताचार्य्य पाद ने 'चंचल चपल' इन दो समानार्थी शब्दों का एक ही स्थल पर केवल एक विशेष्य नयन के लिये विशेषण रूप में कैसे और क्यों प्रयोग किया ?

बहुत थोड़े में इसका उत्तर है। इसे सब जानते हैं कि शास्त्र, सन्त, महापुरुष कवि या विद्वान् जन कवि भी भाषा साहित्य के शब्दों और उनके अर्थों को तौल तौल कर अपना आशय नहीं प्रकट किया करते। वे अपनी खुद मस्ती में जो कुछ कह जाते हैं वह उचित, योग्य और पत्थर की लकीर हो रहता है उनकी वाणी मानवीय व्यक्तित्व से बहुत ऊपर उठी हुई रहती है और रहती है नित्य निरतिशय सत्य। उनकी वाणियों के पीछे अर्थ और भावों की अनेकों सृष्टियाँ बनती रहती हैं अर्थात् उनके पीछे अर्थ चलता है। वे वाणियाँ अर्थ के पीछे कदापि नहीं चलतीं। देखिये, महात्मा कबीर जाने किस मस्ती में एक पहेली सी बूझ गये–

एक अचम्भा हमने देखा कुएँ में लग गई आग।
पानी पानी जल गया और मछली खेलें फाग।।

कितना अचम्भा है कुए में आग लग गयी, पानी पानी सब जल गया और मछली बच गयीं, पानी से बिछुड़कर अपने प्राण जीवन से अलग रह कर भी फाग खेल रही हैं आनन्दित हैं ?

यह हैं महात्माओं की खुद मस्ती के वाक्य, जो गलत नहीं, निरे पागल पन के नहीं। भले ही कोई इन्हें प्रलाप कह दे पर ये वाक्य पूर्ण सार्थक हैं। हाँ संसार–शब्द संसार की प्रवचन शैली से अवश्य ही ये विलक्षण हैं। उन्होंने स्वयं ही अचम्भे की पहेली बूझी है अब लोग उसके अर्थ लगाया करें।

अस्तु; ऐसे ही श्रीहिताचार्य्य चरण ने एक पहेली रख दी–

अधर अरुन तेरे कैसे कैं दुराऊँ ?
रवि ससि संक भजन किये अपबस,
अदभुत रंगनि कुसुम बनाऊँ।।

सुभ कौसेय कसिब कौस्तुभ मनि
पंकज सुतनि लै अंगनि लुपाऊँ।
हरषित इंदु तजत जैसें जलधर,
सो भ्रम ढूँढ़ि कहाँ हौं पाऊँ ??
अंबु न दंभ कछू नहिं व्यापत
हिमकर तपै ताहि कैसे कैं बुझाऊँ ?
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक नवरँग पिय
भृकुटि भौंह तेरे खंजन लराऊँ।।

देखिये, इस पद के शब्द कितने सरल हैं किन्तु अर्थ और भाव शृङ्खला की समस्या कितनी जटिल है? बड़े बड़े दिग्गज साहित्यिक यहाँ पानी भरते हैं।

अस्तु, श्रीहिताचार्य्य महाप्रभु के सम्पूर्ण काव्य में स्थान स्थान पर ऐसे ही विचित्र प्रयोग देखे जाते हैं, जो पाठकों को आश्चर्य में डाल देते हैं। यहाँ ऐसे प्रसङ्गों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं–

(१) चंचल चपल अरुन अनियारे,
अग्र भाग बन्यौ अंजन।
(२) (जै श्री) हित हरिवंश हंस कल गामिनि,
संभ्रम देत भ्रमरनि अलिन री।
(३) परिरंभन चुंबन आलिंगन
उचित जुवति जन पायौ।
(४) अंग राग परिधान वसन
लागत ताते जु पीत पट।

इन उदाहरणों में रेखाङ्कित शब्द दृष्टव्य हैं। और भी ऐसे अनेकों प्रयोग हैं, जिनमें दो समानार्थी शब्द एक ही प्रयोग में सङ्कलित हैं, परन्तु वे निरर्थक नहीं वरं सार्थक और साभिप्राय हैं।

एक तो यही कि प्रत्येक शब्द अपना स्वतंत्र अर्थ जो कुछ और जैसा कुछ रखता है वह उसका अपना है और दूसरे समानार्थी से विशेष कुछ भाव अवश्य रखता है चाहे भले दूसरे के समान हो। अतः ऐसे दो समानार्थी शब्दों

में भी अलग अलग और विशेष भावों की ध्वनियाँ रहती हैं। दूसरे इस प्रकार की आचार्य्यपाद की शैली भी हो सकती है कि जब वे किसी विशेष बात पर जोर देना चाहते हैं या उसका स्पष्टीकरण करना चाहते किंवा पृथकत्व प्रकट करना चाहते हैं तब कुछ ऐसे ही प्रयोग करते हैं। उक्त उदाहरणों में 'चंचल चपल, "भ्रमरनि अलिनु, 'परिरंभन आलिंगन' और 'परिधान वसन पीत पट; कुछ ऐसे ही प्रयोग हैं।

इत्यलं ; इस मूल पद में 'चंचल चपल प्रयोग श्रीप्रियाजी के नेत्रों की विशेष चञ्चलता को ही प्रकट करने के लिये है जो एक 'चंचल' या चपल' शब्द से पूर्णता को प्राप्त न हो सकती थी, ऐसा जान पड़ता है।

– २३ –

अवतरण–अनेकों बार श्रीप्रियाजी ने अपने एकान्तिक प्रियतम मिलन को हित सखी से छिपाना चाहा जैसा कि पूर्व पदों में वर्णित है किन्तु वह संगोपन हित सखी के समक्ष सर्वत्र विडम्बना ही बन कर रहा–चतुर राधा छिपा न सकी कयोंकि परम चतुरा 'हित' वह छिपती भी कैसे ? बात खुल ही जाती रही। आज भी वही अवसर पुन: प्राप्त है। श्रीराधा प्यारी सुरत सङ्गम में विजयी हुई हैं। उनके श्रीअङ्गों में रति श्रम के समस्त लक्षण प्रकट हैं। जिन्हें देखकर हित सखी ने रति विहार की सारी बातें जान ली हैं। वे अन्तर में आनन्द पूरित होकर श्रीराधा से कह रही हैं–

धनाश्री

मूल– राधा प्यारी तेरे नैंन सलोल।
तैं निजु भजन कनक तन जोवन,
लियौ मनोहर मोल।।
अधर निरंग अलक लट छूटी,
रंजित पीक कपोल।
तूँ रस मगन भई नहिं जानत,
ऊपर पीत निचोल।।

कुच जुग पर नख रेख प्रकट मानौं,
संकर सिर ससि टोल।
(जै श्री) हित हरिवंश कहत कछु भामिनि,
अति आलस सौं बोल।।

भावार्थ – (हित सखी ने कहा–) "हे प्यारी राधे ! तेरी आखें आज बड़ी ही चञ्चल हैं ! तूने अपने भजन, महान् प्रेम और स्वर्ण जैसे सुन्दर गौर वपु से मनोहर (श्रीलालजी) को (तो मानो) मोल (सा) ले रखा है (अर्थात् पूर्णतया स्ववश कर लिया है।) अरी ! तेरे अधर फीके पड़ गये हैं, (उनकी ललामी जाने कहाँ चली गई है,) अलक लटें बिखरी (छूटी) हुई हैं और कपोल भी पीक से रँगे हुए हैं; तू इतनी रस मग्न हो गई है तुझे यह भी तो नहीं जान पड़ता कि तेरे ऊपर (नीलाम्बर की जगह) पीत निचोल (छबि पा रहा) है !"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं–"हे भामिनि ! तेरे युगल कुचों पर नख रेखाएँ ऐसी मालूम दे रही हैं जैसे भगवान शङ्कर के ललाट पर बहुत से (द्वितीया के) चन्द्र। और तू अत्यन्त आलस्य से भर कर थोड़े थोड़े (स्फुट) शब्द भी तो बोलती है !"

टिप्पणी– 'निजु भजन'

निजु का सरलार्थ अपना, स्वयं और स्वरूप से है। यहाँ 'निजु' जीव ब्रह्म किंवा प्रेम के सर्वोपाधि रहित शुद्ध रूप के अर्थ में प्रयुक्त है। यह निज जीव निर्जीव चराचर जगत् का बोधक है। जीव ही ब्रह्म है और जीव ही प्रेम है किन्तु यह बात प्रथकत्व और नानात्व की भ्रान्ति मिटने पर ही जानी जा सकती है और अनुभव में आ सकती है। जिस प्रकार भगवती श्रुति ब्रह्म के ब्रह्म भाव की व्यापकता 'सर्व खल्विदं ब्रह्म, अर्थात् यह सम्पूर्ण चराचर ब्रह्म ही है' इस वाक्य से प्रकट करती है उसी प्रकार प्रेम ब्रह्म के तत्व वेत्ता रसिकाचार्य्य गण प्रेम तत्व की सर्वत्र सत्ता और सर्व रूपता इस वाक्य से प्रकट करते हैं–

सर्वं हितमयं विदुः।

'अर्थात्' सब कुछ हित मय–प्रेम मय ही जानो।" यह चराचर व्यापी हित निर्गुण भी है सगुण भी। यह सगुण होकर भी निर्गुण है और निर्गुण हो कर भी

सगुण और निर्गुण सगुण से परे भी है। सर्वत्र सब रूपों में केवल वही है। वृन्दावन विहार के विविध रूप मय परिकर का भी एक ही रूप है, हित। या यों कह दें कि एक ही खाँड़ के अनन्त खिलौने हैं, एक ही स्वर्ण के नाना आभूषण हैं। इसी बात को रसिकाचार्य्य कहते हैं–

श्रीराधा हित रूपा हि श्रीकृष्णो हित रूपकः।
ललिताद्या हित रूपा श्रीमद्धामं च हितमयम्।।
यमुना च हित रूपा च निकुञ्ज हित रूपकम्।
शय्या च हित रूपा वै विहारं हित मयं विदुः।।
हितेन प्राप्यते राधा हितेव सखि यूथपा।
हितेन प्राप्यते धाम हितेनैव रसज्ञता।।
यत्किञ्चित दृश्यते सृष्टौ हितमयं सर्वमेव हि।
तस्मात् विवेक निपुणैरुपास्यो हित चन्द्रमा।।

अर्थात् "निश्चय है कि श्रीराधा हित रूपा हैं और श्रीकृष्ण भी हित रूप हैं। इसीप्रकार श्रीयमुना हित रूपा है, निकुञ्ज भवन भी हित रूप है और शय्या हित रूपा है, उनका विहार भी हित रूप ही है ऐसा जानना चाहिये इस हित के द्वारा ही श्रीराधा की प्राप्ति होती है और इसी हितोपासना से सखियों की यूथेश्वरी (ललिता) की। हित से ही श्रीधाम वृन्दावन मिलता है एवं हित के द्वारा ही हित की रसज्ञता, (हित विलास के रसास्वादन की पात्रता।) कहाँ तक कहा जाय यावन्मात्र जो कुछ दृश्य अदृश्य सृष्टि देखी, सुनी कही जाती है निश्चयेन सभी हित है–केवल प्रेम। इसलिये विवेक निपुण व्यक्ति के लिये उपास्य तत्व केवल हित रूप चन्द्रमा ही है, अन्य कोई नहीं।"

इस प्रकार निज–हित रूपा श्रीराधा अपने निज रूप हित श्रीकृष्ण को निजु भजन हित आराधना (प्रेम भजन) से ही वशवर्त्ती किये हुए हैं।

– २४ –

अवतरण – शरत्काल की शीतल एवं उज्वल रात्रि में युगल किशोर प्रिया प्रियतम ने अपनी समस्त सखियों के साथ रास नृत्य की योजना की है। वे सभी नृत्य में सलग्न हैं। आज श्रीवृन्दावन भी नवीन शोभा को धारण किये

हुए है। जहाँ तहाँ सर्वत्र चम्पक, बकुल, मालती मेदिनि आदि लताएँ फूल रही हैं। वन सुवास से पूरित है। उस सुगन्ध भार को लेकर शीतल पवन मन्द मन्द गति श्रीवन में डोल रहा है।

इस रास रस का वर्णन श्रीहित सखी अपनी किसी सखि से इस प्रकार कर रही हैं–

धनाश्री

मूल–आजु गोपाल रास रस खेलत,
पुलिन कलपतरु तीर री सजनी।
सरद विमल नभ चंद विराजत,
रोचक त्रिविध समीर री सजनी।।
चंपक बकुल मालती मुकुलित,
मत्त मुदित पिक कीर री सजनी।
देसी सुधंग राग रँग नीकौ,
ब्रज जुवतिनु की भीर री सजनी।।
मघवा मुदित निसान बजायौ,
व्रत छाँड़यौ मुनि धीर री सजनी।
(जै श्री) हित हरिवंश मगन मन स्यामा,
हरति मदन घन पीर री सजनी।।२४।।

भावार्थ– (श्रीहित सजनी ने कहा–) "अरी सजनी ! आज विमल कल्पवृक्ष के तीर यमुना पुलिन पर श्रीगोपाल लाल रास क्रीड़ा कर रहे हैं। सजनी ! जैसा निर्मल शरद का समय है वैसा ही सुन्दर चन्द्रमा आकाश में शोभित है और रोचक त्रिविध (शीतल मन्द सुगन्धित) पवन भी बह रहा है। अरी सखी ! देख तो चम्पा, मौलिश्री और मालती कैसी सुन्दर फूली हैं एवं कोयल भी कैसी मुदित और प्रेम मतवाली हो रही है ! अरी वीर ! देसी और सुधंग (नृत्य) का राग रङ्ग कितना भला है और ब्रज युवतियों की अपार भीड़ भी (कितनी भली) है !"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं–सजनी! इन्द्र ने प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजायी है और [रास रस से विह्वल होकर] परमधीर मुनियों ने भी

अपना [मौन ध्यान आदि] व्रत छोड़ रखा है। [वे रसमग्न हुए रास नृत्य का दर्शन कर रहे हैं] प्यारी सखी! आज श्यामा (श्रीराधा) मग्न मन हैं रास में और मदन (प्रेम) की घनीभूत पीड़ा का हरण कर रही हैं।''

टिप्पणी–''कलपतरु–नित्य रासस्थली श्री वृन्दावन में स्वर्गस्थ कल्पवृक्ष से अति विलक्षण और दिव्य कल्पतरु है जो चक्राकार सोलह दल युक्त कमल पर अवस्थित है। शास्त्रों में इसका विशद वर्णन है। महात्मा श्रीनन्द दासजी ने उस कल्पतरु का वर्णन इस प्रकार किया है–

तिन मधि इक जु कल्पतरु लगि रही जग मग जोती।
पत्र मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती।।
तिहिं सुर तरु मधि और एक अदभुत छबि छाजै।
साखा दल फल फूलन हरि प्रति बिंब विराजै।।
तापै सोडस दल सरोज अदभुत चक्राकृति....
फिरि आये तिहिं सुरतरु तर सुंदर गिरवर घर।
आरंभौ अदभुत सुरास उहिं कमल चक्र पर।।

– २५ –

अवतरण – आज तत्सुख परायणा सखियों ने श्रीप्रियाजी को मज्जन कराके शृङ्गार से भूषित किया है। वे शृङ्गार सुसज्जित होकर प्रियतम श्रीलालजी से मिली हैं। श्रीहित सखीजी उनके तत्कालीन रूप, शील, लावण्य और शृङ्गार का वर्णन स्तुति व्याज से कर रही हैं। वे सखियों से बोलीं–

धनाश्री

मूल– **आज नीकी बनी श्रीराधिका नागरी।**
ब्रज जुवति जूथ में रूप अरु चतुरई,
सील सिंगार गुन सबनितें आगरी।।
कमल दक्षिण भुजा वाम भुज अंस सखि,
गाँवती सरस मिलि मधुर सुर राग री।
सकल विद्या विदित रहसि 'हरिवंश हित'
मिलत नव कुंज वर स्याम बड़ भाग री।।२५।।

भावार्थ– "हे सखी ! आज नागरी राधिका बड़ी नीकी (सुन्दर) बनी हैं। वे समस्त ब्रज युवति समूह में रूप, चातुर्य शील शृङ्गार एवं गुण सभी बातों में सबसे बढ़ी–चढ़ी–श्रेष्ठ हैं। उनके दाहिने हाथ में कमल है और वे अपनी बायीं भुजा सखी के कन्धे पर रखे हुए सब सहचरियों से मिलकर सरस एवं मधुर राग का स्वर पूर्वक गान कर रही हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं–(ये राधा) समस्त विद्याओं की ज्ञाता हैं। अहो! वे आज बड़भागी श्रीश्यामसुन्दर से रहस्य निकुञ्ज वर मन्दिर में (आनन्द पूर्वक) मिल रही हैं।"

– २६ –

अवतरण– शरद की राका रजनी में श्रीलालजी ने रासोत्सव प्रारम्भ किया है। उस समय भी जाने किस कारण श्रीप्रियाजी मानिनि बनी बैठी हैं। श्रीलालजी ने अपनी प्राण प्रियतमा को मना लाने के लिये परम चतुरा हित सखी को भेजा है। वे प्रियाजी के समीप दूतिका बनकर आयी हैं। दूतिका अपने उत्तम लक्षणों से पूर्ण है, अतः उसने नुति न्याय (चाटुकारी) पूर्वक नायिका श्रीराधा की स्तुति की। पश्चात् उसने आलम्बन (श्रीवन, शरद, रात्रि आदि) का वर्णन किया फिर नायक की प्रशंसा पूर्वक वह नायिका के हृदय में प्रेम मिलन की उत्कण्ठा जागृत करने लग गयी। परिणाम यह हुआ कि उसने भोली किंतु परम श्रेष्ठ नायिका श्रीराधा को प्रसन्न कर लिया और अन्त में श्रीलालजी से उसे मिला कर परम हर्षित हुई। इस पद में इसी रास मिलन का वर्णन है। हित सजनी (दूती रूप से श्रीराधा से) बोलीं–

धनाश्री

मूल– **मोहनी मदन गोपाल की बाँसुरी।**
माधुरी श्रवन पुट सुनत सुनु राधिके,
करत रतिराज के ताप कौ नासुरी।।
सरद राका रजनि विपिन वृंदा सजनि,
अनिल अति मंद सीतल सहित बासु री।
परम पावन पुलिन भृंग सेवत नलिन,
कल्पतरु तीर बलवीर कृत रासु री।।

सकल मंडल भलीं तुम जु हरि सौं मिलीं,
बनी वर वनित उपमा कहौं कासु री।
तुम जु कंचन तनी लाल मरकत मनी,
उभय कल हंस 'हरिवंश' बलि दासुरी।।२६।।

भावार्थ– "हे राधिके ! सुनो ! मदन गोपाल श्रीकृष्ण की वंशी बड़ी मोहिनी है। उसकी तान माधुरी कर्ण पात्रों में पड़ते ही समस्त काम ताप का नाश कर देती है। हे सजनी ! देखो तो (कितनी सुन्दर) शरद् पूर्णिमा की रात्रि है, (शोभामय) श्रीबन है और अत्यन्त शीतल वायु धीरे धीरे सुगन्ध के साथ होकर बह रहा है, भ्रमर समूह कमलों का सेवन कर रहे हैं, ऐसे समय में बलवीर श्रीलालजी ने यमुना पुलिन कल्पतरु के तीर पर रासोत्सव की योजना की है।"

(दूतिका की बात से प्रसन्न हो मान छोड़ कर श्रीप्रियाजी श्रीलालजी से जा मिलीं। उनसे मिल कर जो छटा प्रकट हुई उसे देखकर पुनः श्रीहित सखी बोलीं– "स्वामिनि!) देखो, इस समस्त युवती मण्डल में तुम्हीं एक परम सुन्दरी हो। (इस समय) श्रीलालजी से मिलकर जो तुम्हारी उत्तम बानक (छबि) प्रकट हुई उसकी मैं कौन सी उपमा दूँ ? (बस, इतना ही कह सकती हूँ कि तुम तो काञ्चन तनु हो और श्रीलालजी मरकत मणि जैसे हैं। तुम दोनों (प्रेम सरोवर श्रीवन के) सुन्दर हंस युगल हो। (इस हंस दम्पति पर मैं) हरिवंश दासी बलिहार हूँ–वारी जाती हूँ।"

– २७ –

अवतरण– यद्यपि श्रीवृन्दावन सदा ही वसन्त से अलङ्कृत है तथापि सहचरि गण के सुख और विनोद के लिये श्रीवृन्दा देवी वहाँ पर समयानुसार वसन्त वर्षा, शरद की ऋतु योजना करती रहती हैं।

इस लीला क्रम से आज मानो पुनः परम रम्य यमुना तटी श्रीवन में ऋतुराज ने अपनी विजय दुन्दुभि बजायी है। और उसने रतिराज की समस्त सैन्य को आमन्त्रित किया है, यत्र तत्र उसके डेरे से पड़े हैं, तभी तो श्रीवन आज विलक्षण नूतनता लिये समस्त परिकर का मन चुरा रहा है।

बड़ा ही सुखद समय है, न अधिक ग्रीष्म है और न अधिक शीतलता ही। शीतल एवं सुगन्धित पवन सौरभ भार को लेकर व्यजन सा झल रहा है। लता विटपों के नव नव किशलय अपनी कोमल स्निग्धता से सबके हृदय में स्नेह का सञ्चार सा कर रहे हैं। विविध प्रकार के पुष्प अपने रङ्ग विरङ्गेपन से वृन्दावन को यों सजाए हुए हैं जैसे उसने बहुरंगमय दुकूल धारण कर रखा हो। यदि मालती, माधवी, मल्लिका, जूथिका जाति, जूही आदि के पुष्प अपनी सुगन्धि से समस्त वृन्दावन को परिमल प्रदान करते हैं, तो केतकी, मेदिनी और गुल्लाला अपनी रूप छटा से उसे श्री प्रदान करते हैं। कचनार बकुल और पलाश तो मदन की दुन्दुभि सी दे रहे हैं। समस्त परिकर का मन नई नई उमङ्गों से परिपूर्ण है—उल्लसित है।

ऐसे उल्लासमय अवसर में युगल किशोर अनन्त सखि समूह से आवृत सरस धमार गाते हुए परस्पर एक दूसरे पर बूका बन्दन गुलाल अबीर फेंक फेंक कर परिहास पूर्वक रस का उद्दीपन करते हैं। कस्तूरी, केशर मलयज आदि से रङ्गों का निर्माण करके एक दूसरे पर उड़ेल देते और वस्त्रों को रँग देते हैं।

इस परमानन्द पूर्ण प्रेमोल्लास विलास का वर्णन श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु इस प्रकार करते हैं—

वसन्त

मूल—मधुरितु वृंदावन आनँद न थोर।
राजत नागरि नव कुसल किसोर।।
जूथिका जुगल रूप मंजरी रसाल।
विथकित अलि मधु माधवी गुलाल।।
चंपक बकुल कुल विविध सरोज।
केतकि मेदनि मद मुदित मनोज।।
रोचक रुचिर बहै त्रिविध समीर।
मुकुलित नूत नदित पिक कीर।।
पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज।
किसलय सैन रचित सुख पुंज।।

मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग।
बाजत उपंग बीना वर मुख चंग।।
मृगमद मलयज कुंकुम अबीर।
बंदन अगरसत सुरँगित चीर।।
गावत सुंदरि हरि सरस धमारि।
पुलकित खग मृग बहत न वारि।।
(जै श्री) हित हरिवंश हंस हंसिनी समाज।
ऐसे ही करौ मिलि जुग जुग राज।।२७।।

भावार्थ– श्रीवृंदावन में वसन्त ऋतु छाई है, इसलिये आनन्द थोड़ा नहीं वरं अधिक है।(ऐसे समय में) नव नागरी (श्रीराधा) और चतुर किशोर (श्रीकृष्ण) शोभा पा रहे हैं। दोनों प्रकार की (श्वेत और पीत) यूथिकाएँ रूप मञ्जरी एवं रसाल (आम्र) फूल रहे हैं। माधवी और गुल्लाला के मधु पर अलिगण लुब्ध हैं–विथकित हैं। चम्पक और मौलिश्री (मौलसरी) के समुदाय, विविध प्रकार के सरोज केतकी, मेदिनी आदि भी मुकुलित हैं जिनके कारण मनोज भी मद से मुदित है। रोचक एवं सुखद सुन्दर त्रिविध पवन बह रहा है। फूले हुए आमों पर (बैठे) कीर कोयल मधुर मधुर नाद कर रहे हैं। सूर्य तनया यमुना के पावन पुलिन पर मञ्जुल एवं सघन लता भवन है जिसके अन्तर्भाग में सुख पुञ्ज शय्या बिछी है।(लता भवन के बाहर) मञ्जीर,मुरज डफ, मुरली, मृदङ्ग उपङ्ग वीणा और उत्तम मुख चङ्ग बज रहे हैं।(फाग खेल में) समस्त परिकर के वस्त्रादि कस्तूरी, मलय, केशर अबीर, बन्दन एवं अगर सत्व (इत्र) से सुरञ्जित हो रहे हैं। सुन्दरि श्रीराधा और श्रीहरि मिले रसमय धमार गा रहे हैं, जिसे सुन कर खग मृग सभी रोमाञ्चित हो उठे हैं, यमुना की धारा थकित है बह भी नहीं पाती है।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र (महाप्रभु) कहते हैं (हे युगल किशोर) तुम दोनों हंस हंसिनी का समाज इसी प्रकार युग युग–सदा सर्वदा मिल जुल कर राज्य करता रहे–सुख विलास ही करता रहे।

– २८ –

अवतरण – वसन्त के सुहावने समय में श्रीवृन्दावन की अवर्णनीय शोभा है किन्तु श्रीप्रियाजी मानिनि बनी बैठी हैं। इस समय हित सहचरि ने श्रीवन की अपूर्व शोभा का दर्शन कराते हुए मानिनि प्रिया के मान का मोचन करने के लिये श्रीलालजी की प्रशंसा की। पश्चात् उद्दीपन विभाव श्रीवृन्दावन का वसन्त यश गान किया जिसे सुनकर मानिनी का मान छूट गया और वे प्रियतम से जा मिलीं।

इस पद में इसी भाव का वर्णन है। श्रीहित सहचरि श्रीप्रियाजी से कहती हैं–

वसन्त

मूल–राधे देखि वन की बात।
रितु बसंत अनंत मुकुलित कुसुम अरु फल पात।।
बैंनु धुनि नँदलाल बोली, सुनिऽब क्यौं अर सात।
करत कतऽब विलंब भामिनि वृथा औसर जात।।
लाल मरकत मनि छबीलौ तुम जु कंचन गात।
वनी (श्री) हित हरिवंश जोरी उभै गुन गन मात।।२८।।

भावार्थ – "प्यारी राधे ! श्रीवृन्दावन की छटा तो देखो ! वसन्त ऋतु अनन्त पुष्प फल और पत्रों से मुकुलित है–खिली हुई है। (ऐसे समय में) वेणु ध्वनि के द्वारा श्रीनन्द लाल ने तुम्हें बुलाया है फिर (तुम उस ध्वनि को सुनकर भी) आलस्य क्यों कर रही हो ? हे भामिनि ! विलम्ब किस लिये कर रही हो, देखो (कैसा सुन्दर) अवसर व्यर्थ जा रहा है !

श्रीहित हरिवंश चन्द्र (सखी रूप से) कर रहे हैं–"अहा ! तुम दोनों की कैसी सुन्दर जोड़ी बनी है जो (दोनों ओर से) अनेक गुण समूह से मत्त है–परिपूर्ण है, जैसे श्रीलालजी मरकत मणि जैसे छविमय है वैसे ही तुम भी कनक वपु हो।"

– २९ –

अवतरण – श्रीकृष्ण आह्लादिनि, श्रीकृष्ण की हृदय भूषण स्वरूपा परम सुन्दरी, ब्रज नव तरुणि कदम्ब शिरोमणि नित्य नवल किशोरी श्रीराधा अपने

रूप लावण्य, माधुर्य्य, यौवन, गुण, शील, हाव भाव, कौशल आदि सभी उत्तमा नायिकोचित रस एवं गुणों में सर्वापेक्षा अत्युत्कृष्ट हैं—अनुपमेय हैं ? वे श्रीकृष्ण की आराधनीया हैं कौन श्रीकृष्ण? पूर्ण पुरुषोत्तम प्रकट परावर नाथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण बस, इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है उनकी महिमा के सम्बन्ध में।

और रस एवं शृङ्गार के क्षेत्र में भी उनसे श्रेष्ठ कोई नायिका नहीं है। उनके शुभ लक्षणों का सम्पूर्णतया वर्णन करने में सभी शास्त्र और उपनिषद् थकित हैं—हतप्रभ हैं। बस उनकी जैसी तो केवल वही हैं। वे रस रूपा हैं, रस भूषण हैं, रस निधि हैं, और रस दात्री भी हैं।

भगवती श्रुति के सङ्केत रसो वै स: अर्थात् वह रस रूप है की यही प्रत्यक्ष मूर्त्ति हैं। इनका साक्षात्कार, अनुभव और रस पान करने पर ही श्रुति के रसं ह्येवायं लबध्वानन्दी भवति' अर्थात् निश्चय ही इस रस को प्राप्त करके (मनुष्य) आनन्द मय हो जाता है, इस वाक्य का साक्षात्कार होता है।

अस्तु, यहाँ पर उन्हीं उपनिषदोपरि श्रीकृष्ण हृदयेश्वरी श्रीराधा के नख शिख रूप शृङ्गार का वर्णन श्रीहिताचार्य्य चरण शाखा चन्द्र न्याय से कर रहे हैं—

देव गंधार

मूल—ब्रज नव तरुनि कदंब मुकुट मनि स्यामा आजु बनी।
नख सिख लौं अँग अंग माधुरी मोहे स्याम धनी।।
यौं राजत कबरी गूँथित कच कनक कंज वदनी।
चिकुर चंद्रिकनि बीच अरध विधु मानौं ग्रसित फनी।।
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी।
भृकुटि काम कोदंड नैंन सर कज्जल रेख अनी।।
तरल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी।
दसन कुंद सरसाधर पल्लव प्रीतम मन समनी।।
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि साँवल बिंदु कनी।
प्रीतम प्रान रतन संपुट कुच कंचुकि कसिब तनी।।
भुज मृनाल वल हरत वलय जुत परस सरस श्रवनी।
स्याम सीस तरु मनौं मिडवारी रची रुचिर रवनी।।

नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन कौं ह्रदनी।
कृस कटि पृथु नितंब किंकिनि वृत कदलि खंभ जघनी।।
पद अंबुज जावक जुत भूषन प्रीतम उर अवनी।
नव नव भाइ विलोभि भाम इभ विहरत वर करिनी।।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रसंसित स्यामा कीरति विसद घनी।
गावत श्रवननि सुनत सुखाकर विस्व दुरित दवनी।।२९।।

भावार्थ – (समस्त) व्रज की नव युवतियों के समुदाय में भी मुकुट मणि स्वरूपा श्यामा (श्रीराधा) आज बड़ी भली बनी है–शोभित हैं, जिनकी नख शिख पर्यन्त अङ्ग प्रत्यङ्ग माधुरी पर प्रियतम प्राणेश्वर श्रीश्याम सुन्दर मोहित हैं। अहा ! स्वर्ण कमल मुखी श्रीराधा गुँथे हुए केशों के जूड़े (कवरी) से ऐसी शोभित हैं मानो केश चन्द्रिका रूप फणि (सर्प) ने चन्द्र (रूप श्रीमुख कमल) को आधा निगल रखा हो। स्वयं प्रियतम श्रीलालजी ने आपका सीमन्त शृङ्गार किया है। वह सीमन्त शृङ्गार ही मानो (श्रीराधा के) सुहाग–रस की पनारी (धारा) सिर में बह रही है। भृकुटियाँ ही काम के धनुष हैं नयन बाण हैं और कज्जल की रेखा ही वाणों की नोंक हैं। ललाट पर तरल तिलक और कपोलों पर ताटङ्क झिलमिल झिलमिल कर रहे हैं, नासा पर सुन्दर मणि मुक्ता शोभित है। कुन्द कली जैसे दशन हैं और अधर पल्लव भी बड़े सरस हैं, ऐसी सरसधर पल्लवा श्रीराधा प्रियतम श्रीलालजी के मन की शान्ति करती हैं।

हे सखि! चिबुक के मध्य में अत्यन्त सुन्दर स्वाभाविक श्याम बिन्दु कण (तिल) शोभित है। प्रियतम के प्राण रूप रत्नों की रक्षा करने वाले सम्पुट (डिब्बे) की तरह कुचों पर बन्धनों द्वारा कञ्चुकि कसी है। वलय सयुक्त भुज मृणाल स्पर्श करते ही बल का हरण करते और रस का सञ्चार करते हैं। श्याम तमाल विटप रूप श्रीश्याम सुन्दर के शीश को आवेष्टित करने वाली इस मिडवारी लता की रचना उन्होंने (श्रीप्रियाजी ने) कर रखी है। [अर्थात् श्री प्रियाजी ने श्रीश्याम सुन्दर के गलबहियाँ दे रखी है।] श्रीप्रियाजी की नाभि क्या है मानो मोहन के मीन मन के खेलने के लिये कुण्डिका है। श्रीराधा पतली कटि युक्त हैं। पुष्ट प्रथुल नितम्ब प्रदेश किङ्किणि से आवृत है तथा ये कदलि स्तम्भ जैसे जङ्घा वाली हैं। इनके चरण कमल जावक (महावर) एवं भूषणों से

संयुक्त हैं एवं सदा प्रियतम की हृदय अवनी में विराजित हैं ये चरण। नवीन नवीन भावों के द्वारा भामिनि श्रीराधा प्रियतम को प्रलोभित कर कर के ऐसे विहार करती हैं जैसे मत्त गजराज के साथ उन्मत्त करिणि।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि मेरे द्वारा प्रशंसित श्रीश्यामा की कीर्त्ति पवित्र एवं अत्यधिक है, जिसका गान एवं श्रवण कर्ण पुटों के लिये सुख का समुद्र है और विश्व के समस्त पाप तापों का दमन शमन करने वाला भी।

– ३० –

अवतरण – शरद मास की राका रजनी है। शीतल पवन धीरे–धीरे बह रहा है। सरोवरों में कमल विकसित हैं और वृन्दावन विभिन्न पुष्पों से अलङ्कृत है, मधु लोभी मधुप गण गुञार करते हुए फूलों पर मँड़रा रहे हैं।

श्रीप्रिया प्रियतम ने विविध प्रकार के किशलय दल एवं पुष्पों से एक मनोहर शय्या निर्मित की है और उस पर परम रसिक युगल किशोर विराजमान हैं, परम एकान्त कुञ्ज भवन में। निकट में न कोई सखियाँ हैं न दासियाँ ही।

जब युगल रसिक रति रण से विथकित होकर प्रेम मूर्च्छा से विथकित हो जाते हैं, तब ललितादिक निज सहचरियाँ आकर उन पर व्यंजन आदि करने लगती हैं अपने अञ्चल से। वे इसे अपना परम सौभाग्य समझती हैं।

इसका वर्णन श्रीहित सजनी अपनी किसी अन्तरङ्ग सखी से इस प्रकार करती हैं–

देव गंधार

मूल–देखत नव निकुंज सुनु सजनी लागत है अति चारु।
माधविका केतकी लता लै रच्यौ मदन आंगारु।।
सरद मास राका निसि सजनी सीतल मंद सुगंध समीर।
परिमल लुब्ध मधुव्रत विथकित नदित कोकिला कीर।।
वहु विध रंग मृदुल किसलय दल निर्मित पिय सखि सेज।
भाजन कनक विविध मधु पूरित धरे धरनि पर हेज।।
तापर कुसल किसोर किसोरी करत हास परिहास।
प्रीतम पानि उरज वर परसत प्रिया दुरावति वास।।

कामिनि कुटिल भृकुटि अवलोकत दिन प्रतिपद प्रतिकूल।
आतुर अति अनुराग विवस हरि धाइ धरत भुज मूल।।
नागर नीवी बंधन मोचत ऐंचत नील निचोल।
बधू कपट हठ कोपि कहत कल नेति नेति मधु बोल।।
परिरंभन विपरित रति वितरत सरस सुरत निजु केलि।
इंद्रनील मनिमय तरु मानौं लसत कनक की बेलि।।
रति रन मिथुन ललाट पटल पर श्रम जल सीकर संग।
ललितादिक अंचल झकझोरतिं मन अनुराग अभंग।।
(जै श्री) हित हरिवंश जथामति बरनत कृष्ण रसामृत सार।
श्रवन सुनत प्रापक रति राधा पद अंबुज सुकुमार।।३०।।

भावार्थ– (श्रीहित सखी ने कहा–) "हे सजनी ! सुन तो सही ! यह नव निकुञ्ज देखने में कितना सुन्दर लगता है ! मदन ने माधवी, केतकी आदि लताओं से निकुञ्ज भवन बनाये हैं। शरद मास की पूर्ण राका रजनी है, शीतल एवं सुगन्धित पवन धीरे धीरे बह रहा है और सुगन्ध से लुब्ध भ्रमर मादकता के कारण विथकित हो रहे हैं। कोकिला और कीर गान कर रहे हैं।

(ऐसे सुहावने काल में) विविध रङ्गों के बहुत से मृदुल किशलय दलों से हे सखी ! श्रीलालजी ने शय्या रची है। वहीं पर अनेकों कनक घट नाना प्रकार के मधु आसवों से भरे भूमि पर संजोकर रख गये हैं। उस शय्या पर कुशल किशोर और किशोरी बैठे हास परिहास कर रहे हैं। प्रियतम अपने करों से प्रियाजी के वर उरोजों का स्पर्श करते और वे उन्हें अपने अञ्चल से छिपा लेती हैं। (प्रेम रोष से) कामिनि कुटिल भौंहों द्वारा प्रियतम की ओर देखतीं और सदा बात बात पर प्रतिकूल सी बनती हैं। किन्तु अति अनुराग से विवश और आतुर श्रीहरि झपट कर उनका भुज मूल पकड़ ही लेते हैं। नागर श्रीलालजी वलात् उनका नीबी बन्धन खोलते और नीलाम्बर खींचते हैं, तब कपट हठ (मिथ्या नहीं) का प्रकाश करती हुई कुपित होकर ''नहीं, ऐसा नहीं, ऐसे मधुमय वचन कहती हैं।"

(तदुपरान्त दोनों मिलकर) "एक दूसरे का आलिङ्गन करते और (दोनों ही) अपनी सरस सुरत रस केलि (निज केलि) द्वारा विपरीत रति का वितरण

करते हैं, (रसिक जन सखियों के लिये।) सखि ! (उस समय की छबि ऐसी दीखती है,) मानो इन्द्रनील मणिमय विटप से स्वर्ण की लता लिपट रही है। रति युद्ध के श्रम से दोनों के ललाट पटल पर श्रम जल (प्रस्वेद) सीकर शोभित हैं और जिनके मनों में अभङ्ग अनुराग है ऐसी ललितादिक सहचरियाँ अपने अञ्चलों से पवन झकझोलती—वायु डुलाती हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र इस श्रीकृष्ण रसामृत सार रति विहार का यथा मति वर्णन करते हैं जो श्रवणों में पड़ते ही श्रीराधा के सुकुमार पदाम्बुजों का प्रेम प्राप्त करा देने वाला है।

टिप्पणी—

(१) 'भाजन कनक विविध मधु पूरित धरे धरनि पर हेज,' चूँकि शास्त्र मर्यादा के अनुसार आसवों का पान करना हेय है और फिर भगवान् के लिये तो और भी विशेष; क्योंकि वे जैसा आदर्श उपस्थित करते हैं, उसी के अनुसार अन्य जन भी आचरण करते हैं किन्तु इस रस विहार—रसोपासना में न तो शास्त्रों का बन्धन है और न लोक वेद की मर्यादा ही। यह नित्य विहार सर्व तन्त्र स्वतन्त्र है। इस पर धर्म कर्म, लोक, वेद, शास्त्र आदि किसी का भी अनुशासन नहीं; क्योंकि—

धर्म व्यतिक्रमों दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।

श्रीमद्भागवत १०/३३/३०

अर्थात् 'धर्म के उल्लङ्घन कर देने का साहस ईश्वर में देखा जाता है।'

उक्त प्रसङ्ग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम और परात्पर ब्रह्म भी हैं। यदि उनके निखिल निगमागम अलक्षित रसमय नित्य विहार में उज्वल रस की रीत्यानुसार आसवों (मादक द्रव्यों) का उपयोग है तो वह किसी प्रकार भी हेय नहीं और न कहा ही जा सकता है। यह तो लोक वेदातीत, मर्यादा से परे भावुक रसिक जनों के लिये है जो इसके अधिकारी हैं। उनका परिचय निम्न श्लोक से प्राप्त होता है—

न जानीते लोकं न च निगम जातं कुल परं—
परां वा नो जानत्यहह न सतां चापि चरितम्।

रसं राधायामाभजति किल भावं व्रज मणौ,
रहस्यं तद्यस्य स्थिति रपि न साधारण गतिम्।।

–श्रीराधा सुधा निधि।

अर्थात् जो महानुभाव इस एकान्त रस देश में व्रज मणि श्रीराधा के भाव एवं रस का निश्चय रूप से भजन करते हैं, अहो ! वे न तो लोक को जानते और न निगम समूह को और न कुल परम्परा को ही जानने की इच्छा रखते हैं। उन्हें साधु आचरणों की भी स्पृहा नहीं है, तभी तो उनकी गति–स्थिति साधारण नहीं वरं असाधारण है।'

इन अधिकारी गणों के लिये इस रसविहार का सहज सिद्धान्त है–

यत्राधर्म एव धर्मः स्थापितः।

श्रीरसिकोत्तंस जी

अर्थात् 'जहाँ (प्रेम राज्य में) अधर्म ही धर्म के रूप में स्थापित है।'

इसीलिये श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद पुनः अन्यत्र कहीं कहते हैं–

अवनी उदर नाभि सरसी में मनहुँ कछुक मादिक मद घोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश पिवत सुन्दरवर सीवँ सुदृढ़ निगमनि की तोरी।।

निगमों की सुदृढ मर्यादा को भी तोड़कर सुन्दर वर श्रीलालजी श्रीप्रियाजी के उस नाभि कुण्ड का सरस मादक मधु पी रहे हैं।

ऐसे ही कुछ श्रीदामोदर (सेवक जी) भी कह रहे हैं–

नवल नवल सुख चैन ऐन आपुने आप बस।
निगम लोक मर्जाद भंजि क्रीडन्त रंग रस।।
सुरत प्रसंग निसंक करत जोइ जोइ भावत मन।
ललित अंग चलि भंगि भाव लज्जित सुकोक गन।।
अद्भुत विहार हरिवंश हित, निरखि दासि सेवक जियत।
विस्तरत सुनत गावत रसिक सु नित नित लीला रस पियत।।

अतएव इस रस राज्य में जो भी कुछ अमर्यादित चेष्टाएँ हैं वे सभी उचित हैं और शास्त्र मर्यादातीत हैं। इसी दृष्टि से निकुञ्ज भवन में मादक आसवों के सँजोने का वर्णन भी किया गया है, जो शृङ्गार–उज्वल रस की दृष्टि से आवश्यक उद्दीपन एवं रस विवर्द्धक है।

(२) ललितादिक–

निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा की अनन्त दासियाँ और सहेलियाँ हैं। वे सब अपने अपने भावानुसार अनुराग पूर्वक युगल किशोर की सेवायें करती रहती हैं। इन सब सखियों की कुछ यूथेश्वरियाँ हैं, इन यूथेश्वरियों की प्रधान ये आठ ललितादिक सखियाँ हैं। ये आठों युगल सरकार की अति आत्मीय हैं। इनके नाम क्रमशः ललिता, विशाखा, रङ्ग देवी, चम्पक लता, चित्र लेखा, इन्दु लेखा, तुङ्ग विद्या और सुदेवी हैं। इन आठों में पारस्परिक कोई तारतम्य भेद नहीं है। ये छाया की भाँति युगल की नित्य सङ्गिनि हैं। ये आठों हित–प्रेम की मूर्त्ति हैं अतः निरन्तर आनन्द की ही वृद्धि करती रहती हैं। इनके मन, प्राण, आत्मा और इन्द्रियाँ सभी प्रेम से ओत प्रोत हैं।

ये सभी उज्वल, रोचक और श्रेष्ठ वस्त्राभूषण धारण करतीं हैं जो उनकी अपनी रुचि के किन्तु भिन्न भिन्न हैं। सबका सौन्दर्य्य अवर्णनीय है–अतुल है। इनमें से प्रत्येक की सेवा, वेश भूषा, और दक्षता, रूप वर्ण और रुचि क्रमशः इस प्रकार है–

(१) ललिताजी– प्रेम की समस्त युक्तियाँ (घातें) जानतीं अतः रस विलास प्रक्रिया की पण्डिता हैं। ये रुचिर ताम्बूल बीड़ियों की रचना करके युगल सरकार को खिलाया करती हैं। अपने मुख से वही बात कहती हैं जो दोनों में रुचि और प्रेम की वृद्धि करने वाली हो।

इनकी शरीर आभा गोरोचन जैसी है और मयूर पिच्छ के भाँति की सारी धारण करती हैं।

(२) विशाखाजी– श्रीललिताजी की ही तरह विशाखा जी भी युगल का अत्यन्त प्यारी हैं। ये भी सदा ही युगल के साथ रहती और उनकी रुचि के अनुसार उन्हें नवीन, उज्वल, सुकोमल और मनोहर वस्त्रधारण कराती रहती हैं। सदा श्रीप्रियाजी की रुचि की बातें करती रहती हैं।

इनकी तनद्युति शत शत दामिनियों की तरह है एवं तारा मण्डल जैसे इनके वस्त्र हैं।

(३) **रङ्गदेवी जी–** सर्वदा अपना नाम सार्थक करती हुई आनन्द रङ्ग की ही वृद्धि करती रहती हैं। युगल सरकार को भूषण धारण कराना और उनकी सुव्यवस्था पूर्वक रचनायें करना इन्हीं का कार्य है। इनमें चित्र लेखन की भी बड़ी शक्ति है।

इनकी शरीर कान्ति कमल किञ्जल्क जैसी है और ये सारी पहिनती हैं जपा कुसुम के रङ्ग की।

(४) **चम्पकलताजी–** पाक कला में अत्यन्त निपुण हैं। अनेकों प्रकार के नवीन नवीन और सुस्वादु व्यञ्जन बना बनाकर सदैव युगल को सन्तुष्ट करती रहती हैं।

ये यथानाम गौराङ्गी हैं और इन्हें श्रीप्रियाजी ने प्रसन्न होकर अपना दिव्य नीलाम्बर दे रखा है वही इनके श्रीवपु की शोभा वृद्धि करता रहता है।

(५) **चित्रलेखाजी–** युगल सरकार की बड़ी प्यारी हैं। ये उन्हें सुगन्धित जल अर्पण करतीं और विविध प्रकार के आसव तैयार करती हैं, साथ ही चित्र लेखन एवं शृङ्गार रचना की कला में भी ये अत्यन्त निपुण हैं।

इनका वर्ण केशर का सा है और ये स्वर्ण प्रभा जैसे वस्त्र धारण करती हैं।

(६) **इन्दुलेखाजी**–कोक कला की समस्त क्रियाओं में परम विदग्ध हैं। काम कहानियों की तत्काल ही सरस रचनायें करना तो केवल यही जानती हैं। इसके सिवाय प्रेम मंत्र, वशीकरण, सम्मोहन आदि यन्त्र तन्त्र सभी कुछ जानती हैं। मानादि के अवसर में युगल पर अपने यन्त्र तन्त्रों का प्रयोग भी करती हैं। इन्दुलेखाजी श्रीलालजी को अपने सारे गुण सिखाती रहती हैं इसलिये भी श्रीप्रियाजी को प्यारी हैं।

हरताल की तरह इनकी देह प्रभा है और ये दाड़िम पुष्प के रंङ्ग के वस्त्र धारण करती हैं। ये युगल के कोष की भी अधिकारिणि हैं।

(७) **तुङ्गविद्याजी–** यथानाम तथा गुण हैं। ये गान, नृत्य कोक हास शिल्प चित्र रचना, वाद्य आदि सभी विद्याओं में निपुण हैं। गुणों की तो मानो अवधि हैं।

मन हरण गौर इनका वर्ण हैं और तदनुरूप पाण्डु वर्ण के ये वस्त्र धारण करती हैं।

(८) **सुदेवीजी**– बड़ी सलोनी हैं। प्रत्येक बात में पूर्ण हैं किसी बात में न्यून नहीं। युगल सरकार का नख शिख शृङ्गार करना ही इनकी सेवा है। ये कबरी बन्धन करना और अञ्जन रेख बनाना अच्छा जानती हैं, अतः श्रीप्रियाजी की परम कृपा पात्र हैं।

ये अद्भुत रमणीय वर्ण की हैं और सूहे रङ्ग की सारी पहिनती हैं।

उक्त आठ निज सखियों में से प्रधान हैं श्रीललिताजी। जो रति विहार के मर्म अवसरों पर भी युगल की सेवा की अधिकारिणि हैं किन्तु कभी कभी उन्हें भी एकान्त रस विहारावसर में लता भवन के रन्धों से ही इस विहार का दर्शन सुख ले सकती हैं, समीप नहीं रह सकतीं। उस समय केवल एक सखी अव्यक्त रूप से युगल सरकार के समीप रहती है जिसका सङ्केत परिचय रुद्रयामल तन्त्र में इस प्रकार है–

सुतल्पे शाययित्वाथ सम्वाहय च पदाम्बुजम्।
रहस्य समयं ज्ञात्वा वयस्या वाहिरागतः।।
एका सखी तु श्रीराधा कृपातिभर पूरिता।
तदानीमपि सेवार्थ तल्पोपान्ते विराजते।।

अर्थात्" युगल सरकार को सुन्दर शय्या में शयन कराके एवं उनके चरण कमलों का सम्वाहन करके रहस्य समय जानकर सखियाँ बाहर हो गयीं किन्तु वहाँ श्रीराधा की अति कृपा प्रवाह पूरिता एक सखी उस समय भी सेवा के लिये श्रीराधा की शय्या के समीप रही।"

रुद्र यामल में वर्णित यह 'एका सखी' कौन है ? इसका परिचय श्रीनाभाजी महाराज अपने भक्त माल में देते हैं–

श्रीराधा चरन प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुञ्ज केलि दम्पती तहाँ की करत खवासी।।
सर्वसु महाप्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहिं दासि अनन्य उत्कट व्रत धारी।।

श्रीव्यास सुवन पथ अनुसरै सोई भलैं पहिचानि है।
श्रीहरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोऊ जानि है।।

भाव यह कि दम्पति के कुञ्ज केलि की खवासी निरन्तर करने वाली वह 'एका सखी' श्रीहित हरिवंश चन्द्र ही हैं।

इसी प्रकार चाचा श्रीहित वृन्दावन दास जी भी कह रहे हैं—

बन्दौं प्रेम खिलारी दंपति उर जो है।
कौतुक रचै जु भारी दोऊनि मन मोहै।।
कौतुक रचे जु भारी वारी अति रस रूप छकावै।
सदा सदेह रहै वृंदावन पिय प्यारी दुलरावै।।
याके खेल रसिक जन परखैं थिर चर सब मन भावै।
वृन्दावन हित रूप सहेलिनु चित जु चोज उपजावै।।

इस छन्द में 'दंपति उर जो है' सदा सदेह रहै वृंदावन और पिय प्यारी दुलरावै, विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

और इस प्रेम के मूल परिचय का प्रवचन श्री ध्रुवदास जी से सुनिये—

प्रकट प्रेम कौ रूप धरि श्रीहरिवंश उदार।
राधावल्लभ लाल को प्रकट कियौ रस सार।।

बस इन्हीं हित हरिवंश चन्द्र—प्रकट हित (प्रेम) की प्रति मूर्त्ति हैं ये आठों सखियाँ।

यथा— **मानौं आठौं मूरति हित की,**

—श्रीहित ध्रुवदासजी

(३) कृष्ण रसामृत सार— यों तो साहित्य के नव रसों में, वीभत्स, रौद्र और भयानक भी रस हैं इसी प्रकार भोजन के छः रसों में कटु अल्म और तिक्त भी, किन्तु साहित्य में श्रृङ्गार और भोजन में मधुर का जो स्थान है उसे सभी लोग बिना विवाद किये ही मान रहे हैं—उन्हें मधुर और श्रृङ्गार को अत्युच्च या सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करने में कोई आपत्ति ही नहीं।

अस्तु; इतिहास, पुराण एवं शास्त्रों के मत से सिद्ध तो है ही और संत महात्माओं ने अपने अनुभव की छाप लगाकर और भी सिद्ध कर दिया है कि

भगवान् श्रीकृष्ण मूर्तिमान् शृङ्गार हैं। अनेक भाव प्रवण रसिक महानुभावों ने तो श्रीकृष्ण एवं उनके रस–शृङ्गार रस को साहित्यिक शृङ्गार रस से सर्वथा श्रेष्ठ उज्वल रस कहा है, और है भी यही बात यथार्थ भी। क्योंकि जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण त्रिगुणातीत, पूर्ण आत्माराम, सच्चिदानन्द घन, स्वयं ज्ञान और अव्यक्त विभु हैं, उसी प्रकार वे श्रुति अतर्क्य, अवाच्य, अप्रकाश्य और केवल अनुभव गम्य है। इनके लिये भगवती जहाँ पर उक्त विशेषणों से पूर्ण शब्द देती हैं वहीं पर वह उन्हें "रसो वै सः," अर्थात् वह रस रूप भी है। ऐसा भी कहती है।

अतएव अब यहाँ यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वह उस "रस रूप ब्रह्म" का स्वरूप है क्या ? इस विषय का यहाँ पर संक्षेपतः निवेदन किया जाता है।

ब्रह्मानुभूति की भाँति यह रसानुभूति केवल स्वानुभूति है–आत्मानुभूति है जो अवाङ्गमनश्गोचर और आलौकिक दिव्यानन्द है वही रस है। जहाँ प्राण, मन, आत्मा सभी किसी सात्विक एवं दिव्य प्रवाह में डूब कर परम स्निग्धता का अनुभव करने लगते हैं, वही रस की स्थिति है– वही प्रेम है। समस्त चराचर इसी रस के आस्वादन में आकुल है। फिर चाहे वह उसे अपने मन और इन्द्रियों का विषय बनाकर भोग रहा हो अथवा आत्मा का। अपने अपने स्तर में सभी उस रस रूप ब्रह्म का ही आस्वादन कर रहे हैं। किं बहुना ? चराचर जगत् ही रस रूप है, उस रस से अतिरिक्त कुछ अन्य है ही नहीं। भगवती श्रुति कहती है–

"नेहनानाऽस्ति किञ्चन।"

और इस चराचर व्यापी रस की प्रकट मूर्त्ति हैं श्रीराधा और श्रीकृष्ण। यही दोनों रस के दिव्य 'आलम्बन' हैं। इन्हीं से रस की स्थिति है और रस का विकास भी। श्रीवृन्दावन और सहचरि (युगल किशोर की नित्य सङ्गिनि सहेलियाँ ललिता विशाखा आदि) समाज इस उज्वल रस के 'उद्दीपन' हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण का पारस्परिक प्रेम ही रति है– 'स्थायी भाव' है। दोनों के बीच जिन जिन कारणों से स्थायी अनन्त रति का प्रकाश होता रहता है, वही 'विभाव' हैं। इसी प्रकार प्रेम पूर्ण कटाक्ष, भ्रू विक्षेप, हास, दर्शन, सङ्केत आदि इस रस के

'अनुभाव' हैं। रति की पुष्टि ही स्मृति, चिन्ता, उत्कण्ठा आदि भावों से पुष्ट होकर 'स्थायी भाव' का नाम ग्रहण करती है, यथा–

विभावैरनुभावश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावों रसः स्मृतः।।

स्थायी भाव की रति ही शृङ्गार रस है यह शृङ्गार रस दो प्रकार का है–

(१)सम्भोग या संयोग शृङ्गार

(२) विप्रलम्भ या वियोग शृङ्गार

सम्भोग शृङ्गार की तीन स्थितिया हैं जो क्रमानुगत हैं–

कः पूर्वानुराग– जहाँ नायिका के हृदय में पहले पहल किन्हीं कारणों से नायक के प्रति अनुराग की उत्पत्ति हो वह पूर्वानुराग है। यह पूर्वानुराग मुख्यतः चार कारणों को लेकर ही उदित होता है, वे ये हैं–गुण श्रवन चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन और प्रत्यक्ष दर्शन। यथा–

पहिलें ही गुन में श्रवन मिले जाइ फिर
रूप सुधा मधि कीनौं नैंनहू पयान हैं।
हँसनि, नटनि, उजराई, सुघराई सुधा
सुथराई मिश्री मिली कीन्हौं पय पान है।।
मोहि मोहि मोहनमयी री मेरौ मन भयौ,
हरीचंद भेद न परत अब जान है।
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,
हिय में न जानि परै कान्ह है कि प्रान है।।

खः मिलन– पूर्वानुराग के पश्चात मिलन होता है। यह मिलन ही रस का जीवन है। यह भी दो प्रकार का है, एक नित्य मिलन, दूसरा अनित्य मिलन। युगल किशोर निकुञ्ज विहारी का मिलन पूर्वानुराग और प्रवास से सुदूर एक रस, नित्य अनादि और अनन्त है अतः इसका रस विलास भी अनन्त है जिसका वर्णन इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में है भी और हम इसी प्रसङ्ग में आगे विशेष रूप से करेंगे। दूसरा अनित्य मिलन है जो श्रीहित ध्रुवदास जी के शब्दों में प्रेम ही नहीं है–रस ही नहीं। वे कहते हैं–

जब विछुरत तब होत दुख, मिलतहिं हियौ सिराइ।
याही में रस द्वै भये 'प्रेम' कहयौ क्यौं जाइ।।

–प्रीति चौवनी

ग. प्रवास– प्रियतम का प्रेमी से दूर हो जाना या अन्यत्र चले जाना ही प्रवास है। यह दो प्रकार का है, भूत प्रवास और भावी प्रवास। प्रवास से विरह की उत्पत्ति है। विरह के दश लक्षण हैं–अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण गान, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण।

कुछ विद्वान् गण ग्यारहवा लक्षण मूर्च्छा भी मानते हैं।

इसी प्रसङ्ग में शृङ्गार रस के आलम्बन–नायक एवं नायिका की जाति गुण एवं अवस्थाओं का वर्णन अनावश्यक न होगा।

जाति के अनुसार पद्मिनी एवं चित्रिणी श्रेष्ठ जाति की नायिकाएँ हैं और स्वभाव के अनुसार नायिका दश प्रकार की हैं; यथा–प्रोषित, पतिका, खण्डिता, कलहंतारिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, बासकसज्जा, स्वाधीन पतिका अभिसारिका, प्रवत्स्य पतिका और आगत पतिका।

श्रीजयदेव कविराज ने अपने 'गीत गोविन्द' काव्य में इन दशों लक्षणों को प्रायः श्रीप्रियाजी पर ही घटित किया है, क्योंकि वे भिन्न भिन्न स्थितियों में अलग अलग स्वभावों से अभिभूत होती हैं, तब वही उनका विशेषण होता है।

अस्तु; इसके सिवाय उत्तमा, मध्यमा, अधमा, अन्य सुरत दुःखिता, मानवती, वक्रोक्ति गर्विता, प्रेम गर्विता, रूप गर्विता, गुण गर्विता आदि भेद नायिका के गुणों के अनुसार हैं।

वय (उम्र) के अनुसार भी नायिका तीन प्रकार की हैं–मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। भावों के अनुसार भी नायिका तीन प्रकार की है–स्वकीया, परकीया और गणिका। इनमें गणिका हेय–घृणास्पद है, अतः यहाँ उसका कोई प्रसङ्ग नहीं है।

अस्तु; धर्मानुसार नायक भी अनेकों प्रकार के हैं, उनमें उत्तम नायक वही है जो धीर, ललित, प्रोषित पति, उप पति, अनुकूल, दक्षिण, वचन चतुर एवं क्रिया चतुर हो।

श्रीवृन्दावन के दिव्य रस विहार में स्वामिनि श्रीराधिका सर्वतोगुणोधिका नायिका हैं। उनमें सर्वोत्तमा नायिका के सभी लक्षण हैं। इसी प्रकार ललित नायक श्रीकृष्ण भी सर्व गुण सम्पन्न नायक हैं। रस विलास के लिये श्रीराधिका स्वकीया भी हैं और परकीया भी तथा स्वकीया परकीया से विलक्षण अनिर्वचनीया रसवती प्रेम पुत्तली। इसी तरह श्रीलालजी भी पति उप पति सभी कुछ हैं।

आचार्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु द्वारा प्रकाशित मिलन–शृङ्गार में नित्य मिलन अखण्ड मिलन का ही अनवरत सुख है। वहाँ विरह मान आदि तो होंगे कहाँ से? उनका भ्रम भी नहीं है। फिर भी वहाँ विरह है पर रूप दर्शन की अतृप्ति रूप से, प्रेम की नवीन नवीन उत्कण्ठा के रूप में वह वहाँ बस रहा है। इसी प्रकार मान भी है पर प्रेम वैचित्य के रूप में। स्थूल मान की भाँति नहीं।

यहाँ तक कि–

देखत देखत कल नहिं माई।
चाहत रूप में रूप समाई।।

–हित ध्रुवदासजी

श्रीवृन्दावन एक प्रेम मय देश है। वहाँ केवल प्रेम का ही राज्य है। युगल किशोर इस प्रेम राज्य के नरेश हैं। दुलहिनि राधा रानी हैं और दूलह हैं नवल किशोर श्याम। प्रजा हैं सखीगण, मृग, पक्षी और श्रीवृन्दावन का समस्त परिकर। युगल नरेश निरन्तर ललित यौवन के सिंहासन पर आसीन रहते हैं। उन पर रूप का छत्र भी तना ही रहता है। निकुञ्ज महल ही उनका राज्य प्रासाद है। और सखियाँ हैं सामन्त एवं सभासद गण। ये युगल नरेश सदा निर्भीक भाव से अपने अन्तरङ्ग महल में स्वछन्द विहार ही करते रहते हैं। इनके हृदय में मदन (प्रेम) की एक फुलवारी लगी है जो मानों इनके अङ्ग–अङ्ग में फूली हुई है। इस मदन बाग में मालिनिएँ हैं छहों ऋतुएँ जो सर्वदा सुख के फलों का उत्पादन करती रहती हैं।

कभी कभी ये युगल नरेश मदन केलि की सतरञ्ज भी खेलते हैं। प्रतिक्षण रूव अवलोकन, हाव भाव एवं चितवन की ही चालें उस खेल में चली जाती हैं। दोनों के मन ही सतरञ्ज के वजीर (मन्त्री) हैं, जो रूख देख कर अपनी चाल चलते हैं। उरोज गयन्द और आँखे तुरंग हैं। पैदलों और (पयादों)

का काम करती हैं दोनों की नरम नरम अँगुलियाँ। जब श्रीप्रियाजी के कपोल तिल अलक छवि एवं मुसकान के बीच में श्रीलाल नृपति का मन मन्त्री फँस जाता है औरश्रीप्रियाजी अपने नयन तुरगों को अटपटी चाल पर ला देती हैं, तभी लाल नृपति को मानों शैः (किश्त) दी जाती है। यह ऐसी शैः है जो खाली जाती ही नहीं जिससे नृपति की गति रुक जाती है और वे मात खा जाते हैं किंतु श्रीप्रियाजी जब खेल की परिसमाप्ति नहीं करना चाहतीं तब पुनः मात खाये हुए नृपति अधरामृत रस रूप अवसर देकर अपनी चाल वापस कर लेती हैं और राजा की विसातों को सम्हाल देती हैं। पश्चात् आलिङ्गन चुम्बन पूर्वक पुनः खेल प्रारम्भ हो जाता है और निरन्तर चलता ही रहता है इसी हार जीत के साथ।

इस प्रकार इस नित्य मिलन का रस विलास अक्षुण्ण है। इसमें मिलन के साथ विरह और अतृप्ति ओत प्रोत है किन्तु किस रूप में उसे भी देखें–

फूल सौं फूलनि सेज बनाई।
अति सुगन्ध सौंधे छिरकाई।।
नैंकु चितै तिरछे मुसकानी।
लालहिं सुधि बुधि सबै भुलानी।।
बसी जु प्यारे लाल उर, वह चितवनि मुसकानि।
तबते कबहूँ छुटीनहिं, चुभी जु उर में आनि।।
तिनकौं प्रेम और ही भाँति।
अदभुत रीति कही नहिं जाति।।
दिन संजोग में रहत हैं माई।
सूक्ष्म प्रेम विरह दुखदाई।।
देखत ही अनदेखी मानैं।
तिनकी प्रीतहि कहा बखानैं।।
प्रेम लालची लाल रँगीलौ।
अवधि प्यार की रसिक रसीलौ।।
कर अँगुरिनु भुज मूलनि परसै।
अधर पान रस कौं जिय तरसै।।

छ्वै न सकत उरजनि कर काँपैं।
चतुर कुँवरि अंचल सौं ढाँपै।।
सो वह छटा प्रेम की न्यारी।
लालहिं विवस करति अति भारी।।
तबहिं सँभारि लेति सुकुमारी।
अधर कपोलनि चूँवत प्यारी।।
जब देखी अँखियानि उघारी।
प्याइ जिवाये अधर सुधा री।।
जबहीं उर सौं घुरि लपटाहीं।
तब नैना विरही ह्वै जाहीं।।
छुटैं जबहिं छबि देख्यौ करैं।
विरह आनि अंगनि संचरैं।।
भाँति अटपटी सौं चित हरयौ।
जात नहीं उर धीरज धरयौ।।
छिन छिन दसा और की औरै।
थाँभै रहतिं सखी सिरमौरै।।
प्रेम अटपटी चटपटी, रही लाल उर पूरि।
और जतन ताकौ न कछु प्रिया सजीवन मूरि।।
विरह सँजोग दिनहिं दिन माँही।
जद्दपि ग्रीवनि मेलैं बाँहीं।।
इहि विधि खेलत कलप विहाने।
परम रसिक कबहूँ न अघाने।।

–श्रीहित ध्रुवदास जी

यह हुआ इस नित्य मिलन का विलक्षण नित्य विरह। अब देखिये इस नित्य विहार मिलन में साहित्य के नवों रस किस प्रकार इस एक मिलन में समाकर एक हो गये हैं। रसिक श्रीहित ध्रुवदासजी महाराज कहते हैं–

१	प्रथमहिं चतवनि लाज की,	शृङ्गार रस
२	दुतिय मधुर मृदु बैंन।	करुणा रस

३ तृतिय परस अंगनि सरस,
उरजनि छबि सुख दैन।। वीर रस
४ परिरंभन चुंबन चतुर, रौद्र रस
५ पंचम भाइ तरंग। हास्य रस
६ षट रस विंजन स्वाद जिमि,
उठत अनंग तरंग।। भयानक रस
७ विविध भाँति रति केलि कल,
सप्त समुद्र अपार। वीभत्स रस
८ वचन रचन अष्टम, अद्भुत रस
९ नवम रस निधि रंग विहार।। शान्त रस

कुछ ऐसे ही श्रीभगवत रसिक जी ने भी नव रसों को एक ही शृङ्गार विहार में समावेशित कर दिखाया है। वे कहते हैं–

पायँन परि विनती करैं, सो रस मुख्य सिंगार१।
मान छाँड़ि मृदु वचन कहि, करुणा२ रस निरधार।।
सैंना बैंनी हास रस३, हत्था बाँही वीर४।
कंप भयानक५ जानिये, रौद्र६ छुड़ावै धीर।।
रद छद में वीभत्स७ रस, अद्भुत८ प्रेम कौं देत।
बूड़ि रहे सुख सिंधु में परम सांति रस९ हेत।।

'अनन्य निश्चयात्म' से

इस प्रकार रस की मूर्त्ति श्रीलाड़िली लालजी रस में ओत प्रोत हुए अपनी समस्त क्रियाएँ रस वृद्धि पूर्वक रस सेवन के ही लिये करते रहते हैं। वे रस भरे नयनों से रस भरी चितवनों का विक्षेप करते और फिर रस के अनन्त आनन्दाम्बुधि में ही डूब जाते हैं तब उनके अन्तर्वहिः सिवाय रस–प्रेम के और कुछ रह ही नहीं जाता। श्रीहित ध्रुवदास जी कितनी सुन्दर शैली से इसका वर्णन करते हैं–

प्यार ही की कुंज तामें प्यार की लै सेज रची,
प्यार ही सौं प्यारो लाल प्यारी बातैं करहीं।

प्यार ही की चितवनि, मुसकनि प्यार ही की,
प्यार ही सौं प्यारीजू कौं प्यारो अंक भरहीं।।
प्यार सौं लटकि रहैं प्यार ही सौं मुख चहैं,
प्यार ही सौं प्यारो प्रिया अंक भुज धरहीं।
'हित ध्रुव' प्यार भरी प्यारी सखी देखैं खरी
प्यारै प्यार रहयौं छाइ प्यार रस ढरहीं।।

'आनन्द दसा विनोद' से

और इस रस की पराकाष्ठा है तल्प विहार। जिसका वर्णन श्रीहिताचार्य्य चरण ने यत्र तत्र सर्वत्र 'हित-चौरासी' में किया है। रसज्ञ पाठकगण उन प्रसङ्गों को देखें। हम अपनी असमर्थता चाचा श्रीहित वृन्दावन दास जी के शब्दों में प्रकट करते हैं-

कुंज महल कौतिक जु अलौकिक दृग अनुरागी जानें।
रसना लोचन हीन वापुरी कैसे छवि जु बखानै।।
भाव हीन भावुक के हिय कौ मरम कहा पहिचानै।
वृन्दावन हित रूप देसरा मती रसिक उर आनै।।

— ३१ —

अवतरण — कलिन्द नन्दिनी के सुरम्य तट वर्त्ती मञ्जुल निकुञ्ज भवन में श्रीयुगल किशोर ने आज की सम्पूर्ण रात दिव्य अनिर्वचनीय सुरत रस विहार में व्यतीत की है। अब प्रातः काल हो आया है। दोनों उठे से बैठे हैं परस्पर एक दूसरे के स्कन्धों पर अपनी सुकोमल भुज लताएँ अलस भाव से डाले हुए। श्रीअङ्गों के समस्त वस्त्राभूषण अस्त व्यस्त हैं सम्पूर्ण शृङ्गार विगलित है। दोनों तल्लीन हैं, एक दूसरे की मुख माधुरी का पान करने में। ऐसे कि जैसे दो चन्द्रमाओं पर चार चकोर। अतृप्ति का ओर छोर नहीं।

इसी दशा में कभी-कभी युगल किशोर मधुर स्वरों में गान करने लगते हैं और कभी भवनान्तर से निकल कर बाहर श्रीवन की ओर डगमगाते हुए चल पड़ते हैं। इस प्रातः कालीन छवि छटा को देख कर सखियों को परम आनन्द प्राप्त है। तथा स्वयं श्रीहित युगल के सुख से कितना सुख मिलता है

इसका वर्णन वे स्वयं करती हैं। इस पद में प्रेम का अन्तिम सिद्धान्त 'तत्सुख सुखित्वम्' अर्थात् 'प्रियतम के ही सुख में सुखी होना' का सजीव और जागृत चित्रण है–

देव गंधार

मूल–आजु अति राजत दंपति भोर।
सुरत रंग के रस में भींनें नागरि नवल किसोर।।
अंसनि पर भुज दियें विलोकत इंदु वदन विवि ओर।
करत पान रस मत्त परसपर लोचन तृषित चकोर।।
छूटी लटनि लाल मन करष्यौ ये याके चित चोर।
परिरंभन चुंबन मिलि गावत सुर मंदर कल घोर।।
पग डगमगत चलत बन विहरत रुचिर कुंज घन खोर।
(जै श्री) हित हरिवंश लाल ललना मिलि हियौ सिरावत मोर।।३१।।

भावार्थ– आज प्रातः काल युगल किशोर दम्पति अत्यधिक शोभा पा रहे हैं। नागरी श्रीप्रिया और नवल किशोर श्रीलाल जी दोनों ही सुरतानन्द के रस में सराबोर हैं। दोनों परस्पर (एक दूसरे के) स्कन्धों पर अपनी अपनी भुजा दिये (अर्पित किये) एक दूसरे की मुख माधुरी का ऐसे पान कर रहे हैं जैसे प्यासे लोचन चकोर। श्रीप्रियाजी की विखरी हुई केश लटों ने श्रीलालजी का मन अपनी ओर आकर्षित कर रखा है, तो वे भी उनके चित चोर बन गये हैं। आलिङ्गन एवं चुम्बन पूर्वक कभी तो मन्द मन्द स्वर में कभी उच्च स्वर में दोनों मिले मधुर गान करने लग जाते हैं।

पश्चात् डगमगाते हुए चरणों से कभी श्रीवन की कुञ्जों, उपवनों और सघन गलियों में विचरण करने लगते हैं। श्रीहित हरिवंश चन्द्र (महाप्रभु) कहते हैं कि इस प्रकार श्रीलाल ललना (युगल किशोर) मिलकर मेरे हृदय को शीतल कर रहे हैं–शान्ति और सुख प्रदान कर रहे हैं।

टिप्पणी– 'हियौ सिरावत मोर'

युगल किशोर के सुख विहार से श्रीहित सखी किंवा अन्यान्य सखियों को सुख मिलता है, यही इस विहार की अपनी विशेषता है कि यहाँ भोजन एक

करता और दूसरे को तृप्ति मिलती–पुष्टि मिलती है। इसका कारण यह है कि समस्त परिकर ने अपना सुख उनके (युगल किशोर) के सुख में मिला दिया है। वे तत्सुख सुखित्वम् के सूत्र में ओत प्रोत हैं। यह तत्सुख के चिन्तन और धारण की भावना ही प्रेमी और प्रेम की सर्वोच्च स्थिति है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि जब तक प्रेमी साधक में स्वसुख वासना की गन्ध भी है तब तक वह प्रेमी नहीं, वह प्रेम के धोखे मोह को बटोर रहा है।

शृङ्गार रस के क्षेत्र में जहाँ नायक एवं नायिका अपना अपना सुख चाहते और एक दूसरे को सूख देने के नाम से सुख लूटते हैं वहीं पर युगल किशोर किंवा सहचरि गण अपनी समस्त भावना एवं क्रिया से एक दूसरे के सुखी करने में तल्लीन पाये जाते हैं। देखिये श्रीहिताचार्य्य पाद इसका सङ्केत किस प्रकार कर रहे हैं।

श्रीलालजी सुरत विहार के मध्य काल में श्रम जल पूर्ण स्वामिनि को थकित श्रमित जान कर अपना सुख विस्मरण करके उनके सुख के लिये कह रहे हैं–

'विरमि विरमि' नाथ वदत वर विहार री।

इससे बढ़कर तत्सुखित्व परायणता का कोई दूसरा उदाहरण कभी और कहीं भी न मिल सकेगा। इसी प्रकार सखियाँ भी कितनी तत्सुख परायणा हैं, कितनी निर्मत्सर हैं ? देखिये–

जैश्री हित हरिवंश रसिक ललितादिक,
लता भवन रंधनि अवलोकत।
अनुपम सुख भर भरित विवस असु
आनँद वारि कंठ दृग रोकत।।

युगल की केलि का दर्शन करके ईर्ष्या और स्वसुख विलास की वासना का लेश भी नहीं है वरं अनुपम सुख का प्रवाह बढ़ रहा है जिसमें बहते हुए प्राण और आनन्द वारि को विवश किया जा रहा है रोका जा रहा है।

व्रज लीला एवं व्रज रस में चन्द्रावली, ललिता एवं विशाखा आदि सखियों के अनेकों प्रसङ्ग हैं जिनमें श्रीराधा के प्रति कटाक्ष, द्वेष और मत्सरता के भाव

पाये जाते हैं। बहुनायक श्रीकृष्ण को बहुत कुछ कहा समझा जाता है चूँकि ये सभी भाव जगत् से परे और उस प्रेम राज्य के ही हैं, फिर भी अत्युज्वल नित्य विहार और सर्वोपरि तत्सुखित्व से तो निम्न स्तर में ही हैं। तभी तो श्रीव्यास जी ने कह दिया—

नवधा लौं सब भक्ति उबीटी, रति भागौत कथा की।
रहनि कहनि सबहिनु तें न्यारी 'व्यास' अनन्य सभी की।।

इस नित्य विहार परायण अनन्य सभा की 'रहनि कहनि' की यही प्रथकता है कि वह पूर्ण तत्सुख परायण है।

— ३२ —

अवतरण— प्रेम धाम श्रीवृन्दावन की अभिराम कुञ्ज के अन्तर्भाग में एक सुन्दर पुष्प पर्य्यङ्क बिछी हुई है। उस पर रसिक युगल किशोर पौढ़े हुए हैं और हास परिहास, वक्र अवलोकन, कच कुच स्पर्श, एवं आलिङ्गन आदि क्रीड़ाओं का सुख आस्वादन कर रहे हैं।

समस्त वृन्दावन पुष्पों से सज सा रहा है। आकाश में चन्द्र देव क्रमशः ऊपर की ओर उठते हुए अपनी अमृतमयी शारदीय किरण मालाओं के हार—मृदु मृदु हार श्रीवन को अर्पित करते जाते हैं। शीतल पवन अपनी मन्द गति से सुगन्ध का प्रसार सा कर रहा है। ऐसे सुखमय अवसर राका रजनी में युगल किशोर अपने विशद विहार अनिर्वचनीय रस क्रीड़ा में संलग्न हैं, जिसका वर्णन श्रीहित सखीजी अपनी निकट वर्त्ती सहेली—ललितादिकों से कर रही हैं—

देव गंधार

मूल— **आजु बन क्रीड़त स्यामा स्याम।।**
सुभग बनी निसि सरद चाँदनी,
रुचिर कुंज अभिराम।।
खंडत अधर करत परिरंभन,
ऐंचत जघन दुकूल।

उर नख पात तिरीछी चितवन,
दंपति रस सम तूल।।
वे भुज पीन पयोधर परसत,
वाम दृशा पिय हार।
वसननि पीक अलक आकरषत,
समर श्रमित सत मार।।
पलु पलु प्रवल चौंप रस लंपट,
अति सुंदर सुकुमार।
(जै श्री) हित हरिवंश आजु तृन टूटत
हौं बलि विसद विहार।।३२।।

भावार्थ—आज वन (श्रीवृन्दावन) में श्यामा श्याम क्रीड़ा कर रहे हैं। शरद की बड़ी सुन्दर चाँदनी पूर्ण रात्रि है और वैसी ही रुचिर अभिराम कुञ्ज है। (उस कुञ्ज भवन के खिलाड़ी श्रीराधा मोहन) युगल (दम्पति) रस विलास में समतुल्य हैं (कोई किसी से किसी बात में कम नहीं है।) परस्पर एक दूसरे के अधरों का चुम्बन, खण्डन, करते श्रीवपु का परिरम्भण (आलिङ्गन) करते और जघन भाग से (प्रियतम प्रियतमा का) दुकूल खींचते हैं; पश्चात् फिर भी उर (उरोजों) पर नखाघात करते एवं कटाक्ष पूर्ण नयनों से विलास पूर्वक अवलोकन करते हैं। जब कभी प्रियतम (अपनी प्रिया के) वाहु मूल और पुष्ट पयोधरों का स्पर्श करने लगते हैं तब श्रीप्रिया जी अपनी निगाहों से तिरछा अवलोकन करती हुई उनके हार का—उर स्थित हारावली के बहाने हृदय देश का स्पर्श करने लगती हैं। फिर कभी वस्त्रों में (ताम्बूल) पीक लगा देते, कभी ललित अलकों का ही आकर्षण करने लगते हैं और फिर शत शत स्मर व्यथा से उत्तप्त होकर रति विहार युद्ध से थकित हो रहते हैं किन्तु फिर भी अत्यन्त सुन्दर सुकुमार युगल रस लम्पट किशोर के मनों में रस विलास की चौंप प्रति पल प्रवल ही होती रहती है।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं कि आज विहार अत्यन्त विशद है जिस पर त्रण टूटते हैं अर्थात् जिस पर समस्त परिकर न्यौछावर है मैं भी उर वलिहार हूँ।

पाये जाते हैं। बहुनायक श्रीकृष्ण को बहुत कुछ कहा समझा जाता है चूँकि ये सभी भाव जगत् से परे और उस प्रेम राज्य के ही हैं, फिर भी अत्युज्वल नित्य विहार और सर्वोपरि तत्सुखित्व से तो निम्न स्तर में ही हैं। तभी तो श्रीव्यास जी ने कह दिया–

नवधा लौं सब भक्ति उबीटी, रति भागौत कथा की।
रहनि कहनि सबहिनु तें न्यारी 'व्यास' अनन्य सभी की।।

इस नित्य विहार परायण अनन्य सभा की 'रहनि कहनि' की यही प्रथकता है कि वह पूर्ण तत्सुख परायण है।

– ३२ –

अवतरण– प्रेम धाम श्रीवृन्दावन की अभिराम कुञ्ज के अन्तर्भाग में एक सुन्दर पुष्प पर्य्यङ्क बिछी हुई है। उस पर रसिक युगल किशोर पौढ़े हुए हैं और हास परिहास, वक्र अवलोकन, कच कुच स्पर्श, एवं आलिङ्गन आदि क्रीड़ाओं का सुख आस्वादन कर रहे हैं।

समस्त वृन्दावन पुष्पों से सज सा रहा है। आकाश में चन्द्र देव क्रमशः ऊपर की ओर उठते हुए अपनी अमृतमयी शारदीय किरण मालाओं के हार–मृदु मृदु हार श्रीवन को अर्पित करते जाते हैं। शीतल पवन अपनी मन्द गति से सुगन्ध का प्रसार सा कर रहा है। ऐसे सुखमय अवसर राका रजनी में युगल किशोर अपने विशद विहार अनिर्वचनीय रस क्रीड़ा में संलग्न हैं, जिसका वर्णन श्रीहित सखीजी अपनी निकट वर्त्ती सहेली–ललितादिकों से कर रही हैं–

देव गंधार

मूल– **आजु बन क्रीड़त स्यामा स्याम।।**
सुभग बनी निसि सरद चाँदनी,
रुचिर कुंज अभिराम।।
खंडत अधर करत परिरंभन,
ऐंचत जघन दुकूल।

टिप्पणी—इस पद की वर्णना अन्य पदों से कुछ विलक्षण है। इस वर्णन में आदि से अन्त तक नायक एवं नायिका सर्वथा अनुकूल हैं और उस अनुकूलता में भी विलास की रमणीयता, सरसता एवं प्रियता की पराकाष्ठा हैं। जो लोग "नेति नेति वचनामृत" और "गौर श्याम भुज कलह मनोहर" में ही रस विशेष की सिद्धि मानते हैं वे—

ये भुज पीन पयोधर परसत वाम दृशा पिय हार।'

की झाँकी का अनुभव करें अपने भाव पूर्ण हृदय में। कितनी रस मयी है इसकी कल्पना ?

— ३३ —

अवतरण— आज प्रातः काल श्रीनन्द नन्दन एवं वृषभानु नन्दिनी उनींदे ही उठ पड़े हैं और निकुञ्ज के अन्तर्भाग में डगमगाते चरणों से प्रेम विक्षिप्त की सी दशा में किंवा सुरतालस पूर्ण खुमारी में डूबे वहीं भ्रमण कर रहे हैं। युगल की इस दशा का दर्शन—अवलोकन करके श्रीहित सजनी अपनी सखियों से उसका वर्णन कर रही हैं—

देव गंधार

मूल— आजु बन राजत जुगल किसोर।
नंद नँदन वृषभानु नंदिनी उठे उनींदे भोर।।
डगमगात पग परत सिथिल गति परसत नख ससि छोर।
दसन बसन खंडित मषि मंडित गंड तिलक कछु थोर।।
दुरत न कच करजनि के रोकें अरुन नैन अलि चोर।
(जै श्री) हित हरिवंश सँभार न तन मन सुरत समुद्र झकोर।।३३।।

भावार्थ— आज श्रीवृन्दावन में युगल किशोर यों शोभा पा रहे हैं कि नन्द नन्दन एवं श्रीवृषभानु नन्दिनी प्रातः काल ही उनींदे उठ पड़े हैं—रात्रि में पूरी तरह सो भी नहीं पाये (क्योंकि रति विहार के आनन्द ने मानों उन्हें सोने को कोई समय ही न दिया !) अतः चलते समय उनके चरण डगमगाते हैं और (गमन) गति भी शिथिल है। चलते हुए दोनों एक दूसरे को वसनाञ्चलों का—पट

छोरों का अपने अपने नख चन्द्र से स्पर्श करते (–एवं आकर्षण करते हैं।) अधर क्षत विक्षत हैं, गण्ड मण्डल कज्जल से मण्डित है। ललाट पटल पर तिलक कुछ थोड़ा सा ही अवशेष रह गया है। अरुण नयन, जो चोर अलि–भ्रमर ही हैं केश राशि एवं उँगलियों के द्वारा छिपाये जाने पर भी नहीं छिपते –गोप्य रस पूर्ण रति विहार का प्रकाश किये ही दे रहे हैं।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि सुरत समुद्र की झकझोर के कारण (आज दोनों को अपने अपने) तन एवं मन की भी सँभाल नहीं रह गयी है, (ऐसे रस मग्न हो रहे हैं !)

– ३४ –

अवतरण – श्रीवृन्दावन में विचरण करते हुए युगल किशोर कभी एक कुञ्ज से निकल कर दूसरी में प्रवेश करते हैं कभी एक गली से होकर दूसरी में जाते हैं। कभी–कभी अत्यन्त सङ्कीर्ण लता विटपाच्छादित कुञ्जों से होकर निकलते समय पट वस्त्रों के उलझने की पूर्ण आशङ्का होने पर भी वे नहीं उलझ पाते कुछ कुशल कला से निष्क्रमण कर जाते हैं। गलवहिंया देकर चलते हैं तो सही पर दो हैं ऐसा भी प्रतीत नहीं हो पाता।

वन विहार के उपरान्त रात्रि को सुख मय सुरत विहार की क्रीड़ा का आनन्द वितरण करते हैं और इससे समस्त सहचरि समाज को किसी अनिर्वचनीय सुख में मानो डुबा देते हैं किंवा केलि वारिधि की अमृत लहरियों से भिंगा देते हैं।

इसी वन विहार एवं रसमय सुरत विहार सुख का साङ्केतिक वर्णन श्रीहिताचार्य्य चरण अपने स्वस्वरूप (सखी भाव) के अनुसन्धान पूर्वक इस प्रकार करते हैं–

देव गंधार

मूल– बन की कुंजनि कुंजनि डोलनि।
निकसत निपट साँकरी बीथिनु,
परसत नाँहि निचोलनि।।

प्रात काल रजनी सब जागे,
सूचत सुख दृग लोलनि।
आलसवंत अरुन अति व्याकुल,
कछु उपजत गति गोलनि।।
निर्त्तनि भृकुटि वदन अंबुज मृदु,
सरस हास मधु बोलनि।
अति आसक्त लाल अलि लंपट,
बस कीने बिनु मोलनि।।
विलुलित सिथिल स्याम छूटी लट,
राजत रुचिर कपोलनि।
रति विपरित चुंबन आलिंगन,
चिबुक चारु टक टोलनि।।
कबहुँ श्रमित किसलय सिज्या पर,
मुख अंचल झकझोलनि।
दिन हरिवंश दासि हिय सींचत,
वारिधि केलि कलोलनि।।३४।।

भावार्थ – अहह ! कितना विलक्षण है युगल किशोर का वन की कुञ्जों कुञ्जों का विहरण ? यद्यपि अत्यन्त सङ्कीर्ण (लता सघन) गलियों से होकर निकलते हैं फिर दोनों के निचोल वस्त्रों का लताओं से स्पर्श तक नहीं हो पाता (ऐसे एकमेक हो जाते हैं परस्पर में सँट कर चलते हुए।) आज दोनों सारी रात जागते ही रहे हैं जिसकी सूचना अब प्रात: काल इनके लोल लोल लोचनों से प्राप्त हो रही है जो दृग आलस्य मय, अरुन और अति व्याकुल हैं और नेत्र गोलक भी किञ्चित किञ्चत् गति उत्पन्न करते हैं, नेत्रों की पलकें शिथिल हैं– भार से झँपी हुई हैं। भृकुटियों में नर्त्तन है और वदन कमल में सरस हास के साथ हैं मधुर मधुर वचन। अत: सिद्ध है कि अत्यन्त आसक्त एवं लम्पट भ्रमर श्रीलालजी को श्रीप्रियाजी ने विना मोल के ही वश में कर रखा है– अपना वशवर्त्ती कर रखा है। रुचिर कपोलों पर विखरी हुई काली शिथिल केश माला शोभा पा रही है।

कभी विपरीत रति का विलास है, तो कभी चुम्बन, तो कभी आलिङ्गन ही और कभी चारु चिबुक का प्रेम पूर्ण उचकाव ही कभी कभी युगल किशोर रति विहार से श्रमित होकर किशलय शय्या पर पौढ़ ही जाते हैं और परस्पर में एक दूसरे के वदन पर अपने अपने वसनाञ्चलों से झकझोलन करने लगते वयार डुलाने लगते हैं। इस प्रकार दिन प्रति–निरन्तर 'हरिवंश दासी' के हृदय को अपने केलि वारिधि की लहरियों से सींचते ही रहते हैं।

– ३५ –

अवतरण – नव नव प्रभा मण्डित श्रीवृन्दावन धाम है। प्रातः काल का पुनीत समय है। साँवन की सुहावनी ऋतु है। सर्वत्र श्रीवन में हिण्डोल पड़े हैं। रस सने युगल किशोर मन चाहे हिण्डोलों में चढ़कर झूलते हैं। कभी वन हिण्डोल से झूलते हैं, तो कभी रति हिण्डोल से। श्रम से जनित चिह्न श्रीमुख पर प्रकट हो आते है जो रात्रि के विहार हिण्डोल की मानो सूचना सी देते हैं।

अस्तु; श्रीहित सखीजी अपनी अन्तरङ्ग सखियाँ ललिता विशाखा आदि के साथ इस हिण्डोल विहार का सुख दर्शन करतीं और आनन्द में भर कर रस विहार की प्रशंसा करती हुई कहती हैं–

देव गंधार

मूल–झूलत दोऊ नवल किसोर।
रजनी जनित रंग सुख सुचत अंग अंग उठि भोर।।
अति अनुराग भरे मिलि गावत सुर मंदर कल घोर।
बीच बीच प्रीतम चित चोरति प्रिया नैंन की कोर।।
अबला अति सुकुमारि डरत मन वर हिंडोर झँकोर।
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागति दै नव उरज अँकोर।।
अरुझी विमल माल कंकन सौं कुंडल सौं कच डोर।
वेपथ जुत क्यौं बनै विवेचत आनँद बढ्यौ न थोर।।
निरखि निरखि फूलतिं ललितादिक विवि मुख चंद चकोर।
दै असीस हरिवंश प्रसंसत करि अंचल की छोर।।३५।।

भावार्थ–(आज) दोनों नवल किशोर (हिण्डोल) झूल रहे हैं। उठने पर प्रात: काल अङ्ग–अङ्ग से रात्रि जनित आनन्द सुख की व्यञ्जना–सूचना सी हो रही है। दोनों अत्यन्त अनुराग से भरे हुए कभी मंद मधुर तो कभी तार(उच्च) मधुर स्वर में गान करते हैं। बीच बीच में श्रीप्रियाजी अपने नयन कोरों से प्रियतम के चित्त की चोरी भी करती जाती हैं। श्रेष्ठ हिण्डोल की लम्बी झकोरों (झूलों) से अत्यन्त सुकुमारी अबला श्रीराधा का मन डर जाता है तब वे बार–बार रोमाञ्चित हो होकर और मानो अपने नव उरोजों की भेंट (अँकोर) सी देकर प्रियतम के हृदय से डर के मारे चिपट–लिपट जाती हैं। तरल हिण्डोल की झूलों में प्रियतम के उर की विमल माल प्रिया के कङ्कण से और प्रिया की कच डोर प्रियतम के कुण्डलों से उलझ गये। उलझ तो गये पर अब तरल हिण्डोल में यह उलझन सुलझायी कैसे जा सकती है ? इस उलझन में थोड़ा नहीं अपितु अत्यधिक आनन्द बढ़ा।

हिण्डोल पर शोभित नवल युगल किशोर के पारस्परिक युगल चन्द्रमुख और युगल क्यों चतु: चारु चकोरों को देख–देखकर ललिता आदि सखियाँ प्रसन्न हो रही हैं और 'हरिवंश' भी (वलिहार भाव से) सम्मुख अञ्चल तटी करके युगल को आशीष देते और प्रशंसा कर रहे हैं।

– ३६ –

अवतरण – यमुना के परम पावन पुलिन पर आज रसिक शेखर श्रीलालजी ने रास रस की सरस आयोजना की है। उस रास में किशोरी श्रीराधा के सहित समस्त सहचरियाँ नृत्य गान एवं वाद्य में समान रूप से भाग ले रही हैं। यदि नृत्य परायण हैं, तो कोई उच्च स्वर से गान होकर रही हैं और कोई वाद्य वादन प्रवीण सखियाँ बाजे ही बजा रही हैं। समस्त युवति मण्डल के बीच विराजमान (मध्यवर्त्ती) श्रीलालजी अपने सुललित कण्ठ से सारङ्ग राग आलाप रहे हैं और श्रीवृषभानु किशोरी उसी राग के अनुसार सुधङ्ग नामक नृत्य गति का प्रदर्शन कर रही हैं। इस अलौकिक आनन्द को देख कर सुर नायक–इन्द्रराज फूल उठते हैं और पुष्प वृष्टि करने लगते है।

श्रीहित अलि जी इस शारदीय महारास का मधु मय वर्णन अपनी निज सखियों को सुना रही हैं–

सारँग

मूल–आजु बन नीकौ रास बनायौ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट मोंहन बैंनु बजायौ।।
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायौ।
जुवतिनु मंडल मध्य स्याम घन सारँग राग जमायौ।।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रससिंधु बढ़ायौ।
विविध विशद वृषभानु नंदिनी अंग सुधंग दिखायौ।।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायौ।
ताता थेई ताथेई धरत नौतन गति पति ब्रजराज रिझायौ।।
सकल उदार नृपति चूड़ामनि सुख वारिद वरषायौ।
परिरंभन चुंबन आलिंगन* उचित जुवति जन पायौ।।
वरसत कुसुम मुदित नभ नाइक इद्र निसान बजायौ।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक राधा पति जस वितान जग छायौ।।३६।।

भावार्थ–यमुना तटवर्त्ती सुन्दर एवं पवित्र पुलिन पर मोहन ने वेणु बजायी है और उन्होंने सुन्दर रास की रचना की है। रास में कङ्कण किङ्किणि एवं नूपुरों की मधुर मधुर ध्वनि को सुनकर खग मृग सभी सुख प्राप्त कर रहे हैं। युवति मण्डल के मध्य में विराजित श्याम घन ने (मुरली में) सारङ्ग राग जमाया है और उस स्वर से मिलकर बजते हुए ताल वाद्य मृदङ्ग, उपङ्ग, मुरज एवं डफ आदि रस समुद्र का विवर्द्धन कर रहे हैं।(रासोन्मत्त होकर) श्रीवृषभानु नन्दिनी जू ने अनेकों प्रकार से अपने विशद अङ्ग –सुधङ्ग का दिग्दर्शन कराया है। तथा उन अभिनय निपुण (श्रीप्रियाजी) ने लटक के साथ, ललित लोचनों को

---

*'आलिङ्गन' और 'परिरम्भन'–चूँकि ये दोनों ही शब्द एक सा अर्थ रखते हैं तथापि यहाँ दोनों का प्रयोग विशेष विशेष अर्थों में किया गया है अर्थात् आलिङ्गन से साधारण भाव पूर्वक भेंट का अर्थ लेना चाहिये और परिरम्भण से अत्यन्त गाढ़ प्रीति के आलिङ्गन–भेंट से।

फेरते हुए अपनी भृकुटियों के नर्त्तन से कामदेव को भी नचा दिया— (लज्जित करके थकित कर दिया।) साथ साथ तत्ता थेई, ता थेई' इन रास नृत्य सञ्चालक शब्दों के उच्चारण पूर्वक नृत्य की नव नव गतियों को लेती हुई प्रियतम ब्रजराज किशोर को भी उन्होंने रिझा लिया, तब समस्त उदार नृपतियों के भी चूड़ामणि (श्रीलालजी) ने सुख वारिद की मानो वृष्टि सी कर दी। वह क्या वृष्टि की ? यह कि उन्होंने अपने प्रेम भाव का दान—आलिङ्गन, चुम्बन,; एवं परिरम्भण यथोचित रूप से समस्त युवति वर्ग को दिया किंवा उन युवतियों ने प्राप्त किया।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि इस आनन्द को देखकर नभ नायक इन्द्र राज पुष्प वृष्टि करते हुए दुन्दुभि बजा रहे हैं। इस प्रकार रसिक श्रीकृष्ण राधापति एवं श्रीराधा का यश वितान समस्त जगत् (विश्व) में छा गया।

टिप्पणी—आलिंगन चुंबन परिरंभन उचित जुवति जन पायौ —

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु के रस सिद्धान्त के अनुसार श्रीराधा नवल किशोरी ही एकमात्र प्रियतमा हैं श्रीलालजी की; अन्य नहीं। ये नित्य विहारी श्रीराधा के अनुकूल एवं स्वाधीन पति हैं, बहुनायक नहीं। परिकर की अन्य सखियाँ दासियाँ हैं जो श्रीलालजी में प्रियतम भाव रखती हुईं सेवा की ही मात्र अधिकारिणि हैं। वे रस विलास साहायिका अवश्य हैं पर भोग्य—भोक्ता सम्बन्ध तो केवल युगल किशोर तक ही सीमित है। युगल के मिलन, भोग एवं समस्त सुखों का आयोजन करना ही सखियों का पूर्ण सुख है, क्योंकि सखियाँ पूर्णतया तत्सुखित्व भाव की प्रति मूर्त्ति हैं।

किन्तु आज महारास के सुखोत्सव में सखियों ने रसिक प्रियतम श्रीलालजी की स्वेच्छा से (अपनी आकाड्क्षा से नहीं) आलिङ्गन, चुम्बन, परिरम्भण, भ्रूकटाक्ष स्पर्श, हास आदि जाने कितने प्रकार से सुख प्राप्त किये हैं, अथवा उन्हें श्रीरसिक शेखर ने दिये हैं। श्रीकृष्ण एवं सखियों के इस दान सम्मान से उदार हृदया श्रीराधा सर्वेश्वरी स्वामिनि संतुष्ट हैं, सुखी हैं और उल्लसित हैं। वे अन्य अन्य सुरत दुःखिता नायिका की भाँति व्याकुल नहीं है। क्योंकि वे जानती हैं कि ये सखियाँ भी तो मेरा ही स्वांश रूपा हैं अतः स्वजन ही क्यों ? आत्मवत्

अभेद रूपा हैं। इसीलिये इस महादान के अवसर में श्रीहिताचार्य्य चरण ने सावधानी पूर्वक विशेषण दिया श्रीलालजी के लिये–

'सकल उदार नृपति चूड़ामनि'

अस्तु; सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीकृष्ण, उनके रास रस एवं शृङ्गार रस की लीलाओं एवं श्रीहिताचार्य्य द्वारा प्रकाशित श्रीकृष्ण रस सार में बहुत बड़ा अन्तर देखा पाया जाता है।

देखिये; श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीकृष्ण गोपियों के जार–उपपति तथा अनेक नारी नायक (बहुनायक) हैं उनका उन गोपियों के साथ रस काव्य की पद्धति के अनुसार रमण भी होता है, जो उनके अनङ्ग वर्द्धन वेणु गान को सुन कर रास में आयी हैं[१]। उन आयी हुई गोपियों के साथ श्रीकृष्ण हँसी ठिठोली, भ्रू विक्षेप, अलक स्पर्श, नखाग्र घात, हास परिहास, वाहु प्रसार (गलवाहियाँ), परिरम्भण, चुम्बन आदि नर्म क्रियाओं का व्यवहार करके उनके चित्तों में अनङ्ग उद्दीपन भी करते हैं[२]। इसी प्रकार गोपियाँ भी उनसे मिलन के समय आभिलाष भाव से मिलती हैं और रमण के प्रति जैसी चेष्टाएँ प्रियतमा की होनी चाहिये वही सब करती भी हैं। (देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय ३२ श्लोक ४,५,६,७,८ एवं स्क० १० अ०३२ श्लोक ११,१२,१३,१४।) गोपियों के आगमन के पश्चात् अन्तर्धान हो जाने के कारण वे श्रीकृष्ण को उलाहना भी

१–देखिये– एवं शशाङ्कांशु विराजिता निशाः,
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः।
सिषेव आत्मन्यवरुद्ध सौरतः
सर्वाः शरत्काव्य कथा रसाश्रयाः।।

–श्रीमद्भा० १०/३३/२६

२. देखिये– बाहुप्रसार परिरम्भ करालकोरु–
नीवीस्तनालभननर्म नखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोक हसितैर्व्रज सुन्दरीणा–
मुत्तम्भयन्नरिपतिं रमयाञ्चकार।।

–श्रीमद्भा० १०/२९/४६

देती हैं और व्यङ्ग पूर्ण वचन कहती हैं [३]। उन्हें श्रीकृष्ण की मुरली से किसी न किसी प्रकार का प्रेम मय अह अवश्य है तभी तो वे उसके प्रति व्यङ्गसा करती हुई कह देती हैं–

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्मवेणु–
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवाशिष्ट.....

–श्रीमद्भा० १०/२१/९

अर्थात् "गोपियो ! इस बाँसुरी ने जाने ऐसा कौनसा पुण्य किया है, जिससे यह गोपियों का भोग्य–दामोदर का अधरामृत स्वयं पीकर दूसरों के लिये केवल बचा खुचा ही छोड़ देती है।

अस्तु; यह हुई श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीकृष्ण के रस विलास की शैली और कथा किन्तु इससे अत्यन्त विलक्षण है श्रीहिताचार्य्य चरण का आराध्य तत्व। उनके श्रीकृष्णश्रीराधा पति, अनुकूल नायक, पति, सदा एक नारी व्रती, परम रसिक, प्रेमी, नित्य रास रस परायण, हित सुरत केलि कदम्ब विलासी, निखिल निगमागम अतर्क्य अभेद्य सकल मुनि जन अलक्ष्य और परात्पर भूमा पुरुष होकर ही प्रेम गरीब, अनन्त प्रेमी और सर्व सुलभ हैं। इन्हीं लक्षणों का प्रकाश श्रीहिताचार्य्य चरण के ग्रन्थों में यत्र तत्र सर्वत्र पाया जाता है।

तात्पर्य यह रहा कि "आलिङ्गन, चुम्बन परिरंभन उचित जुवति जन पायौ" इस पंक्ति से श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीकृष्ण का लक्षण घटित करना उचित नहीं वरं इस पंक्ति के विकास क्रम से श्रीहित तत्व श्रीकृष्ण को समझने

३–देखिये–गोपियों को अत्यन्त विरहाकुल देखकर श्रीकृष्ण उनके बीच में मुसकाते हुए प्रकट हो गये। तब वे सब गोपियाँ उनके प्रति प्रणय कोप सा प्रकट करती हुई– ईषत् कुपिता बभाषिरे–बोलीं–

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥

–श्रीमद्भा० १०/३२/१६

की चेष्टा की जाय तो और भी उत्तम होगा। यह तत्व विवेचन की दृष्टि साम्प्रदायिक दृष्टि नहीं अपितु वस्तु का सूक्ष्म विवेक है–निदर्शन है जिसे चित्त की उच्च भूमिका में ही समझा जा सकता है, जहाँ पर महात्मा व्यास, ध्रुवदास, श्रीहरिदास और विहारिन देव जी आदि महा पुरुषों ने जाकर समझा।

कुछ लोग तो इस तत्व विचार से इसलिये भी चौंक उठते हैं कि उनकी स्थूल दृष्टि में श्रीकृष्ण की अनेकता सी सिद्ध होती दिखती है, इन विचारों से; किन्तु बात ऐसी है नहीं। वरं इससे तो श्रीकृष्ण तत्व की महानता के साथ उपासना की महानता का प्रकाश मिलता है। वैसे तो श्रीकृष्ण सदा एक हैं केवल वे उपासना और भावना के ही विचार से राम, वामन, वाराह नृसिंह की भाँति, कन्हैया, पूतनारि, माखन–चोर, गोपाल, चीर–चोर, गोपीनाथ, रासविहारी,मथुरा–वासी, कंसारि, द्वारकावासी और जाने क्या क्या हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार श्रीहिताचार्य्य पाद उनके जिस अन्तरङ्ग रूप का प्रकाश करते हैं वह है–

निकुञ्ज केलि विलासी और एक मात्र श्रीराधा प्रियतम। और गोपियों के साथ उसका"आलिंगन चुंबन पायौ" आदि विलास श्रीराधा प्रियतमा की इच्छा और कौतुक मात्र है।

– ३७ –

अवतरण – प्रिया श्रीराधा मानवती हैं; अतः श्रीलालजी से विलग किसी एकान्त कुञ्ज में विराजमान हैं। मानिनि प्रिया के वियोग से व्याकुल प्रियतम उनके बिना अब जीवन धारण करने में ही असमर्थ से हो रहे हैं। उनकी वियोग वलित दशा का वर्णन श्रीहित सखी स्वामिनि श्रीराधा से कर रही हैं–मानों इस वर्णन के बहाने उन्हें प्रियतम के निकट ले चलने के लिये बाध्य कर रही हैं। श्रीहित सखी अपने प्रयास में सफल भी होती हैं और अन्त में मानिनि प्रिया का का मान छुड़ा कर प्रियतम के निकट ला देती हैं। इस पद में ऐसी ही मान जनित विषम विरह व्यथा का वर्णन किया गया है–

सारंग

मूल– चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर।
तो बिनु कुँवरि कोटि बनिता जुत,
मथत मदन की पीर।।
गदगद सुर विरहाकुल पुलकित,
स्रवत विलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभानु नंदिनी,
विलपत विपिन अधीर।।
बंसी विसिख,व्याल मालावलि,
पंचानन पिक कीर।
मलयज गरल, हुतासन मारुत,
साखा मृग रिपु चीर।।
(जै श्री) हित हरिवंश परम कोमल चित,
चपल चली पिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र कौ पंजर,
सुरत सूर रन वीर।।३७।।

भावार्थ–(हित सखी ने मानिनि प्रिया से कहा–) "हे मानिनि ! तुम कुञ्ज कुटीर क्यों नहीं चलती हो ? देखो, तो कुमारी राधे ! तुम्हारे बिना श्याम सुन्दर को मदन की बाधा–पीड़ा एक साथ मथे डाल रही है, भले ही वे कोटि कोटि अन्य नारियों (सखियों) से घिरे हैं। (तुम्हारे बिना) उनकी वाणी गद् गद् है, शरीर रोमाञ्चित है, चित्त विरहाकुल है और उनके विलोचनों से (निरन्तर) जल झर रहा है। वे अत्यन्त अधीर होकर समस्त वृन्दावन में "हे वृषभानु नन्दिनी ! कहाँ हो ? कहाँ हो ??" ऐसा विलाप करते फिर रहे हैं। (तुम्हारे विरह में उनके लिये इस समय) वंशी वाण की तरह वक्षस्थल की मालाएँ सर्प की तरह एवं कोयल कीर (की मीठी बोलियाँ) सिंह (गर्जना) की तरह जान पड़ रहे हैं। (अरी ! और तो और) शीतल चन्दन भी विष (जैसा दाहक;) शीतल वायु अग्नि और वस्त्र तो शाखा मृग के रिपु–कमाच फल की तरह दुखः दायी हो रहे हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं कि इतना सुनते ही परम कोमल चित्त श्रीराधा चपलता पूर्वक (शीघ्र) प्रियतम के समीप चल पड़ी। उन सुरत शूर वीर का आगमन सुनकर वज्र पञ्जर काम भी भय से भीत हो उठा, काँप गया।*

---

*इस पद में जैसी दशा श्रीराधा विरह में श्रीकृष्ण की वर्णित की गयी है, ऐसी ही दशा का वर्णन श्रीजयदेव कविराज ने अपने 'गीत गोविन्द' काव्य में श्रीकृष्ण विरहिणी श्रीराधा की किया है। इन दोनों वर्णनों में भावों का सामञ्जस्य है पात्र भेद से स्वयं रति वञ्चिता राधा (मानवती नहीं) अपनी दंशा का वर्णन अपनी सखी से कर रही हैं—

रिपुमिव सखी संवासोयं शिखीव हिमानिलो,
विषमिव सुधा रश्मिर्यस्मिन् दुनोति मनोगते।
हृदयमदये तास्मिन्नेवं पुनर्वलते वलात्,
कुवलय दृशां वामः कामो निकाम निरङ्कुशः।।

अर्थात् श्रीराधा ने कहा—"हे सखि ! यह लता भवन का निवास इस समय तो वैरी जैसा लग रहा है, शीतल वायु भी अग्नि ज्वाला की तरह हो गया है और ये सुधामयी चन्द्र किरणें भी तो विष जैसी मन के लिये दु:ख दायी हो रही हैं ! तिस पर फिर यह निर्दय हृदय हीन निरङ्कुश काम अकारण ही हमारा वाम—उलटा हो रहा है तथा हम कमल नयनी वाम दृशाओं का हनन कर रहा है। अरी ! इसका यह कृत्य तो मानो मरे को भी मारने जैसा निन्द्य है !"

इतना कहने के पश्चात् वे फिर अपने आप प्रलाप सा करने लगती हैं—

बाधां विधेहि मलयानिल पञ्च वाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये।
किं ते कृतान्त भगिनि क्षमया तरङ्गै—
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देह दाहः।।

गीत गोविन्द सप्तम सर्ग

अर्थात् "हे मलयानिल ! तुम अपनी बाधाओं को अवश्य ही मेरे लिये उपस्थित करो ? और हे मदन ! तुम भी अपने पाँचों वाणों को एक साथ चलाकर मेरे प्राणों को खींच लो—हरण कर लो, ताकि ये फिर से अपने भवन (इस मेरे देह) का आश्रय न कर सकें। हे कृतान्त भगिनि ! यमुने !! तुम क्यों क्षमा कर रही हो ? तुम भी अपनी शीतल वीचियों का सिञ्चन करो, जिससे शीघ्र मेरा देह दाह हो—शरीर जल उठे। अस्तु; यह श्रीकृष्ण विरहिणी राधा की दशा है।

– ३८ –

अवतरण—पुनः माननि राधा के प्रति श्रीहित सजनी का अनुरोध है। जिसमें ये श्रीलालजी की दशा का वर्णन करते हुए उनके (प्रियतम के) निकट चलने के लिये आग्रह कर रही हैं। श्रीप्रियाजी से श्रीहित सखी कहती हैं—

सारङ्ग

मूल—बेगि चलहि उठि गहरु करति कत,
निकुंज बुलावत लाल।
हा राधा राधिका पुकारत,
निरखि मदन गज ढाल।।
करत सहाइ सरद ससि मारुत,
फूटि मिली उर माल।
दुर्गम तकत समर अति कातर,
करहि न पिय प्रतिपाल।।
(जै श्री) हित हरिवंश चली अति आतुर,
श्रवन सुनत तेहि काल।
लै राखे गिरि कुच बिच सुंदर,
सुरत–सूर ब्रज बाल।।३८।।

भावार्थ– (हित सखी ने कहा–) "हे राधे ! अब शीघ्र उठ चलो, देर क्यों कर रही हो ? देखो, तुम्हें प्रियतम श्रीलालजी ने बुलाया है। वे काम रूप गजराज को अपनी ओर ढलता आता देखकर "हा राधा ! हा हा राधिके !! इस प्रकार पुकार रहे हैं। (और इस समय) शरत्कालीन चन्द्रमा शीतल पवन, तथा उनके हृदय की सदा सङ्गिनि माला भी आज विद्रोह पूर्वक (शत्रु रूप काम गज से) जा मिली है, अतएव (वे श्रीकृष्ण) युद्ध से अत्यन्त घबराकर अब किसी दुर्गम (कठिनाई से जहाँ कोई शत्रु प्रवेश पा सके) स्थल की ताक–खोज में हैं तब (हे प्यारी !) तुम चल कर अपने प्रियतम का प्रतिपाल–रक्षण क्यों नहीं करतीं ?"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं कि (सखी के मुख से) उक्त समाचार अपने कानों में पड़ते ही अत्यन्त आतुर होकर वह सुरत शूर बाला–श्रीराधा उसी

समय चल पड़ी और उसने अपने गिरि कुचों के बीच (दुर्गम स्थल में) सुन्दर (श्रीलालजी) को ले रखा है–छिपा लिया।

– ३९ –

अवतरण–किन्हीं कारणों से श्रीप्रियाजी को मान हो आया है अतः प्रियतम से विलग होकर मान कुञ्ज में आज अकेली ही आ बैठी हैं। उन्हें मना लाने के लिये श्रीलालजी ने हित सखी को दूती बनाकर भेजा है। हित सखी चतुर दूतिका है अतएव श्रीवन की शोभा वर्णन, प्रियतम गुण प्रेम, भाव वर्णन; आदि कलाओं के द्वारा मानिनि को प्रसन्न करना चाहती हैं और अन्त में प्रियतम से मिलाना चाहती हैं। इस पद में इसी लीला का वर्णन है।

अब मानिनि नायिका प्रिया श्रीराधा से हित सजनी कह रही हैं–

सारङ्ग

मूल–खेल्यौ लाल चाहत रवन।
रचि रचि अपने हाथ सँवारयौ निकुंज भवन।।
रजनी सरद मंद सौरभ सौं सीतल पवन।
तो बिनु कुँवरि काम की बेदन मेटब कवन।।
चलहि न चपल बाल मृगनैंनी तजिऽब मवन।
(जै श्री) हित हरिवंश मिलऽब प्यारे की आरति दवन।।३९।।

भावार्थ– (श्रीहित अलि ने कहा–) 'हे राधे ! लाल (तुम्हारे प्रियतम) विहार (खेल) खेलना चाहते हैं; इसलिये उन्होंने अपने हाथों निकुञ्ज भवन रचकर तैयार किया है–सम्हाला है। हे किशोरी (देखो) शरद की रात्रि है और मन्द गामी सुगन्ध युक्त शीतल पवन है फिर भला तुम्हारे बिना ऐसा कौन है जो काम की वेदना (प्रियतम के हृदय से) मिटा सके ? तब हे बाल मृगनयनि ! [तुम अपने] मौन का परित्याग करके शीघ्र ही अब क्यों नहीं चल रही हो? चलो न! अरी! प्रियतम के दुःखों का दमन करने वाली राधे ! (शीघ्र चल कर) अब् उनसे मिलो।"

– ४० –

अवतरण–पूर्व पद में दूतिका का प्रयास व्यर्थ रहा वह अपनी वचन चातुरी से नायिका को प्रसन्न नहीं कर सकी और न प्रियाजी ने उसकी कोई बात ही मानी, अतएव उसने फिर भी उक्त क्रम से अनुनय प्रारम्भ की। उसने कहा–

सारङ्ग

मूल–बैठे लाल निकुंज भवन।
रजनी रुचिर मल्लिका मुकुलित त्रिविध पवन।।
तूँ सखी काम केलि मन मोहन मदन दवन।
वृथा गहरु कत करति कृसोदरि कारन कवन।।
चपल चली तन की सुधि बिसरी सुनत श्रवन।
(जै श्री) हित हरिवंश मिले रस लंपट राधिका रवन।।४०।।

भावार्थ– (हित सखी ने फिर कहा–) "हे मानिनि ! लाल (तुम्हारी प्रतीक्षा करते हुए) निकुञ्ज भवन में बैठे हैं। (इस समय) कैसी सुन्दर रुचि दायक रात्रि है, मल्लिकाएँ खिल रही हैं और शीतल, सुगन्धित पवन धीरे धीरे बह रहा है। (ऐसे अवसर में) हे सखी ! केवल एक तू ही है जो अपनी काम केलि के द्वारा मन मोहन के मदन (ताप) का दमन (शमन) कर सकती है, तब हे कृशोदरि ! व्यर्थ विलम्ब क्यों कर रही हो? कारण क्या है?

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि अपने कानों यह सुनते ही श्रीप्रियाजी को तन सुधि का भी विस्मरण हो गया (–वे श्रीलालजी के विरह दु:ख से अत्यन्त विह्वल होकर) शीघ्रता पूर्वक चल पड़ीं तब रस लम्पट रमण श्रीलालजी श्रीराधिका से मिले।

– ४१ –

अवतरण–इस इकतालीसवें पद में प्रियतम की अपने प्रेमास्पद के प्रति एकान्त निष्ठा और द्रवित प्रेम पूर्ण हृदय की सराहना के साथ ऐसा हृदय बनाने के साधक जनों के लिये सङ्केत है। श्रीश्याम सुन्दर ही यथार्थत: प्रीति तत्व के

ज्ञाता एवं पालक हैं। वे प्रीति रीति वश अखिल ब्रह्माण्ड नायक होकर भी महा दीन हैं– 'दीनता' ही उनका अपनापन है–अस्तित्व है।

वे भोगी नहीं अपितु एकान्त वल्लभ प्रेमी हैं तभी तो कोटि कोटि कामिनियों से आवृत रहकर भी अपनी आराध्या प्राण धन श्रीराधा की ही याचना करते और उनके विना अन्य सबको नहीं जैसा अनुभव करते हैं।

श्रीलालजी की उक्त हृदय स्थिति की ओर लक्ष्य कराते हुए श्रीहिताचार्य्य चरण उपदेश करते हैं कि सत्व प्रज्ञ बुध जनो ! उस प्रेम तत्व की विलक्षणता का दर्शन अनुभव तो करो जिसने श्रीलालजी जैसे सच्चिदानन्द घन परिपूर्णतम परात्पर ब्रह्म को भी दीन बना रखा है, परवश कर दिया है; जो पूर्ण सर्व तन्त्र स्वतन्त्र था। कैसी अनोखी है वह प्रेम की मर्यादा–मैंड़?

इस 'प्रेम–मैंड़' का पहचानना ही साधक–प्रेमी उपासक की चतुरता है या नित्यानित्य वस्तु का चरम विवेक है।

अस्तु; अब उस प्रेम मैंड़ का निरूपणश्रीहिताचार्य्य पाद करते हैं–

सारङ्ग

मूल–प्रीति की रीति रँगीलोइ जानै।
जद्दपि सकल लोक चूड़ामनि दीन अपनपौ मानै।।
जमुना पुलिन निकुंज भवन में मान मानिनी ठानै।
निकट नवीन कोटि कामिनि कुल धीरज मनहिं न आनै।।
नस्वर नेह चपल मधुकर ज्यौं आँन आँन सौं बानै।
(जै श्री) हित हरिवंश चतुर सोई लालहिं छाड़ि मैंड़ पहिचानै।।४१।।

भावार्थ–प्रीति की रीति तो केवल रँगीले (प्रेमी) श्रीलालजी ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं; तभी तो वे समस्त लोकों के अधिनायक–सिर मौर होकर भी अपने आप को(प्रेम परवश) दीन (लघु) मानते हैं। जब यमुना पुलिन पर निकुञ्ज भवन में श्रीराधिका मान ठान कर मानिनि हो जाती है (या रूठ कर अन्यत्र चली जाती है तब ये अपने निकट कोटि कोटि कामिनियों के होते रहने पर भी अपने मन में धैर्य नहीं लाते, (–व्याकुल हो हो जाते हैं अपनी प्रियतमा के बिना।)

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं(किंतु उपरोक्त एक निष्ठा के विपरीत) जो प्रेम चपल भ्रमर की भाँति (क्षण क्षण में) अन्य अन्य किन्हीं से बनता (और विगड़ता भी) रहता है वह तो विनाशी है, नश्वर है।(किमधिकं प्रेम ही नहीं है।)

(अब) जो (उपासक प्रेमी) श्रीलालजी को भी छोड़ (अलग रख) कर इस (प्रेम मर्यादा) मैंड़ को पहचानता है वही चतुर है–सच्चा विवेकी है।

टिप्पणी–लालहिं छाड़ि मैंड़ पहिचानैं–

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु के द्वारा प्रकाशित उपासना मार्ग का लक्ष्य केवल परात्पर प्रेम तत्व है। प्रेम के सिवाय न प्रिया है न प्रियतम श्रीकृष्ण ही। वरं ये दोनों प्रेमी प्रेमास्पद श्रीराधावल्लभ लाल भी इस उपासना में प्रेम के दो रूपान्तरों में ही स्वीकार किये गये हैं। जैसा कि महात्मा श्रीलाड़िली दास जी ने कहा है–

गौर स्याम सीसीनु में भरयौ रंग अनुराग।

और–

नव किसोर सुकुमार तन मृदु भुज मेले अंस।
जोरी सनी सनेह रस प्रकट करी हरिवंश।।

–हित ध्रुवदास जी

अर्थात् श्रीहरिवंश ने तो स्नेह रस सनी हुई 'जोरी' श्रीराधावल्लभ लाल को प्रकट किया, अतएव इस प्रेम तत्व के यही प्रकाशक हुए। श्रीहित ध्रुवदास जी इस बात की साक्षी भर रहे हैं–

प्रकट प्रेम कौ रूप धरि, श्रीहरिवंश उदार।
राधावल्लभ लाल कौ, प्रकट कियौ रस सार।।

उक्त कथन पर से यह समझने की बात है कि इस श्रीहरिवंशोदित प्रेमोपासना में सामान्य उपासना की त्रिपुटी (उपास्य, उपासक और उपासना) का लोप होकर अन्ततः केवल एक ही वस्तु की सिद्धि होती है और वह सिद्ध तत्व है प्रेम।

हाँ; पाठक गण उपास्य और उपासना को प्रेम तत्व स्वीकार कर लेंगे पर उन्हें उपासक के प्रेम रूप स्वीकार करने में हिचक होगी किन्तु इस तत्व का प्रकाश महापुरुषों ने किस प्रकार किया है उसे भी देखिये, वे कहते हैं–

घट घट में परगट दुरयौ, विनु अकार आकार।
पूरि रह्यौ हित जगत में, सहज रूप सिंगार।।
हित माते आनँद भरे नैंन सवनि सौं चारि।
सकल जगत सौं एकता कहा पुरुष कहा नारि।।

– श्रीमोहनमत्त जी

अर्थात् 'वह प्रेम प्रगट रूप से प्रत्येक के हृदय में विना आकार प्रकार के छिपा बैठा है; इस तरह वह स्वाभाविक परम सुन्दर शृङ्गार मय बनकर समस्त विश्व में छा गया है। ये प्रेम भरे नेत्र जब किसी से मिलकर चार होते हैं, तब सबसे एकता ही करते हैं फिर चाहे वह नारी हो या पुरुष प्रेम तो अपने सूत्र से बाँध ही लेता है।'

अज्ञानवश अपना शुद्ध स्वरूप भूलकर 'जीव' जीव बन बैठा है। वैसे तो वह तद्रूप ब्रह्म है–प्रेम है। जीव के स्वरूप का प्रकाश करते हुए महात्मा श्रीलाड़िलीदास जी कहते हैं–

भोगी भोगासक्ति सौं, भूलि आपनौ रूप।
तन तन प्रति मानी भये मैं तू' जगत् स्वरूप।।
सर्व देहमय विपिन है, सर्व मनोमय लाल।
सर्व सु इन्द्री सखीगन, सर्व आत्मा बाल।।
मन भूल्यौ निजु आत्मा, इन्द्रिनु मिलि सुख लीन।
तन अभिमानी जग भयौ, काल कर्म आधीन।।
भोग रूप सब प्रिया कौ, भोगी मोहन लाल।
संधि सखी हित दुँहुनि की, मिलवत हैं सब काल।।
चिदानंद हित सूर्य लौं सकल जगत रह्यौ छाइ।
अहं बदरिया ओट में दुरयौ लह्यौ नहिं जाइ।।

–सुधर्म बोधिनी

भाव यह कि 'भोगासक्ति से ही जीव अपना शुद्ध हित रूप भूलकर भोगी बन गया और देहाभिमानी बन गया। यही 'मैं तू' रूप जगत् है। वैसे तो समष्टि देह श्रीवृन्दावन है, समस्त मन श्रीकृष्ण हैं, ऐसे ही समस्त प्राणियों की इन्द्रियाँ सखीगण हैं और समस्त अनन्त व्यापक आत्मा ही प्रिया श्रीराधा है। मन अपने आत्म स्वरूप को भूलकर इन्द्रिय सुखों में तल्लीन होकर देहाभिमानी बन गया फलत: काल और कर्मों के अधीन होना पड़ा उसे। यों तो समस्त भोगों का एक ध्यष्टि रूप श्रीप्रियाजी–राधिका हैं और भोगी हैं मोहन लाल श्रीकृष्ण। समस्त भोागों का संयोग ही सखियाँ हैं–संधि है। इस प्रकार यह चिदानन्दमय हित–प्रेम सूर्य की तरह सर्वत्र प्रकाशित है किन्तु अंहङ्कार के बादलों में ढँक जाने से स्पष्ट दीख नहीं रहा है।

अत: स्पष्ट है कि–

जो रस रीति सबनि तें दूरि।
सो सब विश्व रही भरपूरि।।

–श्री सेवकजी

सारांश यह कि उपासक भी तत्स्वरूप है किंतु भ्रमवश अपने स्वरूप में अहं का आरोप करके अपने शुद्ध स्वरूप–हित (प्रेम) से वञ्चित है। इसी अपने स्वरूप हित–प्रेम को पहचानने के लिये श्रीहिताचार्य्य चरण का सङ्केत है–आदेश है–

चतुर सोई लालहिं छाड़ि मैंड़ पहिचानै।

क्योंकि वह 'मैंड़' (मर्यादा) सिवाय प्रेम के और कुछ नहीं है।

– ४२ –

अवतरण–उक्त पद में जिस प्रेम मैंड़ के पहचानने का आदेश है इस पद में उसी प्रेम के स्वरूप का किञ्चित् विचार किया गया है–

सारङ्ग

मूल–प्रीति न काहु की कानि बिचारै।
मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै।।

ज्यौं सरिता सॉंवन जल उमगत सनमुख सिंधु सिधारै।
ज्यौं नादहि मन दियैं कुरंगनि प्रगट पारधी मारै।।
(जै श्री) हित हरिवंश हिलग सारँग ज्यौं सलभ सरीरहि जारै।
नाइक निपुन नवल मोहन बिनु कौन अपनपौ हारै।।४२।।

भावार्थ–प्रीति किसी की मर्यादा नहीं मानती। अरे ! प्रेम से विशेष विवश मन को किसी मार्ग कुमार्ग की ओर जाने से कौन निवारण कर सकता है ? श्रावण मास के जल से उमङ्गे भरती हुई नदी जैसे सीधे समुद्र की ही ओर दौड़ती है और जिस प्रकार (बहेलिये के द्वारा गाये हुए मधुर) नाद में ही मन दिये हुए कुरङ्ग (हरिन) को बहेलिया प्रत्यक्ष रूप से मार डालता है, परन्तु फिर भी इनको बहने और मरने से कोई निवृत्त नहीं कर सकता। उसी प्रकार शलभ दीपक की अटक (आसक्ति) में अपने देह को भी जला डालता है, (वह भी किसी मर्यादा को स्वीकार नहीं करता।)

श्रीहित हरिवंश चन्द्र (महाप्रभु पाद) कहते हैं कि नवल मोहन जैसे निपुण नायक (प्रेमी) के सिवाय और कौन ऐसा है जो (प्रेम में) अपना अपनापन–स्वाभिमान भी खो दे या हार जाय।

टिप्पणी–"मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै?"

प्रेमी के हृदय में जब किसी के प्रति दृढ़ आसक्ति का उदय हो जाता है तब उसके पास उचित किंवा अनुचित का प्रायः विचार विवेक नहीं रह जाता। वह अपने प्रेमास्पद के लिये प्रेम परवश जो कुछ करता है अपनी समझ में सर्वथा उचित ही करता है अतः उसे उस पथ पर से विचलित या निर्वारित करना कठिन होता है। ऐसा प्रेमी अपने प्रेमास्पद से प्रेम करके जगत् दृष्टि शास्त्र दृष्टि एवं शिष्ट दृष्टि से अनुचित समझे जाने वाले क़ार्यों को करके भी अनुचित समझता ही नहीं। अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उसके पास इस उचित अनुचित के विचारा विचार के लिये न समय है न बुद्धि और आवश्यकता ही। वह तो अपने प्रेमास्पद से इतना तल्लीन हो जाता है कि दूसरों के द्वारा कहा गया शास्त्रोक्त किंवा सामाजिक कथन उसके लिये व्यर्थ प्रलाप से अधिक कुछ नहीं है।

वह अपने जिस प्रेम पथ पर चल रहा है, उसके लिये उसका वही अपना सुपथ है। यदि इस 'प्रेम सुपथ' के सिवाय दूसरों के द्वारा इङ्गित किया हुआ अन्य कोई सुपथ है भी; तो उस प्रेमी को उस सुपथ की आवश्यकता नहीं। वह अपने एकान्त हृदय में जिस प्रेम और प्रेमास्पद को पाकर सुखी है, वे दोनों उस प्रेमी के लिये कोटि कोटि ब्रह्मानन्द से भी महान् हैं अत्युच्च हैं। तभी तो गोपियाँ श्रीकृष्ण की मधुर मुरली की तान पर और कर–स्पर्श मात्र पर कोटि–कोटि ब्रह्म सुख को न्यौछावर कर देती हैं। वे कह उठती हैं–

ज्यौं करतल आभास कै कोटिक ब्रह्म लखाय।
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगौरी लाय।।

प्रियतम सङ्ग और मिलन के समक्ष मुक्ति भुक्ति क्या वस्तु हैं ? मानों उनकी कोई गणना ही नहीं ! वे प्रेम वावली गोपियाँ कह उठती हैं–

जौं नहिं लहियै सजन तौ धूरि मुकति मुँह दीन।

तभी तो गोकुल की इन कुल बधुओं पर गुरुजनों की उचित शास्त्रोक्त शिक्षा का कोई असर ही नहीं हुआ; क्योंकि वे सभी प्रेमासक्त थीं न ! कविवर विहारीलाल ने उनका प्रेम परिचय देते हुए कहा है–

किती न गोकुल कुल बधू काहि न केहि सिख दीन।
कौन जु तजी न कुल गली, ह्वै मुरली सुरलीन।।

ठीक भी तो है। जब प्रेम देवता किसी की कानि विचारें तब न। वे तो किसी की कुछ मानते ही नहीं। अनन्तः गोकुल की कुल बधुओं ने भी वही किया, जो उनसे प्रेम ने कराया; क्योंकि वे वेचारी विवश थीं, अशक्त थीं।

इस पद में श्रावण सरिता, नाद मुग्ध हरिण एवं दीपक मुग्ध शलभ के उदाहरण मूढ़ जाति के प्रेमियों के हैं। अतएव यहाँ केवल यह समझने की आवश्यकता है कि प्रेमी विवेक शून्य होता और प्रेम पर मिटना जानता है। जिस प्रेम में लाभ हानि विचार पूर्वक प्रेम करने की प्रेरणा है वह प्रेम नहीं है केवल प्रेम की भ्रमात्मक छाया है, क्योंकि वह प्रेम किया गया है, स्वभावतया हुआ नहीं है और प्रेम तो वही है जो अपने आप प्रकट हो जाय। किसी शायर ने क्या ही अच्छा कहा है–

इश्क पर जोर नहीं यह वो आतिश 'गालिब'।
जो लगाये न लगे और बुझाये न बुझे।।

अहा ! क्या ही सुन्दर?

जो लगाये न लगे और बुझाये न बुझे।

तात्पर्य यह कि प्रेम साधन से प्राप्त नहीं होता, अपने आप प्रकट होता है और प्रकट होने के पश्चात् उसका तिरोभाव भी नहीं होता। महात्मा कबीरदासजी कहते हैं–

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देय लै जाय।।

प्रेम किसे कहते हैं ?

छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय।।

–कबीर

देवर्षि नारद भी अपने प्रेम दर्शन (भक्ति सूत्र) में कुछ ऐसा ही कह रहे हैं–

प्रकाशते क्वापि पात्रे

सूत्र ५३

अर्थात् 'यह प्रेम किसी विरले (योग्य) पात्र में ही प्रकट होता है।'

वह प्रेम प्रतिक्षण वर्द्धन शील है–

प्रतिक्षण वर्द्धमानम् सूक्ष्मतर सूक्ष्ममनुभव रूपम्।

–नारद भक्ति सूत्र ५४

अर्थात् 'यह प्रेम प्रत्येक क्षण बढ़ने वाला, सूक्ष्म से सूक्ष्म और अनुभव रूप है।'

जिस किसी भाग्यशाली के हृदय में इन प्रेम भगवान् का उदय होता है उसका हृदय उसके वश का नहीं रह जाता, वह तो सर्वथा प्रेम के अधीन हो जाता है। वह प्रेमी नाद मुग्ध मृग एवं दीपक आसक्त शलभ की तरह अपने प्रेमास्पद पर मर मिटने के लिये तत्पर रहता है प्रतिक्षण, प्रसन्नता पूर्वक। प्रियतम से एकाकार होने के पूर्व जितने क्षण जुदाई के बीतते हैं वास्तव में वही

उसके लिये मौत के क्षण है। परवाना कहता है–

शमे को फानूस में देखा तो परवाने यूँ बोले।
क्यों जलाते हो नाहक कि हमें जलने नहीं देते।।

इस जल जाने या प्रेम पर मिट जाने की बात इन प्रेमियों से ही पूछी जा सकती है कि उन्हें इस वलिदान में क्या सुख है ?

'कोई परवाने से पूछे कि जलने में मजा क्या है ?'

बस, यही उत्सर्ग ही प्रेमियों का जीवन है। इस प्रेम का गन्तव्य लक्ष्य है द्वैत की सृष्टि मिटाकर प्रियतम से एक हो जाना। इस प्रेम के अद्वैत पद तक पहुँचने के लिये प्रेमी सब कुछ कर सकता है। लोक और वेद की सुदृढ़ बेड़ियों को वह सरलता पूर्वक तड़ातड़ तोड़ फेंकता है तब उसके मार्ग का कण्टक कोई भी नहीं बन सकता। वह पूर्ण निष्कण्टक निरङ्कुश बनकर जिस मार्ग से चल पड़ता है वही उसका सुपथ होता है। ऐसे ही दीवाने आशिक के लिये रसज्ञ जन मुग्ध कण्ठ से सराहना कर उठते हैं–

कोई न पहुँचा वहाँ तक आसिक नाम अनेक।
इश्क चमन के बीच में आया मँजनू एक।।

–श्रीनागरीदासजी

और ऐसा आशिक ताज मँजनू ही परवर दिगार अल्लाह से कह भी सकता है कि यदि हुजूर को जरूरत थी कि कैश (मँजनू) हुजूर के कदमों से मुहब्बत करे तो हुजूरे आलम लैला बनकर इस दीवाने के सामने क्यों न आ गये ? ख़ता मुआफ हों इसने तो अपना सब उसी एक माहरू पर निसार कर दिया है।

धन्य है प्रेम देव ! तेरी दीवानगी !!

सचमुच कोई तेरा मार्ग नहीं रोक सकता। तभी तो तुमने अखिल लोक चूड़ामणि निपुण नायक नवल मोहन के स्वाभिमान–अपनपै को किसी के चरणों में चढ़ा देने के लिये वाध्य कर दिया !

अस्तु; प्रेम तो प्रेम है। उसमें ईश्वरीय और मानवीय (हकीकी और मजाजी) का भेद व्यर्थ और बुद्धि कृत है। तभी तो इसमें चलने वाले के लिये

'मार्ग–अपमार्ग' का भेद उठाकर श्रीहिताचार्य्य पाद प्रेमी का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

– ४३ –

अवतरण—मानवती श्रीप्रियाजी को मना कर ले आने के लिये श्रीलालजी अपनी निज सखी हित सजनी दूतिका से चिरौरी कर रहे हैं। किसी कारण वश आज पुनः श्रीप्रियाजी रूठ गयी हैं; इसलिये प्रियतम उनके वियोग में अत्यन्त व्याकुल हैं। प्रियतम सखी को अपनी प्रियतमा के समीप भेज रहे हैं; क्योंकि उन्हें अच्छी तरह विदित है कि भले ही वे इस समय मान किये बैठी हैं पर उनका स्वभाव कोमल है, वे भोली हैं। यही बात उन्होंने दूतिका को समझायी है। श्रीलालजी इस पद में दूतिका से कह रहे हैं–

सारङ्ग

मूल—अति नागरि वृषभानु किसोरी।
सुनि दूतिका चपल मृगनैंनी, आकरषत चितवत चित गोरी।।
श्रीफ़ल उरज कंचन सी देही, कटि केहरि गुन सिंधु झकोरी।
बैंनी भुजंग चंद्र सत वदनी, कदलि जंघ जलचर गति चोरी।।
सुनि 'हरिवंश' आजु रजनी मुख, बन मिलाइ मेरी निज जोरी।
जद्दपि मान समेत भामिनी, सुनि कत रहत भली जिय भोरी।।४३।।

भावार्थ— (श्रीलालजी ने कहा—)"हे दूतिके ! सुन; वृषभानु किशोरी अत्यन्त चतुर है; जब वह चपल मृगलोचनि गोरी अपने मनोहर नेत्रों से अवलोकन करती है तो मानो उसी क्षण—देखते ही चित्त का आकर्षण कर लेती है। उस नागरी की देह प्रभा स्वर्ण की सी है तथा उरोज हैं श्रीफल की भाँति। कटि सिंह जैसी है और (उसमें इतने गुण हैं) मानो वह गुण रूप समुद्र में अच्छी तरह सराबोर की हुई है। उस शत शत चन्द्र जैसे मुखमयी—शत मयङ्क मुखी वेणी क्या है; मानो भुजङ्ग ! (चिकनी—चिकनी) कदली जैसी जङ्घाएँ है और चरणों में ऐसी गति है मानो उसने जलचर—हंस की चाल ही छीन ली है।"

हे हरिवंश दूतिके ! (ध्यान पूर्वक) सुन ! आज संध्या समय मेरी अपनी जोड़ी (अत्यन्त अन्तरङ्ग प्रिया आत्म स्वरूपा श्रीराधा) को वन में अवश्य ही

मिला। यद्यपि वह भामिनि मानवती है फिर भी वह (अपने स्वभाव से) भली और भोली है। (तेरे द्वारा मेरा निवेदन) सुन कर भी भला वह वहाँ कैसे बैठी रह सकती है ? अवश्य आ मिलेगी।"

– ४४ –

अवतरण–श्रीलालजी के उक्त सन्देश को लेकर दूती नायिका श्रीराधा के समीप गयी और नायिका के रूप, गुण, यौवन, स्वभाव आदि की प्रशंसा करती हुई उसे नायक के समीप चलने के लिये प्रोत्साहित करने लगी। दूतिका–श्रीहित सजनी ने मानिनि नायिका श्रीप्रियाजी से कहा–

सारङ्ग

मूल– **चलि सुंदरि बोली वृंदावन।**
कामिनि कंठ लागि किन राजहि,
तूँ दामिनि मोंहन नौतन घन।।
कंचुकी सुरंग विविध रँग सारी,
नख जुग ऊन बने तरे तन।
ये सब उचित नवल मोंहन कौं,
श्रीफल कुच जोवन आगम धन।।
अतिसै प्रीति हुती अंतरगत,
(जैश्री) हित हरिवंश चली मुकुलित मन।
निविड़ निकुंज मिले रस सागर,
जीते सत रति राज सुरत रन।।४४।।

भावार्थ–(दूतिका ने श्रीप्रियाजी से कहा–)"हे सुन्दरि ! चलो !! तुम्हें (प्रियतम ने) वृंदावन में बुलाया है। हे कामिनि ! तुम तो हो दामिनि जैसी और मोहन नूतन घन की भाँति। तब फिर तुम उनके कण्ठ में (घन में दामिनि की भाँति) लग कर क्यों नहीं शोभित होतीं ? हे प्यारी ! तुम्हारे तन पर जो यह सुरङ्ग कञ्चुकि, विविध रँगमयी साड़ी और सोलह शृङ्गार शोभित हैं तथा श्रीफल जैसे कुच मण्डल नवीन यौवन रूप धन, यह सभी कुछ नवल मोहन के ही लिये तो उचित है !"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं कि (श्रीप्रियाजी के) हृदय में (श्रीलालजी के लिये) अत्यन्त प्रीति थी; इसलिये प्रसन्न मन होकर (प्रियतम के निकट) चल पड़ी और दोनों रस सागर, सघन निकुञ्ज भवन में मिले; पश्चात् उन्होंने सुरत युद्ध में शत शत काम देवों को जीत लिया।

टिप्पणी–

'नख जुग ऊन बने तेरे तन'

हाथ और पावों के क्रम से दस, दस के योग से सम्पूर्ण नखों की संख्या बीस है।-हाथों के नखों जुग ऊन अर्थात् दो कम कर देने से हाथ के आठ नख और इसी प्रकार पैर के दस नखों में से जुग (=दो) ऊन (=कम) कर देने पर आठ पैर के नख हुए इस तरह गणना सोलह (आठ+आठ) रही। "यही सोलह हे राधे तेरे तन पर शोभित हैं।" यह कहने का भाव है कि तू सोलह श‍ृङ्गारों से युक्त है। इन सोलह श‍ृङ्गारों का परिचय इस प्रकार है–

प्रथम सकल सुचि, मज्जन, अमल वास,
जावक सुदेश, केश पाश कौ सुधारिवौ।
अंग राग, भूषन विविध, मुख बास, राग;
कज्जल कलित, लोल लोचन निहारिवौ।।
बोलनि, हँसनि, चित चातुरी, चलनि चारु;
पल पल प्रति पतिव्रत प्रति पारिवौ।
'केसौदास' सविलास कहत प्रवीन राय;
यहि विधि सोरह सिंगारहू सिंगारिवौ।।

–केशवदास जी

– ४५ –

अवतरण–निभृत निकुञ्ज भवन से निकल कर रसिक किशोर किशोरी ललित गल बहियाँ दिये मन्द मधुर गति से सखियों की ओर चले आ रहे हैं। साथ में ललिता आदि प्रवीण सखियाँ शोभा पा रही हैं; जिन्होंने इस युगल को नवीन नवीन दिव्य आभूषणों से अच्छी प्रकार सुसज्जित किया है। दर्शन करने

वाली सखियाँ युगल की मनोहर शृङ्गार पूर्ण छवि का दर्शन करके मुग्ध हो जाती है। तभी श्रीहित सखीजी अन्यान्य सखियों से श्रीप्रियाजी की उक्त दर्शनीय छवि का वर्णन करती हुई, कहती हैं–

सारङ्ग

मूल–आवति श्रीवृषभानु दुलारी।
रूप रासि अति चतुर सिरोमनि अंग अंग सुकुमारी।।
प्रथम उबटि मज्जन करि सज्जित नील बरन तन सारी।
गुंथित अलक तिलक कृत सुंदर सैंदुर माँग सँवारी।।
मृगज समान नैंन अंजन जुत रुचिर रेख अनुसारी।
जटित लवंग ललित नासा पर दसनावलि कृत कारी।।
श्रीफल उरज कँसूभी कंचुकि कसि ऊपर हार छबि न्यारी।
कृस कटि उदर गँभीर नाभि पुट जघन नितंबनि भारी।।
मनौं मृनाल भूषन भूषित भुज स्याम अंस पर डारी।
(जै श्री) हित हरिवंश जुगल करिनी गज विहरत वन पिय प्यारी।।

भावार्थ–(श्रीहित सखी ने कहा– हे सखियो !) अत्यन्त चतुर शिरोमणि, रूप की राशि (अपार रूपवती) एवं अङ्ग–अङ्ग में परम सुकुमारी श्रीवृषभानु दुलारी आ रही हैं। उन्होंने प्रथम तो उबटन पूर्वक स्नान किया है और तत्पश्चात् अपने श्रीअङ्ग पर नील वर्ण की सारी सज्जित की है। उनकी अलक–लटें गुँथी हुई हैं, ललाट पटल पर सुन्दर तिलक किया गया है और सिन्दूर से माँग भी सँवारी गयी है। श्रीराधा के मृग छौने के से सुन्दर नयन अञ्जन से युक्त कजरारे है और (उन नयनों की नोकों से आगे क्रमशः आगे बढ़ती हुई) रुचिर (कज्जल) रेखा (नेफा) अनुसारी गयी है। सखि ! ललित नासिका पुट पर मणि–जटित लवङ्ग (स्वर्ण पुष्प) शोभित है और दन्त पंक्ति भी (ताम्बूल, मिस्सीआदि रङ्गों से रँगी हुई गहरी ललामी से) राग रञ्जित सी दिख रही है। कँसूभी कञ्चुकि के द्वारा कसे हुए श्रीफल जैसे उरोजों के ऊपर लहराते हुए हारों की छवि कुछ न्यारी (विलक्षण) ही है। अहा ! कटि तो अत्यन्त कृश (पतली) है, उदर पर गम्भीर नाभि कुण्ड है और जघन तथा नितम्ब पुष्ट हैं–विशाल हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं "वृषभानु दुलारी विविध भूषणों से भूषित अपनी कमल नाल सी कमनीय वाहु लता को श्रीश्याम सुन्दर के कन्धे (अंस) पर डाल कर ऐसे विहार कर रही हैं जैसे कोई गज गजी—करि करिणी युगल। हे सखि ! इस प्रकार श्रीवन में पिय प्यारी (सदा) विहार ही करते रहते हैं।"

— ४६ —

अवतरण—श्रीवृन्दावन के सघन निकुञ्ज में युगल किशोर किसी अनिर्वचनीय एकान्त सुरत विहार में निमग्न हैं। श्रीहित सखी उसका अवलोकन करके परम आनन्दित हो रही हैं और सखियों से वर्णन करके उस रस का मानों प्रवाह प्रवाहित कर रही हैं—

सारङ्ग

मूल—विपिन घन कुंज रति केलि भुज मेलि रुचि,
स्याम स्यामा मिले सरद की जामिनी।
हृदै अति फूल समतूल पिय नागरी,
करिनि करि मत्त मनौं विविध गुन रामिनी।।
सरस गति हास परिहास आवेस बस,
दलित दल मदन बल कोक रस कामिनी।
(जै श्री) हित हरिवंश सुनि लाल लावन्य भिदे,
प्रिया अति सूर सुख सुरत संग्रामिनी।।४६।।

भावार्थ—(श्रीहित सहचरि ने कहा—"सखी ! आज) शरद की रात्रि में श्रीश्याम और श्यामा वृन्दावन की सघन कुञ्ज में मिले हैं, वे परस्पर गलबहियाँ दिये रुचि पूर्वक रति विलास की क्रीड़ा कर रहे हैं। अरी! रस विलास में समतुल्य (बराबर) प्रियतम एवं नागरी दोनों के हृदयों में अपार प्रसन्नता है [वे रति केलि की रुचि के कारण ऐसे प्रतीत होते हैं] मानो मत्त करि एवं करिणि नाना प्रकार की गुण कला पूर्वक रमण कर रहे हों। (उस रति केलि में) कामिनि (श्रीप्रियाजी) ने अपनी सरस गति, हास परिहास (प्रेम) आवेश और कोक रस के बल से कामदेव के दल के दल (समूहों को) दलित कर दिये—मथ डाले हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं" हे सखी ! सुन !! सुरत सुख सङ्ग्राम में अत्यन्त शूर वीर प्रियाजी के लावण्य–अनुपम सौन्दर्य्य पर प्रियतम तल्लीन हो गये–भिद गये।

– ४७ –

अवतरण–इस पद में वन विहार के अवसर पर श्रीलालजी के मन में उत्पन्न हुए संभ्रम का वर्णन है। श्रीलालजी के मन में श्रीप्रियाजी से मिलने–आलिङ्गन करने की तीव्र अभिलाषा जाग उठी है और प्रियाजी उनकी उस अभिलाषा को समझ कर भी पूर्ण न करके अपितु छिपकर, झमक कर एक प्रकार से धोखा दे रही हैं। वे वृन्दावन के पत्र पत्र, पुष्प पुष्प में अपना रूप प्रकाशित कर देती हैं जिससे लालजी उनके यथार्थ रूप को नहीं पहचान पाते–धोखा खा जाते हैं, तब वे सखियों के उपहास के पात्र भी बन जाते हैं किन्तु फ़िर भी भेंट करने का लोभ संवरण न कर सकने के कारण वे भ्रमर का रूप धारण करते और तब पत्र पुष्प राजित प्रिया रूप का आलिङ्गन करना चाहते हैं...इत्यादि।

'प्रीति–विवश प्रेमी की स्थिति कैसी होती है ? इसका परिचय यही 'श्याम' है' ऐसा सब परिकर ने स्वीकार किया। इस लीला और सिद्धान्त का पूर्ण रसास्वाद श्रीहिताचार्य्य के श्रीवचनों से कीजिये–

सारङ्ग

मूल–वन की लीला लालहिं भावै।
पत्र प्रसून बीच प्रतिबिंबहिं नख सिख प्रिया जनावै।।
सकुच न सकत प्रकट परिरंभन अलि लंपट दुरि धावै।
संभ्रम देति कुलकि कल कामिनि रति रन कलह मचावै।।
उलटी सबै समझि नैंननि में अंजन रेख बनावै।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रीति रीति बस सजनी स्याम कहावै।।४७।।

भावार्थ–श्रीलालजी को वन की लीला बड़ी प्यारी लगती है, तभी तो उन्हे वहाँ के फूल पत्तों पर पड़े हुए प्रति बिम्बों में भी नख सिख प्रिया रूप ही

ज्ञात होता रहता है। वे (पत्र प्रसूनों के प्रतिबम्ब पर प्रकट प्रिया प्रतिबिम्ब को देखकर भी) सङ्कोच वश प्रकट रूप से परिरम्भण कर नहीं सकते तब रस लम्पट भ्रमर (अलि) का रूप धारण कर छिप छिप कर दौड़ते हैं; (उनके श्रीमुख कमल के रस का पान करने के लिये) किन्तु सुन्दरी कामिनि (श्रीराधा) चञ्चलता पूर्वक चमक कर उन्हें फिर फिर विशेष भ्रम में डाल देती है इस प्रकार निरन्तर एक) रति रण का कलह मचा रही है।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र (महाप्रभु सखी रूप से अपनी सहचरियों के प्रति) कहते हैं–"सखियो ! (आज श्याम सुन्दर की आँखे प्रिया रूप की वास्तविकता को पहचानने में बड़ा धोखा खा रही हैं, अतः वे) अपनी सारी समझों को उलटी (विपरीत) ही मानकर (आँखों के भ्रम को मिटाने के लिये कि जाने इनमें ही कोई त्रटि तो नहीं है, अपनी) आँखों में अञ्जन रेखा बनाते हैं। इसी से हे सजनी स्पष्ट है कि प्रीति–रीति वश स्याम यही (ऐसी ही भाव मग्नश्याम) कहलाता है (कि जिसे अपने समक्ष दर्शन पर भी विश्वास न होकर भ्रम हो रहा है।")

टिप्पणी–"उलटी सबै समुझि"

इन अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ दूसरे प्रकार से यों भी हो सकता है–

सम्भ्रम के अवसर में सखियों न श्रीप्रिया रूप के पहिचानने में श्रीलालजी की कोई सहायता नहीं की, अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि ये सब मेरे उलटी (विपरीत) हैं और श्रीप्रियाजी की पक्षपाती हैं। इसलिये अब मेरे लिये यही उचित है कि मैं भी अब पुरुष का रूप परित्याग करके 'सजनी' बन जाऊँ; तो सम्भव है कि सादृश्यता के कारण इन सबके हृदय में मेरे प्रति सहानुभूति के भाव उदय हो जायँ। ऐसा विचार कर श्रीलालजी अञ्जन लगाकर तत्काल 'सजनी' बन गये।

– ४८ –

अवतरण–श्रीवृन्दावन की नित्य रास स्थली है। वहाँ रास नृत्य परायण युगल किशोर शोभा पा रहे हैं। रास नृत्य में श्री किशोरी जी की अभूत पूर्व छवि प्रकट हो रही है जिसका वर्णन श्रीहित सखीजी कर रही हैं अपनी सखियों से–

सारङ्ग

मूल—बनी वृषभानु नंदिनी आजु।
भूषन वसन विविध पहिरे तन पिय मोंहन हित साजु।।
हाव भाव लावन्य भृकुटि लट हरति जुवति जन पाजु।
ताल भेद औघर सुर सूचत नूपुर किंकिनि बाजु।।
नव निकुंज अभिराम स्याम सँग नीकौ बन्यौ समाजु।
(जै श्री) हित हरिवंश विलासु रास जुत जोरी अविचल राजु।।४८।।

भावार्थ—आज श्रीवृषभानु नन्दिनी कैसी सुन्दर बनी हैं। उन्होंने अपने प्रियतम मोहन के लिये विविध भूषण वस्त्र सज्जित करके अपने श्रीवपु में धारण कर रखे हैं। वे (रास में अपने) हाव भाव, लावण्य एवं भृकुटियों के नर्त्तन से युवति जनों के (सौन्दर्य्य) अभिमान को हरण कर रही हैं। (नृत्य में) ताल, भेद एवं अवघर स्वर की सूचना वे केवल अपने नूपुर किङ्किणियों की झनकार (शब्द) मात्र से कर रही हैं।

श्री हित हरिवंश चन्द्र (महाप्रभु) कहते हैं आज अभिराम नव निकुञ्ज में श्याम सुन्दर के साथ (आपका) बड़ा ही सुन्दर समाज (सामञ्जस्य) बना है। इस प्रकार यह जोड़ी (सर्वदा) रास एवं विलास से युक्त रह कर अविचल रूप से विराज रही है—शोभित है।

— ४९ —

अवतरण—इस पद में श्रीहित सखी जी अपनी सखियों से युगल सरकार की विहार केलि का वर्णन कर रही हैं—

सारङ्ग

मूल— देखि सखी राधा पिय केलि।
ये दोउ खोरि खरिक गिरि गहवर,
विहरत कुँवर कंठ भुज मेलि।।
ये दोउ नवल किसोर रूप निधि,
विटप तमाल कनक मनौ बेलि।

अधर अदन चुंबन परिरंभन,
तन पुलकित आनँद रस झेलि।।
पट बंधन कंचुकि कुच परसत,
कोप कपट निरखत कर पेलि।
(जै श्री) हित हरिवंश लाल रस लंपट,
धाइ धरत उर बीच सँकेलि।।४९।।

भावार्थ—(श्रीहित सखी ने कहा—) "हे सखी ! राधा और उनके प्रियतम की (सम्मिलित) केलि तो देखो ! ये दोनों कुमार (श्रीवन की) गलियों, खिरक एवं गिरि गुहाओं में गल बहियाँ दिये विहार कर रहे हैं। अरी ! ये दोनों नवल किशोर रूप की निधि हैं। (जब ये कंठ भुज देकर मिले हुए चलते हैं तब ऐसे दीखते हैं) मानों तमाल तरु के साथ स्वर्ण की लता लिपट रही हो।

अधर पान, चुम्बन एवं परिरम्भण के रस को झेल कर दोनों के तन आनन्द पुलकित हो जाते हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं ("जब श्रीलालजी प्यारी के) पट बन्धन, कञ्चुकि एवं कुचों का स्पर्श करते हैं; तब प्यारी (श्रीराधा) उनकी ओर बनावटी क्रोध की मुद्रा से देखतीं और हाथों से उन्हें दूर ढकेल—ठेल देती हैं; उस समय रस लम्पट लाल उन्हें शीघ्रता पूर्वक सँकेल कर अपने हृदय से चिपका लेते हैं।"

— ५० —

अवतरण—रात्रि का प्रथम प्रहरान्त है। सखियों ने युगल सरकार के शयन की वेला जानकर उन्हें निभृत निकुञ्ज भवन तक पहुँचा दिया है। निकुञ्ज भवन में युगल किशोर अपने करों से कमनीय कोमल कमल दलों की शय्या रचकर उसमें विराज रहे हैं। पश्चात् सुरत केलि का रस भी अवगाहन करते हैं। जिसका वर्णन श्रीहित सजनी इस प्रकार कर रही हैं—

सारङ्ग

मूल—नवल नागरि नवल नागर किसोर मिलि,
कुंज कौंमल कमल दलनि सिज्या रची।

गौर स्यामल अंग रुचिर तापर मिले,
सरस मनि नील मनौं मृदुल कंचन खची।।
सुरत नीबी निबंध हेत पिय, मानिनी–
प्रिया की भुजनि में कलह मोंहन मची।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत, रोष–
हुंकार गर्व दृग भंगि भामिनि लची।।
कोक कोटिक रभस रहसि 'हरिवंश हित',
विविध कल माधुरी किमपि नाँहिन बची।
प्रनयमय रसिक ललितादि लोचन चषक,
पिवत मकरंद सुख रासि अंतर सची।।५०।।

भावार्थ–नवल नागरि श्रीराधा एवं नवल नागर किशोर श्याम सुन्दर दोनों ने मिलकर कुञ्ज भवन में कमल के कोमल कोमल दलों से शय्या तैयार की और उस शय्या पर गौर एवं श्याम रुचिराङ्ग इस प्रकार मिल गये जैसे कोमल कञ्चन में सरस नील मणि खचित कर दी गयी हो। सुरत क्रीड़ा के अवसर पर नीबी बन्धन का मोचन करने के लिये प्रियतम तत्पर होते हैं तब मानिनि प्रिया की भुजाओं में (श्याम सुन्दर की वाहुओं के साथ) बड़ी ही मनोहर कलह मचती है। (प्रियतम) प्रिया के सुभग श्रीफल से उरोजों को अपने करों से जब स्पर्श करते हैं तब भामिनि, रोष पूर्ण हुङ्कार, गर्व एवं दृग भङ्गिमा के साथ झुक जातीं अर्थात् अनखा जाती हैं।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं कि इस ऐकान्तिक आनन्द विलास रूप मिलन में कोटि कोटि कोक की विविध एवं सुन्दर मधुरिमाओं में से कोई एक भी न बचीं–सभी यहाँ पूर्ण हो गयीं। प्रेम मयी रसिक ललिता आदि सखियों ने अपने लोचनों का पान पांत्र बनाकर इस रस का पान करते हुए अपने अन्तर (हृदय) में इस सुख की मकरन्द राशि का मानों सञ्चयन करती हैं।

– ५१ –

अवतरण–श्रीलालजी की चित्तवृत्ति, श्रीप्रियाजी के अनुपम, अद्वितीय रूप लावण्य का दर्शन करके उसी में तन्मय सी हो गयी है। अब वे अपने

सामने निरन्तर उसी अनूप रूप को देखना चाहते हैं; इसके लिये उन्होंने दूतिका श्रीहित अलि से अनेकों प्रार्थनाएँ भी की हैं। दूतिका श्रीप्रियाजी के समीप आकर नुति पूर्वक प्रियतम की अभिलाषा प्रकट करती है कि–"माँगत लाल लाड़िलौ नागर;"

"क्या माँगता है ?"

"आपके रूप यौवन का दान–कर।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आपने अपने पास बहुत सी सौंज सम्पत्ति एकत्र कर रखी है।"

"तो सखी ! उन्हें मेरी सम्पत्ति का परिचय भेद बताया किसने ?

"आप नहीं जानतीं। स्वामिनि ! आपके ही वाचाल नूपुरों ने। शरणागत हैं न ये आपके ?"

प्रियतम के सन्देश को प्रियाजी ने सुना और वे मुस्करा गयीं।

अस्तु; अब आप इस वचन माधुरी का आस्वादन श्रीहित अलि के श्रीवचनों में कीजिये–

सारङ्ग

मूल–दान दै री नवल किसोरी।
माँगत लाल लाड़िलौ नागर, प्रगट भई दिन दिन की चोरी।।।
नव नारंग कनक हीरावलि, विद्रुम सरस जलज मनि गोरी।
पूरित रस पीयूष जुगल घट, कमल कदलि खंजन की जोरी।।
तोपैं सकल सौंज दामिनि की, कत सतराति कुटिल दृग भोरी।
नूपुर रव किंकिनी पिसुन घर, 'हित हरिवंश' कहत नहिं थोरी।।५१।।

भावार्थ–(दूतिका ने कहा–) "हे नवल किशोरी ! लाड़िले नागर श्रीलालजी के समीप तुम्हारी दिन दिन की चोरी (–छिपाई हुई यौवन सम्पत्ति) प्रकट हो गयी है; वे अब (तुमसे तुम्हारी सम्पत्ति पर) दान–कर माँग रहे हैं अतः तुम उन्हें कर दो अवश्य। तुम्हारे पास (अनेकों प्रकार की सम्पत्ति भी तो है टैक्स देने योग्य; जैसे–) नवीन नारङ्ग कनक फल, हीरों की पंक्ति, रस मय मूँगा (विद्रुम) मणि, जलज (मुक्ता) मणि, अमृत रस से परिपूर्ण दो दो कनक कलश, युगल

कमल, युगल कदलि स्तम्भ और खञ्जनों की जोड़ी। स्वामिनि ! यह सब कुछ है भी तो तुम्हारे पास !"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं–"अरी सखी ! (तू मेरी बात सुनकर) क्यों मुझ पर टेढ़ी भृकुटि और तिरछी आँखें करके सतरा रही है ? (वास्तव में) तेरे पास दामिनि की सम्पूर्ण सम्पत्ति (गौरता, तेज, चपलता, तरलता, प्रताप, प्रकाश आदि) तो है भी। अहो ! इसका ढिंढोरा पीटा है तुम्हारे ही घर बसे चुगल खोर नूपुर और किङ्किणियों के मधुर रव ने।"

टिप्पणी–

(१) व्रज भाषा में 'दान' शब्द का प्रयोग कर या महसूल के अर्थ में हुआ है। उक्त पद में श्रीलालजी श्रीप्रियाजी की रूप सम्पत्ति पर कर माँग रहे हैं। श्रीकृष्ण रस राज्य के रसिक नरेश हैं, उन्होंने नूपुर रव और किङ्किणियों की झनकार से ही श्रीप्रियाजी के गुप्त यौवन धन की सूचना पा ली, अतः तत्काल दान की आज्ञा निकाल दी। दूतिका रूप सिपाही ने आज्ञा सुनाते समय अपनी भी राय दी कि ठीक तो है

"तोपैं सकल सौंज दामिनि की; कत सतराति... ?"

जब तुम्हारे पास सम्पत्ति है तो फिर दान माँगने पर नाराज होने की क्या आवश्यकता? शायद तुम यह समझ रही होगी कि मैंने ही तुम्हारे यौवन धन का पता उन्हें दिया है किन्तु सरकार ! बात ऐसी है नहीं। यह पता तो दिया है आपके ही चरण सेवकों ने–इन नूपुरों ने। मैंने तो एक शब्द भी नहीं कहा।

इस पद में–

(२)

नव नारंग कनक हीरावली, विद्रुम सरस जलज मनि गोरी।
पूरित रस पीयूष जुगल घट कमल कदलि खंजन की जोरी।।
..................सकल सौंज दामिनि की...............................।

इन उपमाओं के द्वारा श्रीप्रियाजी के यौवन लावण्य और रूप की ओर सङ्केत किया गया है किन्तु उपमेय का नाम भी नहीं है। यह शैली अन्य शैलियों

से कुछ विलक्षण है। यह रसिक जनों की अनोखी एवं साङ्केतिक वाणी है। इस उक्त वचन रचना से चतुर एवं रसवती नायिका, नायक के सम्पूर्ण भावों को समझ लेती है। यही ठीक भी है कि ऐसी गोप्य शृङ्गार रस पूर्ण बातों को अधिक स्पष्ट करके कहने में उसकी शोभा नष्ट हो जाती है। पर्दे की बातें पर्दे में ही फबती हैं। महात्मा सूर दासजी ने भी इसी प्रकार श्रीप्रियाजी के रूप लावण्य का वर्णन किसी दूती सखी के द्वारा प्रियतम श्रीलाल जी के समीप कराया है। क्या ही अनूठे ढँग से सखी कह रही है।

अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग।।
हरि पर सर वर सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग।।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव, तापर सुक पिक मृगमद काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग।।
अंग अंग प्रति और और छवि, उपमा ताकौ करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधा रस मानौं अधरनि के बड़ भाग।।

इस पद में श्रीप्रियाजी के नख शिख रूप का वर्णन केवल उपमाओं से ही कर दिया गया है। इसी प्रकार इंक्यावनवें पद में भी 'नव नारंग से.......। दामिनी की' तक वर्णन में रूप, लावण्य यौवन का ही वर्णन है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

१. दान–यौवन सम्पत्ति पर कर या टैक्स।

२. **नवल किशोरी**–नव यौवन सम्पन्न नवोढ़ा नायिका श्रीराधा

३. **लाड़िलौ नागर**–धीर ललित नायक, रसिक शेखर श्रीकृष्ण, प्रियतम।

४. **प्रकट भई दिन दिन की चोरी**– नायिका के नव यौवन का पूर्ण विकास हो चुका है और उसकी ख्याति भी हो चुकी है जिसका श्रवण करके नायक श्रीलालजी पूर्ण मुग्ध हैं, प्रेमातुर हैं।

५. **नव नारंग**– नारङ्ग फल सदृश अरुणाभ कपोल जो अंग गौरता से मिलकर पीतारुण हो रहे हैं।

६. **कनक**—स्वर्ण जैसी देह—द्युति।

७. **हीरावलि**— हीरों जैसी दन्तपंक्ति।

८. **विद्रुम सरस**— रस पूर्ण विद्रुम (मूँगा) मणि जैसे लाल—लाल, रस भरे अधर।

९. **जलज मनि**— उज्वल मोतियों जैसी नख मणियों की छटा—ज्योति।

१०. **पूरित रस पीयूष जुगल घट**— अमृत रस से भरे दो कलश; श्रीप्रियाजी के युगल स्तन कलश, जो रस की राशि हैं।

११. **कमल**—कमल पुष्प के उपमान कोमल शीतल एवं अरुणिम चरण तल, कर तल।

१२. **कदलि**— कदलि स्तम्भ की भाँति सचिक्कन, रोम रहित, पुष्ट, शीतल, मनोहर एवं सुन्दर जङ्घा।

१३. **खंजन की जोरी**—खञ्जन पक्षी के जैसे युगल चञ्चल, मनोहर नयन।

१४. **सकल सौंज दामनि की**—दामों की (मूल्यवान) जिस पर दान लेना न्याय संगत है।

उक्त वर्णन में श्रीमुख से लेकर श्रीचरणों तक उपमाओं का यथाक्रम सङ्केत है।

१. कहीं—२ दामिनि पाठ हैं

किन्तु श्रीप्रेमदासजी ने अपनी टीका में दामनु (द्रव्य अर्थ) किया है और प्रसंगानुसार अधिक उपयुक्त है।

— ५२ —

अवतरण—इस पद में सर्वेश्वरी स्वामिनि श्रीराधा के अखिल विश्व वन्दित सर्वोपरि रूप की महिमा का वर्णन लक्ष्यार्थ एवं अभूतोपमा से किया गया है। श्रीहित सजनी अपनी सखियों से कह रही हैं—

मलार

मूल–देखौ माई सुंदरता की सीवाँ।
व्रज नव तरुनि कदंब नागरी, निरखि करतिं अधग्रीवाँ।।
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै रसना कोटिक पावै।
तऊ रुचिर वदनारबिंद की सोभा कहत न आवै।।
देव लोक भूलोक रसातल सुनि कवि कुल मति डरिये।
सहज माधुरी अंग अंग की कहि कासौं पटतरिये।।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रताप रूप गुन वय बल स्याम उजागर।
जाकी भ्रू विलास बस पसुरिव दिन विथकित रस सागर।।५२।।

भावार्थ–(श्रीहित सखी कहती हैं–) "हे सखियो ! सुन्दरता की सीमा (श्रीराधा) को तो देखो ! जिस नागरी को देख कर समस्त व्रज की नव युवती गण (उसकी सौन्दर्य्य राशि के सामने लज्जावश अपना) सिर झुका लेती हैं अर्थात् उनके रूप के सामने अपने रूप की लघुता स्वीकार करके सिर नीचा कर लेती हैं लजाकर। (उस अपार श्रीप्रिया रूप की शोभा का वर्णन करने के लिये) यदि कोई कोटि कोटि कल्पों तक जीवित रहकर कोटि कोटि जिह्वायें प्राप्त कर भी ले तो भी उस रुचि पूर्ण मुख कमल की शोभा का वर्णन वह नहीं कर सकता (उससे वह शोभा कहते ही न आवेगी।) देवलोक, भूलोक एवं रसातल के समस्त कवि कुल (समुदाय) की बुद्धि (उस रूप की महिमा का वर्णन) सुन सुन कर डरती रहती है कि हम उस अङ्ग प्रत्यङ्ग के सहज माधुर्य की उपमा दें तो दें किससे ? (अथवा श्रीहित जी कहते हैं कि जिसके वर्णन करने में समस्त कवि कुल की मति चौंधया रही है फिर मैं ही उस रूप की उपमा कैसे और किससे दूँ ?")

श्रीहित हरिवंश चन्द्र (महाप्रभु) कहते हैं–"श्रीश्याम सुन्दर तो प्रताप, रूप, गुण, आयु (वय) एवं वल सभी बातों में उजागर हैं–प्रगट हैं फिर भी वे रस समुद्र श्याम जिसकी भृकुटियों के इशारे के वशवर्त्ती पशु की भाँति निरन्तर लाचार से रहे आते हैं, (उस रूप की सीमा–श्रीराधा–को देखो, समझो।"

— ५३ —

अवतरण—यद्यपि नारी जाति अबला है किन्तु फिर भी उसके पास एक महान् बल है। वह है उसका नारीत्व। जिसके सामने बड़े बड़े बली अपना सिर झुका देते हैं—

सूल कुलिस असि अँगवनिहारे।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।

और—

मृगनयनी के नैंन सर को अस लागि न जाहि ?

इत्यादि वाक्य अबला की बल राशि के ही परिचायक हैं।

श्रीराधा अनन्त शक्तिमती होने पर भी हैं तो अन्ततः शृङ्गार रस की गुण गण भूषिता नायिका ही न ? अतः उन्हें 'अबला' नाम से स्वीकार करना पड़ेगा। यह श्रीराधा अनन्त बला होकर भी अबला हैं और अबला के पास वह धनराशि भी है जो अति निरङ्कुश गजराज मोहन श्रीकृष्ण को भी केवल एक केश लट के बन्धन में सर्वदा के लिये बाँध ले सकती है।

इस पद में उस बल राशि—अनन्त सौन्दर्य्य का वर्णन बड़ी कुशलता से क्रीड़ा व्याज से किया गया है—

मलार

मूल— देखौ माई अबला के बल रासि।
अति गज मत्त निरंकुस मोंहन;
निरखि बँधे लट पासि।।
अबहीं पंगु भई मन की गति;
बिनु उद्यम अनियास।
तबकी क़हा कहौं जब प्रिय प्रति;
चाहति भृकुटि बिलास।।
कच संजमन व्याज भुज दरसति;
मुसकनि वदन विकास।

हा हरिवंश अनीति रीति हित;
कत डारति तन त्रास।।५३।।

भावार्थ–(श्रीहित सजनी ने अपनी सखियों से कहा–) "हे माई ! देखो ! अबला (श्रीराधा) की बल राशि को तो देखो ! जिन श्रीराधा को देखते ही अत्यन्त मतवाले एवं निरङ्कुश गजराज वत् मोहन लाल भी उनकी केश लट के एक (अल्प) बन्धन में अपने आप (विना प्रयत्न के ही) बँध गये। जब अभी अभी–बिना प्रयास के अकस्मात् ही उनकी मनोगति पङ्गु हो गयी, तब उस समय की क्या बात कहूँ जब वे (श्रीप्रियाजी) प्रियतम की ओर भौहें नचाकर–विलास पूर्वक देखेंगी ?"

"उसी समय (श्रीप्रियाजी ने अपनी कुन्तल लट को जो कपोल पर आ पड़ी थी, सम्हालने के लिये) केश सँकेलने के बहाने से अपनी बाहुलता का दर्शन कराया, और मुसकान पूर्वक अपने श्रीमुख को विकसित कर दिया; (बस इतने से श्री लालजी की दशा प्रेम विह्वल हो गई। यह सब देख श्रीहित) हरिवंश सजनी बोल उठीं–हाय ! हाय !! इस प्रीति की रीति में भी बड़ी अनीति है ! अरी ! अब क्यों (उन प्रेम विह्वल को) व्यर्थ तन त्रास दे रही हो ? (जो अपने आप घायल है उसे और भी छेदना क्या यही प्रेम राज्य की रीति है ?")

टिप्पणी–इस पद में श्रीप्रियाजी के अनुपम रूप सौन्दर्य्य की ओर बड़ी कुशल कला से इङ्गित किया गया है। कितना अपार बल है उस अबला के पास? जिसके एक लट बन्धन में बाँधा गया वह; जो मोहन, विश्व विमोहन मोहन, अतिमत्त गजराज की तरह उन्मद रूप से छका हुआ और फिर निरङ्कुश ! स्वातन्त्र्य और रूप की चरम सीमा ! वह सीमा भी अवला के एक लट पाश में ढँक गयी ! ओह ! कैसा होगा वह रूप ? कल्पनातीत है !!

मत्त गजराज निरङ्कुश मोहन का मन लट पाश में अपने आप बँधकर पङ्गु बन गया। अवला का न कोई प्रयास था न उद्यम। यदि कदाचित् अबला अपनी ओर से किसी प्रकार का प्रयास कर दे तो ? मत पूछो क्या होगा।

हुआ भी वही, जिसका डर था। स्वभावतः अवला ने अपनी विलुलित अलक को समेट कर एकत्र कर देना चाहा कबरी के साथ; अतः उसने

मुसकाते हुए भुजाएँ उठाकर लट को कबरी के साथ सम्हाली जिससे सहज ही उसके वाहु मूल का दर्शन होने लगा। बस इतने से मोहन लाल की गति–मति अपने आप खो चली। यह देखकर अवला ने थोड़ा सा और मुसका दिया। मोहन मूर्च्छित हो गये। कविवर विहारी की उक्ति–"काको मन बाँधै नहीं, जूरौ बाँधनि हारि" से भी आगे बढ़ गयी यह स्थिति। यहाँ तन मन दोनों अपने आपे से दूर खो गये।

महामत्त गजराज एवं निरङ्कुश मोहन की अवला के द्वारा यह दुर्दशा देखकर स्वयं हित भी तरस खा गया। प्रेम देवता को अपने आप पर दुःख हो गया। वह बोल उठा–

"हा हरिवंश ! अनीति रीति हित कत डारति तन त्रास ?"

"हाय ! हाय !! प्रेम की रीति में भी अन्यांय है, उत्पीड़न है ?"

भला–

तासौं ऐसी चाहिये, जो तन मन रह्यौ हारि ?

कितना अन्धेर है ?

अस्तु; जब "प्रताप, रूप, गुन, वय, वल उजागर श्याम" की यह दशा है यहाँ तब कैसे इङ्गित किया जाय उस अपार अतर्क्य, अनन्त और अवर्णनीय रूप सौन्दर्य्य मयी अवला की वल राशि की ओर ?

– ५४ –

अवतरण–युगल किशोर का विहार नित्य है। इस विहार में युगल, सखियाँ, वृन्दावन, खग मृग सभी कुछ नित्य है और नित्य के साथ–साथ नव्य हैं। इस अनादि अनन्त विहार की रमणीयता रसिकता भी नित्य एवं नूतन है। इस नित्य नूतनता का वर्णन इस पद में गागर में सागर की शैली से–सूत्र रूप से भरा गया है।

सुहावनी पावस की ऋतु आ लगी है। मधुर मधुर गर्जना करते हुए नव जलधर आ आकर आकाश को आच्छादित कर देते हैं और उनसे नयी–नयी

बूँदें भी बरसने लगती हैं। नवीन मेघों को देखकर चातक और मोर मुदित होकर कूकने लगते हैं। इधर लता–मण्डप में छिपे हुए नवल किशोर युगल की नयी चूनरी नव पीताम्बर भी नवीन बूँदों से भींजने लगते हैं; तब दोनों अपने अञ्चलों की ओट करते हैं और–

ललिता ललित रूप रस भींजी बूँद बचावत पातनु।

आज पावस की नयी झर में सब कुछ नया ही नया है। श्रीहिताचार्य्य चरण इसका वर्णन भी नये ही ढँग से करते हैं–

मलार

मूल–नयौ नेह नव रंग नयौ रस,
नवल स्याम वृषभानु किसोरी।
नव पीतांबर नवल चूनरी;
नई नई बूँदनि भींजति गोरी।।
नव वृंदावन हरित मनोहर;
नव चातक बोलत मोर मोरी।
नव मुरली जु मलार नई गति;
श्रवन सुनत आये घन घोरी।।
नव भूषन नव मुकुट विराजत;
नई नई उरप लेत थोरी थोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश असीस देत मुख
चिरजीवौ भूतल यह जोरी।।५४।।

भावार्थ–आज नवल श्याम और नवल वृषभानु किशोरी में (परस्पर) नवीन स्नेह, नवीन आनन्द एवं नया ही रस भर रहा है। यहाँ श्याम सुन्दर का नया पीत पट है तो वहाँ वृषभानु किशोरी की नयी चूनरी। (उस नवल चूनरी को पहिने हुए) गोरी नयी ही नयी बूँदों से भींग रही हैं। जैसा नया, हरा–भरा और मनोहर वृन्दावन है; वैसे ही उसमें नये ही नये चातक, मोर और मयूरियाँ बोल रही हैं ! इधर नवल श्याम सुन्दर ने अपनी नयी मुरली में नयी ही गति से नवीन प्रकार का मलार राग छेड़ दिया है, जिसे सुनकर नये नये मेघ भी घिर कर घुमड़ आये है।

श्रीश्याम सुन्दर के श्री अङ्गों में नये ही तो आभूषण हैं और सिर पर नया मुकुट विराज रहा है। वे नृत्य में उरप और तिरप नामक गतिया मन्द मंद ले रहे हैं। (इस नवीन सुख एवं समाज को देख कर) श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद (प्रीति पूर्वक) अपने मुख से आशीष देते हैं कि यह जोड़ी भूतल (इस लोक में मथुरा मण्डलान्तर्गत प्रकट श्रीवृन्दावन धाम) में क्रीड़ा करती हुई चिरजीवी रहे।

टिप्पणी–

नयौ नेह नव रंग नयौ रस;
नवल स्याम वृषभानु किसोरी।

यह बात प्रसङ्ग वशात् कई बार कही जा चुकी है कि श्री हिताचार्य चरण ने रसमयी उपासना के द्वारा रसमय नित्य विहार को ही लक्ष्य बताया है। यह नित्य विहार नित्य नवीन है। यदि इसमें कुछ पुरानापन आजाय तो यह नीरस हो जाय किन्तु ऐसा यहाँ नहीं है, वरं यह नित्य प्रेम रस से ओत प्रोत, नित्य नूतन और प्रतिक्षण वर्द्धमान् सरस रहा आता है। यहाँ समस्त परिकर के हृदय में प्रतिक्षण प्रेम, चाह, चटपटी चौंप, विरह, प्यास (उत्कण्ठा) आदि बढ़ते ही रहते हैं। यहाँ प्रत्येक वस्तु और भाव नवीन क्यों और कैसे है; उसे देखिये–

(१) नयौ नेह–नया ही प्रेम है; इसका भाव यह है कि प्रेम सदा अपूर्ण रहता है पूर्ण नहीं होता। प्रेमी भी सदा अपने को अपूर्ण ही मानता रहता है–अपने में अपूर्णता का अनुभव करता रहता है। श्रीप्रियाजी सोचती हैं कि मेरे हृदय में प्रियतम के प्रति किञ्चित् भी प्यार नहीं; वास्तव में वही मुझ पर प्यार करते हैं। ठीक इसी प्रकार श्रीलालजी अपनी प्रियतमा के लिये सोचते हैं कि वास्तव में वही मुझसे प्यार करती हैं, मेरे हृदय में तो कुछ है ही नहीं; यथा–

मेरे तन मन प्रान हूँ तें प्रीतम प्रिय;
अपने कोटिक प्रान प्रीतम मोसौं हारे।

इसलिये सदा अपने हृदय में अपूर्णता का अनुभव करते रहने पर जो प्रेम उदित होता है, वह नया ही अनुभव होता है। क्योंकि–

प्रेम सदा बढ़िवौ करै प्रतिछिन कला अशेष।
पै पूनौं यामें नहीं तातैं प्रेम विशेष।।

–रसखानिजी

(२) नवरंग–जहाँ पर ऐसा प्रतिक्षण वर्द्धमान् प्रेम है, वहीं आनन्द है–रङ्ग है। शरीरों के संयोग में आनन्द नहीं, आनन्द तो है मन एवं आत्मा के मिलन में; प्रेम में।

युगल किशोर का परस्पर में एक दूसरे के प्रति अपार प्रेम है अतः उनके बीच भी नवीन नवीन आनन्द की नित्य उत्पत्ति होनी भी स्वाभाविक है। इसनित्य नव प्रेमानन्द की उत्पत्ति एवं विलास किस प्रकार युगल में होता रहता है, श्रीहित ध्रुवदासजी के मुख से सुनिये–

बृंदावन में सिन्धु द्वै, उमड़े रहत अपार।
प्रेम मदन रस सौं भरे, राजत रंग अपार।।
प्रेम नेम रति रंग सुख, दिनहिं परस्पर होत।
पल पल नव नव दसा फिरै, सहजहिं ओत प्रोत।।
अदभुत जुगल किसोर रस, छिन छिन औरै और।
प्रेम मगन विलसत दोऊ रसिकनि मनि सिरमौर।।

–रंग विनोद लीला से

(३) नयौ रस– यह नित्य विहार रस, नित्य निरंन्तर एक रस रहकर भी नवीन है। एक रस इसलिये कि इसमें न तो कभी किसी प्रकार न्यूनता का आभास ही होता ओर न इसमें अन्य किन्हीं भावों (दास्य,सख्य, वात्सल्य,शान्त किंवा ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, माहात्म्य आदि) का प्रवेश ही है। हाँ स्वयं यह अत्युज्ज्वल शृङ्गार रस स्वयं भले ही उक्त भावों का रूप रस विलास में धारण करले। यथा–

रद छद में वीभत्स रस, हाथापाई वीर।
कंप भयानक जानिये, रौद्र छुड़ावै धीर।।

वैसे यह नित्य विहार सर्वदा एक रस और नित्य नूतन है। यहाँ निरन्तर नये ही नये रस की उत्पत्ति और आस्वादन होता रहता है। सो किस प्रकार ? श्रीध्रुवदास जी बताते हैं–

रति विनोद जामिनि जगे, सिथिल अटपटे बैंन।
अँग अँग अरसाने सबै, सरसाने सखि नैंन।।
सीस सीस तरें वाहु दै, जुरे मिथुन मुख चाहि।
निसिदिन जीवन सखिनु कै, यहै परम सुख आहि।।
हौंहिं सकल जौं गात, रौंम रौंम रसना सहित।
तऊ कहयौ नहिं जात पिय प्यारी कौ प्रेम रस।।

यह है रस की नित्य नवीनता !

(४) नवल स्याम वृषभानु किसोरी—श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण और गौर वदनि नवल किशोरी राधा का वास्तविक रूप क्या है; इसे वेद, उपनिषद, पुराण और महापुरुषों के अनुभव पूर्ण वाक्यों से अच्छी तरह समझा जा सकता है; अतः यहाँ संक्षेप में इतना ही कि ये दोनों अतर्क्य, अचिन्त्य, अव्यक्त एवं परात्पर ब्रह्म हैं—उस 'रसो वै सः के सगुण साकार विग्रह है। इस बात को यहाँ छोटे से स्थान में लिखने की आवश्यकता नहीं है। कहने की आवश्यकता केवल इतनी ही है कि यह पूर्ण पुरातन ब्रह्म; पुरातन होकर भी नित्य नवीन है नित्य—युवा है, किशोर है। इसे महा पुरुष गण किस प्रकार प्रकट करते हैं देखिये—

श्रीराधे नव कुञ्ज नागरि तव क्रीताऽस्मि दास्योत्सवैः

—श्रीराधा सुधा निधि

अर्थात् "हे नव कुञ्ज नागरि' राधे! मैं आपके दास्य सुख में बिक चुकी हूँ। यहाँ नव कुञ्ज नागरि पद दृष्टव्य है।

इसी प्रकार—

"माई ! सहज जोरी प्रगट भई जु रंग की स्याम गौर, घन दामिनि जैसे।
पहले हुती, अबहूँ है, आगैहुँ रहिहै; न टरिहै तैसे।।"

—श्रीस्वामी हरिदासजी

इसी तरह श्रीध्रुवदासजी कहते हैं—

नित्य किशोरी नित्य किसोर। नित वृंदावन नित निसि भोर।।
नित्य सहचरी नित्य विनोद। नित आनँद बरसत चहुँ कोद।।

अन्त में

नवल नागरि नवल जुवराज।
नव नव वन, घन क्रीडंत, नव निकुंज विलसंत सर्वसु।
नव नव रति नित नित वढ़त, नयौ नेह नव रंग नयौ रस।।
नव विलास कल हास नव मधुर सरस मृदु बैंन।
नव किसोर हरिवंश हित नवल नवल सुख चैन।।

– श्रीदामोदर सेवक जी

श्रीवृन्दावन परिकर की सभी वस्तुएँ, सब भाव और लीलाएँ सदा नित्य नवीन के साथ साथ रसमय और आनन्द मय हैं। यहाँ श्रीराधा नवीन हैं, उनके प्रियतम श्रीकृष्ण नित्य नवीन हैं। इसी प्रकार सखियाँ खग, मृग और अन्यान्य परिकर भी नित्य नवीन हैं। नित्य विहार में वेणु, वाद्य, सेवा सामग्री, कुञ्ज–गृह, यमुना, सरोवर, गिरिवर, गान, तान, राग, रङ्ग, क्रीड़ा हाव भाव केलि विलास, हास परिहास, चितवन, रूप, सौन्दर्य्य, माधुर्य्य आदि सब नवीन–नित्य नवीन और रसमय हैं किं बहुना ? ये सभी एक रसमय उन्नत नित्य नवल युगल किशोर के ही रूप हैं अतः तत्स्वरूप हैं।

– ५५ –

अवतरण–इस पद में श्रीहिताचार्य्य चरण दो दामिनियों की होड़ (स्पर्धा) के रूपक से स्वामिनि श्रीराधा के रूप सौन्दर्य्य की श्रेष्ठता का प्रकाश कर रहे हैं। रूपक यों है–

दो चपला हैं; एक आकाश स्थित घन में निवास करने वाली तड़ित; दूसरी भूतल स्थित (गौराङ्गीश्री राधा।) ये दोनों रूप, गुण, स्वभाव में प्रायः समान हैं या नहीं इसी का निर्णय होना है इस स्पर्धा में। दोनों की स्पर्धा के विषय केन्द्र हैं श्याम घन (सजल मेघ और श्रीकृष्ण जो प्रायः एक रूप हैं।)

शर्त्त क्या है ?

यह कि हम दोनों में से कौन नव घन श्याम (घटा) को विचलित कर सकता है।

इस प्रकार दोनों चपलाएँ आनन्द के उत्साह विनोद रस में तल्लीन होकर अपने अपने प्रयास में लग गयीं। एक आकाश तडित् सजल घन घटा से अपना विजय प्रयास करने लगी और दूसरी भूतल विराजित नव जलधर वपु श्रीकृष्ण से।

मलार

मूल—आजु दोउ दामिनि मिलि बहसीं।
बिच लै स्याम घटा अति नौंतन, ताके रंग रसीं।।
एक चमकि चहुँ ओर सखी री, अपने सुभाइ लसी।
आई एक सरस गहनी में, दुहुँ भुज बीच बसी।।
अंबुज नील उभै विधु राजत, तिनकी चलन खसी।
(जै श्री) हित हरिवंश लोभ भेटन मन, पूरन सरद ससी।।५५।।

भावार्थ—(श्रीहित अलि ने कहा—"सखी !) आज दोनों दामिनियाँ (एक आकाश स्थित बिजली एवं दूसरी भूतल स्थित तडित् वपु गौराङ्गी श्रीराधा) मिल कर होड़ लगा चुकी हैं। (होड़ यह है।) कि अत्यन्त नूतन श्याम घटा को विचलित करें। बस; इसी होड़ की उमङ्ग में (दोनों) डूब रही हैं। हे सखी ! [होड़ के अनुसार क्रिया यह प्रारम्भ हुई कि] एक (आकाश स्थित दामिनि) तो चारों ओर चमक कर फिर अपने (पूर्ववत) स्वभाव में ही जा मिली, (अर्थात् जैसे कि सर्व काल वह चमक कर घन में समा जाती थी उसी प्रकार आज भी वह घन में समा गयी।) (मानो वह अपनी सारी करतूत कर चुकी। अब दूसरी भूतल स्थित दामिनि श्रीराधा ने क्या किया ? वह भी चमकी पर) एक रस मय पकड़ (बन्धन) में आ गयी और (श्याम घन की) दोनों भुजाओं के बीच में जा बसी। [श्याम घन की दोनों भुजाओं के बीच जा बसने पर आकाश तडित् ने सोचा कि मेरी, इसकी स्थिति समान रही पर जा बसने के उपरान्त उसने क्या किया; इस प्रकार है—]

(उस गौराङ्गी दामिनि में एक आश्चर्य था कि उसके विधु (चन्द्र मुख) पर चार कमल दो नील और दो लाल—शोभित थे; (अर्थात् दामिनि श्रीप्रियाजी के श्रीअङ्गों से श्रीलालजी की नील कमल वत् दो भुजाएँ लिपट रही थीं और उनके चन्द्र वदन पर लाल कमल जैसी अनुराग रँगी अरुणिम आँखें लगी थीं

किन्तु सौन्दर्य्य का भार न सह सकने के कारण) उन (वाहुओं एवं नयनों) की गति (शिथिल होकर) विचलित हो गयी खिसक पड़ी अर्थात् दामिनि के सुखद एवं मादक स्पर्श ने श्याम घन श्रीकृष्ण को विचलित कर दिया। किन्तु [फिर भी श्याम घन श्रीकृष्ण के] मन में पूर्ण शरद शशि [वत श्री प्रियाजी के मुख] को भेंट लेने (चुम्बन आदि लेने) का लोभ रहा ही आया। [इस प्रकार भूतल स्थित दामिनी श्रीराधा श्याम घटा रूप श्रीकृष्ण को विचलित करके आकाश स्थित दामिनि से विजयी हुई; क्योंकि आकाश तड़ित मेघ को विचलित न कर ही सकी, और न उसने उसमें कोई हलचल ही उत्पन्न की; इसलिये यह हार गयी। अन्ततोगत्वा इस होड़ से गौर वदनि दामिनि श्रीप्रियाजी के रूप सौन्दर्य्य की श्रेष्ठता सिद्ध हुई।]

– ५६ –

अवतरण– युगल किशोर का सुख ही रसिक सखियों का सुख है; क्योंकि ये सखियाँ युगल के प्रति 'तत्सुख सुखित्वम्' की भावना में ही पगी हैं।

इस पद में आशीर्वादात्मक पद्धति से जो कुछ कहा गया है; उससे यही उक्त ध्वनि, ध्वनित हो रही है। युगल सरकार सदा सर्वदा श्रीवृन्दावन की नव निकुञ्ज कुटी में आमोद प्रमोद, हास परिहास, रास विलास और रति विहार करते रहें और हम सखिजन उस विलास सुख का दर्शन करती रहें, यही हमारा परम और चरम सुख है। यह नित्य विहार की नित्य सिद्धा सखियों की भावना है। इसी भावना का आभास, श्रीहित हरिवंश चन्द्र रसिकाचार्य्य वर्य्य नित्य सहचरि भाव से रसोपासक रसिक जनों को इस प्रकार करा रहे हैं–

मलार

मूल–हौं बलि जाऊँ नागरी स्याम।
ऐसैं ही रंग करौ निसि वासर, वृंदा विपिंन कुटी अभिराम।।
हास विलास सुरत रस सिंचन, पसुपति दग्ध जिवावत काम।
(जै श्री) हित हरिवंश लोल लोचन अलि,
करहु न सफल सकल सुख धाम।।

भावार्थ – श्रीहित सजनी आशीर्वाद देती हैं– 'हे नागरी ! (श्रीराधा) हे श्याम ! (श्री कृष्ण !) मैं आप पर वलिहार जाऊँ। (आप दोनों) वृन्दावन की सुन्दर कुञ्ज कुटी में रात दिन–निरन्तर इसी प्रकार आनन्द मय रङ्ग विहार ही करते रहो ! निरन्तर हास विलास एवं सुरत रस के सिञ्चन द्वारा पशुपति शिवजी के द्वारा जलाये गये (दग्ध किये गये) कामदेव को जीवन दान देते हुए हे सकल सुख धाम ! हमारे लोल लोचन रूप भ्रमरों को सफल कीजिये न !" (अर्थात् आप दोनों स्वच्छन्द भाव से रति विलास करें और हम उसका दर्शन करके सुखी हों।)

– ५७ –

अवतरण–वसन्त की बहार है। समस्त वन विविध प्रसूनों से सुसज्जित है। मन हरण बसन्ती वायु झूम झूम कर बह रहा है। सखियों ने अनेकों कनक भाजनों में विविध भाँति के रङ्ग घोल रखे हैं, सबके करों में ललित पिचकारियाँ शोभा पा रही हैं। गुलाल, अबीर और बन्दन की झोलियाँ लटका रखी हैं सबने अपनी अपनी फेंट में। यदि एक ओर से पिचकारी रङ्ग फेंकती है, तो दूसरी ओर से चल पड़ती है अबीर और गुलाल की भरी मुट्ठी। आकाश ढँक जाता है, अवीर गुलाल की रङ्ग बिरङ्गी धूल से। इसके सिवाय दोनों पक्ष–श्रीलालजी और श्रीप्रियाजी के अङ्ग प्रत्यङ्गों के हाव भाव, चितवन, कटाक्ष, हास परिहास आदि की जो होली है, वह तो होली ही है, उसका रङ्ग, सुख और आस्वादन तो सहृदय रसिक जनों के लिये ही हृदय–गम्य है। अब इस रस केलि का वर्णन श्रीरसिकाचार्य्य चरण हित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु इस प्रकार करते हैं–

गौरी

मूल–प्रथम जथामति प्रनऊँ (श्री) वृंदावन अति रम्य।
श्रीराधिका कृपा बिनु सबके मननि अगम्य।।
वर जमुना जल सींचन दिनहीं सरद बसंत।
विविध भाँति सुमनसि के सौरभ अलिकुल मंत।।
अरुन नूत पल्लव पर कूँजत कोकिल कीर।
निर्त्तनि करत सिखी कुल अति आनंद अधीर।।

बहत पवन रुचिदायक सीतल मंद सुगंध।
अरुन नील सित मुकुलित जहँ तहँ पूषन बंध।।
अति कमनीय विराजत मंदिर नवल निकुंज।
सेवत सगन प्रीतिजुत दिन मीनध्वज पुंज।।
रसिक रासि जहँ खेलत स्यामा स्याम किसोर।
उभै बाहु परिरंजित उठे उनींदे भोर।।
कनक कपिस पट सोभित सुभग साँवरे अंग।
नील वसन कामिनि उर कंचुकि कसुँभी सुरंग।।
ताल रबाब मुरज उफ बाजत मधुर मृदंग।
सरस उकति गति सूचत वर बँसुरी मुख चंग।।
दोउ मिलि चाँचरि गावत गौरी राग अलापि।
मानस मृग बल बेधत भृकुटि धनुष दृग चापि।।
दोऊ कर तारिनु पटकत लटकत इत उत जात।
हो हो होरी बोलत अति आनँद कुलकात।।
रसिक लाल पर मेलति कामिनि बंदन धूरि।
पिय पिचकारिनु छिरकत तकि तकि कुंकुम पूरि।।
कबहुँ कबहुँ चंदन तरु निर्मित तरल हिंडोल।
चढ़ि दोऊ जन झूलत फूलत करत किलोल।।
वर हिंडोर झँकोरनि कामिनि अधिक डरात।
पुलकि पुलकि वेपथ अँग प्रीतम उर लपटात।।
हित चिंतक निजु चेरिनु उर आनँद न समात।
निरखि निपट नैंननि सुख तृन तोरतिं बलि जात।।
अति उदार विवि सुंदर सुरत सूर सुकुमार।
(जै श्री) हित हरिवंश करौ दिन दोऊ अचल विहार।।५७।।

भावार्थ—मैं (सर्व) प्रथम अत्यन्त रमणीय श्रीवृन्दावन का अपनी बुद्धि के अनुसार प्रणयन (वर्णन) करता हूँ, जो (वृन्दावन) श्रीराधिका—कृपा के विना प्राय: सभी के मनों के लिये अगम्य (प्रवेश न पा सकने के योग्य) है। जो जमुना जल सिञ्चित है, जहाँ निरन्तर शरद् एवं वसन्त ऋतुएँ रही ही आती हैं और

भ्रमर समूह से युक्त विविध प्रकार के पुष्पों का सौरभ भी छाया रहता है। कहीं लाल लाल आम के पल्लवों पर (बैठे) कोकिल और कीर कूज रहे हैं, तो कहीं अत्यन्त आनन्द से अधीर मयूर समुदाय ही नृत्य कर रहा है।(समस्त वृन्दावन में) रुचि दायक, शीतल एवं सुगन्ध मय पवन मन्द मन्द गति से बह रहा है और जहाँ–तहाँ (जलाशयों में), अरुण, नील एवं श्वेत कमल खिल रहे हैं।

(ऐसे रमणीय वृन्दावन में) अत्यन्त कमनीय कोई नव निकुञ्ज मन्दिर शोभित है; जिसका सेवन निरन्तर ही अपने परिकर के सहित मीन केतु–काम देवों का समुदाय करता रहता है। जहाँ रसिक राशि किशोर श्रीश्यामा श्याम खेलते रहते हैं। आज दोनों (रसिक किशोर) प्रातः काल ही परस्पर वाहु परिरञ्जित (गल बहियाँ दिये) उनींदे उठ पड़े हैं। (श्रीलालजी के) सुन्दर श्याम अङ्ग पर कनक वर्ण का रेशमी वस्त्र शोभित है और कामिनि (श्रीप्रियाजी) के (गौर अङ्ग पर) नील वसन एवं उर कसूँभी कञ्चुकि।

(होली खेल के समय) मधुर मधुर मृदङ्ग ताल, रबाव मुरज एवं डफ बज रहे हैं और इसी प्रकार वंशी और मुखचङ्ग (अपने स्वरों में) रस पूर्ण उक्तियों (नृत्य सम्बन्धी बोलों जैसे ता–ता थेई, ताथेई आदि) एवं गतियों (उरप तिरप सुधङ्ग आदि) की सूचना करते हैं। दोनों (प्रिया प्रियतम) हिल मिलकर गौरी राग के आलाप लेकर चाचरि गान करते एवं परस्पर भौंहों के धनुष तथा दृगों से भी बल पूर्वक (एक दूसरे के) मन रूपी मृगों को बेधते (घायल करते) हैं। पश्चात् दोनों अपने अपने हाथों की ताली पटकते और लटकते मटकते इधर से उधर और उधर से इधर आते जाते हैं एवं अत्यन्त आनन्द से उल्लसित होते हुए (कुलकते हुए) "हो हो होरी" ऐसा बोलते हैं।(होली में) कामिनि (श्रीराधा) रसिक लाल (श्याम सुन्दर) पर बन्दन (सिन्दूर) धूल डालती और प्रियतम ताक ताक कर (दाव घात पूर्वक) उन पर केशर धूल फेंकते और पिचकारी छिड़कते हैं।

फिर कभी कभी वे (युगल किशोर) चन्दन तरु पर तरल हिण्डोल की रचना करते हैं और (उस पर) दोनों जन चढ़कर झूलते एवं प्रसन्न होते हुए किलोलें करते हैं। हिण्डोल की लम्बी झूलों (झँकारों) से (भीरु) कामिनि अधिक अधिक डरती तथा बार बार (भय से) रोमाञ्चित् होकर कम्पित अङ्गों से प्रियतम

के हृदय में लिपट चिपट जाती हैं। (युगल सरकार की इस आनन्द क्रीड़ा के दर्शन से) हित का चिन्तन करने वाली (प्रेममयी) अपनी निज दासियों (सखियों) के हृदय में आनन्द समाता नहीं–उमड़ उमड़ चलता है। वे इस आत्यन्तिक सुख का अपनी आँखों दर्शन करके उस पर तृण तोड़ती[1] और वलिहार जाती हैं।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं–"हे अति उदार और परम सुन्दर युगल किशोर ! हे सुरत क्रीड़ा के शूरवीर सुकुमार युगल वर !! आप दोनों दिन दिन (नित्य निरन्तर) इसी प्रकार अविचल विहार ही करते रहें, (यही हमारा परम सुख है।")

१. तृण तोड़ने का यह भाव है कि यह वस्तु सर्वश्रेष्ठ है एवं इसे किसी की नजर न लग जाय।

(१) टिप्पणी–

"प्रथम जथामति प्रनऊँ श्रीवृन्दावन अतिरम्य।"

इस पंक्ति में प्रनऊँ शब्द का अर्थ अनेकों टीकाकारों ने 'प्रणाम' किया है। मुझे इससे कोई हुज्जत नहीं कि यह अर्थ क्यों ? किन्तु मुझे 'प्रनऊँ' का प्रणाम अर्थ इस पङ्क्ति में जाने क्यों स्वीकार नहीं। मुझे तो इसका अर्थ प्रणयन, वर्णन या अनुशीलन ही जँचा है। ऐसा क्यों ? मैं इसका स्पष्टीकरण करने की कोशिश करूँगा।

अस्तु; 'प्रथम जथामति... रम्य', इस पूरी पङ्क्ति के सरलार्थ पर ध्यान दें और प्रनऊँ का प्रणाम अर्थ लेकर सरलार्थ यह होगा–

'मैं अपनी बुद्धि के अनुसार अत्यन्त रमणीय श्रीवृन्दावन को प्रथम ही प्रणाम करता हूँ।'

यहाँ विचार करने की बात है कि क्या किसी को यथामति (बुद्धि के अनुसार) प्रणाम किया जाता है या हृदय की श्रद्धा के अनुसार ? देखा तो यही जाता है कि लोग बुद्धि के अनुसार प्रणाम नहीं करते वरं श्रद्धा और हृदय के अनुसार करते हैं। प्रणाम मति का विषय नहीं जो यथामति किया जाय। प्रणाम में मति की यथा तथ्यता की कोई आवश्यकता ही नहीं ! ऐसा भी नहीं होता कि

बुद्धिमानों का प्रणाम विशेष और मूर्खों का लघु होता हो। यदि मतिमान् मनुष्य हृदय हीन है; तो उसका प्रणाम भी भाव रहित और केवल शिष्टाचार मात्र ही रह सकता है और यदि मूर्ख मनुष्य भावुक है ; तो वह अपने प्रणाम में हृदय के सम्पूर्ण भावों का योग करके अपने (प्रणाम) (नमन) को भी महान् बना सकता है। अतः कहना होगा कि प्रणाम हृदय श्रद्धा और नम्रता का शरीर क्रिया में परिणत रूप है। जिसका मष्तिष्क से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। तब उक्त पद में 'जथा मति प्रनऊँ' का अर्थ 'यथामति प्रणाम करता हूँ ऐसा न करके 'यथा बुद्धि प्रणयन करता हूँ; ऐसा अर्थ मेरी अल्प मति में अधिक उपयुक्त होगा।

पाठक गण विचार करें–

किसी विषय के वर्णन, प्रकाश या उल्लेख करने का नाम प्रणयन है। यह प्रणयन शब्द संस्कृत व्याकरण की पृण् धातु से बना है; जिसका अर्थ है–

यन् प्रत्यय है। पश्चात् इस धातु से अनेकों शब्दों की सृष्टि हुई, यथा–प्रणयन्, प्रणेता, प्रणीत आदि। जब यह कहा जाता है कि अमुक सज्जन इस ग्रन्थ के प्रणेता हैं या यह ग्रन्थ अमुक द्वारा प्रणीत है; तो इसका यही अर्थ समझा जाता है कि वे इस ग्रन्थ के लेखक हैं या यह ग्रन्थ अमुक महाशय के द्वारा लिखा गया है। तब प्रणेता या प्रणीत का अर्थ लेखक और लिखित ही किया जाता है इसी प्रकार 'मैंने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है' इसका भी यही अर्थ है कि मैंने इस ग्रन्थ का वर्णन, अनुशीलन या लेखन किया है जो मेरी अपनी बुद्धि के अनुसार हुआ है। ऐसी दशा में यथामति प्रणयन या 'जथामति प्रनऊँ' कुछ ठीक ठिकाने सा दिखता है। अब पाठक 'प्रनऊँ' का प्रणयन पर्याय करके उक्त पङ्क्ति का अर्थ लगा जावें–

'प्रथम जथा मति प्रनऊँ श्रीवृंदावन अति रम्य'

अर्थ–"मैं प्रथम अपनी बुद्धि के अनुसार अत्यन्त रमणीय श्रीवृन्दावन का प्रणयन (वर्णन) करता हूँ।"

अब 'प्रणऊँ' शब्द का प्रणयन या वर्णन–अर्थ लेकर कार्य्य कारण सङ्गठित बुद्धि से सम्पूर्ण पङ्क्ति का सङ्गठन देखिये कि कितना उपयुक्त है यह प्रणयन या वर्णन अर्थ–

पहले कहा जा चुका है कि प्रणयन या वर्णन यथा मति किया जाता है क्योंकि वर्णन, अनुशीलन या प्रणयन से बुद्धि या मष्तिष्क का सम्बन्ध है। जिसके पास जैसी बुद्धि होगी वह उसी के अनुसार किसी भी विषय का वर्णन–प्रणयन कर सकेगा। हृदय से सम्बन्ध रखने वाले भाव प्रधान विषयों के वर्णन में भी कर्त्तव्य कार्य्य तो बुद्धि का ही होता है। भाव हृदय के होते हैं पर शब्द योजना और विषय का प्रकाश तो मष्तिष्क ही अपने अनुसार करता है; वहाँ पर हृदय का कोई कार्य नहीं रहता। और यदि हृदय भावुक और सरस भी है पर वर्णन करने के लिये मति नहीं है तो वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्ततोगत्वा कहना पड़ेगा कि 'यथामति प्रनऊँ' का 'बुद्धि के अनुसार वर्णन करता हूँ' यही अर्थ अधिक सुसङ्गठित है।

(२) टिप्पणी–

दोउ मिलि चाँचरि गावत गौरी राग अलापि।
मानस मृग बल बेधत भृकुटि धनुष दृग चापि।।

इनमें प्रथम पंक्ति के 'अलापि' को कई प्राचीन प्रतियों में अलाप लिखा गया है और तदनुसार दूसरी पङ्क्ति के 'चापि' को चाप। इसी से छन्द के अर्थ में बड़ा भारी अन्तर आ जाता है। पहली पङ्क्ति में 'अलाप' एक संज्ञा है और 'अलापि' है पूर्व कालिक क्रिया; जिसका अर्थ है–आलाप कर या अलाप लेकर। अब दूसरी पंक्ति में चाप होना चाहिये या 'चापि' इस पर विचार करें–

पूर्व पंक्ति के 'अलापि' तुकान्त के अनुसार चापि ही ठीक है किन्तु अर्थ और भावार्थ के विचार से भी यह चापि ठीक है या नहीं; यह विचारणीय है।

'मानस मृग बल बेधत भृकुटि धनुष दृग चापि'

इसका अर्थ करते समय कई टीकाकारों ने 'चापि' का अर्थ वाण करके भृकुटि धनुष में दृग वाण के चढ़ाये जाने का आशय सिद्ध किया है, किन्तु जहाँ तक शब्द संसार का विस्तार है, वहाँ तक चापि का अर्थ वाण नहीं है, ऐसा मेरा स्मरण और आग्रह है। तब 'चापि' का वाण अर्थ करके पङ्क्ति को सही बिठा लेना कुछ और बात है। एक प्राचीन टीकाकार लिखते हैं–

अहौ प्यारी जू। या खेलि विषै तुम्हारी भाइ भरी भृकुटी हैं, सोई तौ धनुक हैं, और नेत्र हैं सोई चापि है। तिनमें कटाक्ष हैं, सोई बान हैं। तिन करि प्रीतम के मन रूपी मृग कौं वलात्कार सौं बेधौ हौ। हेत यह कै प्रीतम कौं प्रेम सौं रस बस करौ हौ। इति।।

इस अर्थ में चापि का अर्थ डोरी किया जा सकता है जो धनुष पर वाण खींचने के लिये होती है। किन्तु टीका में भी ज्यों का त्यों चापि रख दिया गया है। टीकाकार का भाव चापि के लिये धनुष का ही है, या डोरी का या वाण का कुछ समझ में नहीं आ रहा है। वैसे तो चाप का सरलार्थ धनुष ही सर्वत्र किया जाता है। इस न्याय से भृकुटि धनुषों पर दृग धनुषों (चाप) का चढ़ाना कैसे सम्भव है ?

चापि का अर्थ व्याकरण के अनुसार च+अपि=चापि; च=और अपि=भी अर्थात् चापि=और भी विशेष, अधिक ऐसा मान लिया जाय तो 'मानस मृग. .. चापि' इस पङ्क्ति का अर्थ निम्न प्रकार से गठित होगा–

(श्रीप्रियाजी, श्रीलालजी के) मानस मृग को वल पूर्वक (मानस मृग वल) बेध रही (बेधत) हैं, भृकुटि रूप धनुष एवं विशेष दृगों से, (भृकुटि धनुष दृग चापि।)

अब यह प्रश्न होता है कि वे विशेष दृग (दृग चापि) क्या हैं ? उनका परिचय लीजिये–

खंजन मीन मृगज मद मेंटत, कहा कहौं नैंननि की बातैं।
सुनि सुंदरी कहाँ लौं सिखई, मोहन बसीकरन की घातैं।।
बंक निसंक चपल अनियारे अरुन स्याम सित रचे कहाँ तैं।
डरत न हरत परायौ सर्वसु मृदु मधुमिव मादिक दृग पातैं।।

इसी उक्त पद की छाया लेकर पीयूष वर्षी विहारी ने एक सूत्र लिख दिया–

अमी, हलाहल, मद भरे; स्वेत, स्याँम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत; जेहिं चितवत इक बार।।

ये हैं वे दृग चापि (विशेष आँखें) जिनसे लालजी का मन मृग बेधा गया—

वह चितवनि औरै कछू जेहिं बस होत सुजान।

अस्तु; यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ऐसी कितनी ही उपमाएँ हैं, जहाँ उपमा और उपमेय दोनों को एकत्र करने की आवश्यकता नहीं रहती। केवल एक के ही रख देने से दोनों का काम चल जाता है।

देखिये—

नेत्रान्तस्ते विकीर्णाद्भुत कुसुम धनुश्चण्ड सत्काण्ड कोटिः।

—श्रीराधा सुधा निधि

अर्थात् "आपके नेत्र कोणों से पुष्प धन्वा कामदेव के कोटि कोटि प्रचण्ड शर विखरते रहते हैं।"

यहाँ केवल 'कुसुम धनुः तो वताया किन्तु वाणों का विशेषण 'चण्ड' और संख्या सत्काण्ड कोटि' कहकर सङ्केत कर दिया गया। इसी प्रकार हित चौरासी के इक्यावनवें पद में केवल बहुत सी उपमाएँ दी गयी हैं उपमेय का पता तक नहीं है पर वे सब उपमेय उपमाओं के सहारे पकड़ में आ जाते हैं,

नव नारंग कनक हीरावलि विद्रुत सरस जलज मनि गोरी।
पूरित रस पीयूष जुगल घट कमल कदलि खंजन की जोरी।।

कहने का तात्पर्य यह कि "चापि" का विशेष (खास) ऐसा अर्थ लेकर पंक्ति का अर्थ करने से कोई खास आपत्ति नहीं आती। जैसी कि चापि का वाण अर्थ लेने में आती है।

कहीं कहीं 'चापि' का अर्थ चँपा कर या चाँप (दबा) कर ऐसा लिया गया है और सम्पूर्ण पङ्क्ति को यों बिठाया गया है—

अपनी भृकुटि धनुषों से दृग [रूपी वाण] दबाकर (चँपाकर) वे (प्रियाजी) वलात्कार पूर्वक (लालजी के) मानस मृग का वेधन कर रही हैं।

यहाँ दृगों को वाण माना गया है; चूँकि वाण के लिये कोई शब्द नहीं है। 'चापि' का दबाकर अर्थ भी उपयुक्त है पर चापि का वाण पर्याय तो कुछ जँचता ही नहीं। जिन्होंने चापि का पर्याय वाण लिखा; तो क्यों लिखा? वही जानें।

– ५८ –

अवतरण – शरद् की सुहावनी रात्रियों में जब प्रिया प्रियतम के मिलन की सुख घड़ियाँ हों, नायक का मन मसोस देने वाले नायिका मान की कल्पना भी कितनी दुःख प्रद है; रसज्ञ जन जानते हैं। आज श्रीप्रियाजी मानवती हैं। हित सखी जी मनाते मनाते थक सी गयी हैं। उन्होंने लाख प्रयत्न किये पर प्रियाजी का मान न टूटा, अन्त में कहना पड़ा–"राधिके ! जानती हो इस मान का परिणाम क्या होगा ? मैंने जो तुमसे प्रियतम की दशा कही है, उसे केवल दूती के उद्दीपन वाक्य समझ कर टाल रही हो ! वे तो तुम्हारे बिना अपने जीवन और यौवन को भी नगण्य मान बैठे हैं–उनसे उदास हो चुके हैं। जाकर तुम्हारे न आने का सन्देश कहने का विलम्ब है। फिर क्या होगा..... ?"

सखी अञ्चल में मुँह ढाँप फफक कर रो पड़ी। अब मानिनि ने समझी, बड़ी देर में वस्तु स्थिति। तब कहीं मान टूटा।

श्रीहित सखी ने कहा श्रीराधा मानिनि से–

गौरी

मूल–तेरे हित लैंन आई, बन ते स्याम पठाई;
हरति कामिनि घन कदन काम कौ।
काहे कौं करत बाधा, सुनि री चतुर राधा;
भैंटि कैं मैंटि री माई प्रगट जगत भौ।।
देखि री रजनी नीकी, रचना रुचिर पी की;
पुलिन नलिन नभ उदित रौंहिनी धौ।
तू तौऽब सयानी; तैं मेरी एकौ न मानी;
हौं तोसौं कहत हारी जुवति जुगति सौं।।
मोंहनलाल छबीलौ, अपने रंग रँगीलौ;
मोहत विहंग पसु मधुर मुरली रौ।
वे तौऽब गनत तन जीवन जौवन तब;
(जै श्री) हित हरिवंश हरि भजहि भामिनि जौ।।५८।।

भावार्थ–(हित सखी ने कहा–) "हे कामिनि ! मैं तो केवल तेरे ही कारण (प्रेम वश) तुझे लेने आयी हूँ; मुझे श्याम सुन्दर ने वन से यहाँ भेजा है, तब आप अब चल कर काम की सघन पीड़ा का हरण क्यों नहीं करतीं ? अरी चतुर राधा ! सुन तो सही,(तू ये) अकारण (व्यर्थ) बाधाएँ क्यों उपस्थित करती है ? सखी ! श्रीलालजी से मिलकर जगत् के भय को प्रकट रूप से मिटा डाल। अरी ! देख तो सही, कैसी सुन्दर रास रचना प्रियतम ने की है, कितनी नीकी रात है ? यमुना पुलिन पर कमल खिल रहे हैं और आकाश में रोहिणी पति चन्द्रमा भी उदित है। सखी ! वैसे तो तू बड़ी सयानी (चतुर) है पर तूने आज मेरी एक न मानी ! अरी युवति ! मैं तो सौ सौ युक्तियों के साथ (वे बातें) तुझसे कह कर हार गयी।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र (सखी भाव से) कहते हैं–"हे भामिनि ! मोहन लाल एक तो छबीले हैं दूसरे अपने रङ्ग में रँगीले भी; तिस पर फिर वे मुरली के मधुर स्वर से पशु पक्षियों तक को भी मुग्ध (मोहित) करने वाले हैं। यदि तुम आज चलकर उनका सेवन करोगी तो ही वे अब अपने जीवन और यौवन को कुछ गिनेंगे, (कुछ समझ कर रखना चाहेंगे;) अन्यथा नहीं।

टिप्पणी–

हरि भजहि भामिनि जौ

यहाँ भजहि का भावार्थ 'सेवन करना' ऐसा है; भजन पूजन नहीं। यह शब्द भज् सेवायाम् धातु से बना है अतः सेवन करने का तात्पर्य है यहाँ, प्रियतम को रस दान पूर्वक मिलन सुख देने से।

इस रस विलास प्रकरण में भजन क्रिया का लक्षण कुछ और है। श्रीप्रियाजी प्रियतम का भजन करें इसका अर्थ है वे चलकर उनकी विरह ज्वाला, काम पीड़ा शान्त करें।

फिर जब मिलन होकर परस्पर में–

सरस गति हास परिहास आवेस बस,
दलित दल मदन बल कोक रस कामिनी।

(जै श्री) हित हरिवंश सुनि लाल लावन्य भिदे,
प्रिया अति सूर सुख सुरत संग्रामिनी।।

क्रीड़ा प्रारम्भ होती है, तब इस रस विलास प्रकरण का भजन समझा जाता है–भजन क्रिया सम्पन्न होती है।

– ५९ –

अवतरण–अब एक सैद्धान्तिक पद के द्वारा जगत् मिथ्यात्व प्रकाश के साथ श्रीश्यामा श्याम के चरणों की सत्यता का निरूपण करते हैं। इन सत्य स्वरूप चरणों की सत्यता चरणों की प्राप्ति में श्रीश्यामा श्याम के तदीय जन ही प्रधान हेतु है अतएव उनका ही चरणाश्रय महान् और उचित है तथा इस काल व्याल ग्रस्त जगत् से छुड़ा लेने वाला है।

अब जो लोग अपने मन को अनेकों स्थानों में नचाते किन्तु युगल सरकार में नहीं लगाते वे कितनी बड़ी भूल कर रहे हैं। उनकी न तो कहीं स्थिति है और न वे सुखी ही हैं। क्योंकि सच्चा सुख तो युगल किशोर के रसिक जनों के श्रीचरणों में है और वही मुमुक्षु जनों के लिये आश्रय ग्रहण करने योग्य हैं। श्रीहिताचार्य्य चरण इस पद में इसी सिद्धान्त का निरूपण कर रहे हैं–

गौरी

मूल–यह जु एक मन बहुत ठौर करि, कहु कौनें सचु पायौ।
जहँ तहँ विपति जार जुवती लौं, प्रगट पिंगला गायौ।।
द्वै तुरंग पर जोरि चढ़त हठि, परत कौन पै धायौ।
कहिधौं कौन अंक पर राखै, जौ गनिका सुत जायौ।।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रपंच बंच सब काल व्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि स्याम स्यामा पद कमल संगि सिर नायौ।।५९।।

[यह पद ओरछे के स्वनाम धन्य पण्डित प्रवर श्री हरिराम जी 'व्यास' के प्रश्न के उत्तर में कहा गया था, जिससे प्रभावित होकर व्यासजी श्री आचार्यपाद के शिष्य हो गये। इसी पर उन्होंने कहा है–श्रीहरिवंश कृपा करी, मिटे व्यास के संस।।]

भावार्थ – इस एक मन को बहुत स्थानों पर लगाकर कहो किसने सुख पाया? उस (बहुत जगह मन को नचाने वाले) को तो जार युवती (व्यभिचारिणी) की भाँति जहाँ तहाँ दुःख ही दुःख है, पिङ्गला वेश्या ने इसका स्पष्ट गान किया है। दो घोड़ों को एक साथ जोड़ कर भला हठ पूर्वक उन दोनों के ऊपर कौन बैठ कर उन्हें दौड़ा सकता है ? तुम्हीं बताओ गणिका से उत्पन्न पुत्र को कौन पिता अपनी गोद में ले (अर्थात् वह किसका पुत्र कहा जाय ?)

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं यह विश्व प्रपञ्च एक दम झूठा है–असत् है और काल सर्प से ग्रसित है (अर्थात् अवश्य विनाशी है;) ऐसा अपने हृदय में समझ कर मैंने श्रीश्यामा श्याम पद कमल सङ्गी–रसिक भक्त जनों को अपना मस्तक झुका दिया अर्थात् उनके प्रति समर्पण पूर्वक मैंने उनका ही एक मात्र चरणाश्रय ग्रहण किया है।

टिप्पणी–

"प्रगट पिंगला गायौ"

सुख मन की एकाग्रता में है, इधर उधर भटकाने में नहीं। पिङ्गला नाम की वेश्या अमलात्मा ब्रह्म ज्ञानियों की नगरी विदेह नगरी जनक पुर की निवासिनि होकर भी वेश्या वृत्ति से जीवन यापन करती थी। वह अपने सुख रूप आत्म तत्व को न जान कर पर पुरुषों में सुख ढूँढ़ती थी। एक दिन वह व्यभिचारिणी अर्ध रात्रि तक अनेक़ पुरुषों की प्रतीक्षा करती रही पर उस दिन उसके पास कोई भी न आया, तब वह बहुत दुःखी और निराश हुई। अब उसे अपने सुख रूप आत्मा का ध्यान हुआ। उसने इसी शोक अज्ञान ओर भूल के लिये जो पश्चाताप किया है, वह पिङ्गला गीत के नाम से श्रीमद्भागवत में वर्णित है उसे हम यहाँ अविकल रूप में उद्धृत करते हैं उस पिङ्गला ने कहा–

अहो मे मोह विततिं पश्यता विजितात्मनः।
या कान्तादसतः कामं कामये येन वालिशा।।
सन्तं समीपे रमणं रति प्रदं,
वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय।

अकामदं दु:ख भयाधि शोक,
मोह प्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा।।
अहो मयाऽऽत्मा परितापितो वृथा
साङ्केत्य वृत्याति विगर्ह्य वार्त्तया।
स्त्रैणन्नराद्यार्थ तृषोऽनुशोच्या–
–त्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती।।
यदास्थिभिर्निर्मित वंश वंश्य
स्थूणं त्वचा रोम नखैः पिनद्धम्।
क्षरन्नवद्वारमगार मेत–
द्विण्मूत्र पूर्ण मदुपैति कान्या।।
विदेहानां पुरे ह्यास्मिन्नहमेकैव मूढ़ धीः।
यान्यमिच्छन्त्यस्मादात्मदात्काममच्युतात्।।
सुहृत्प्रेष्ठ तमो नाथ आत्माचायं शरीरिणाम्।
तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा।।
कियत्प्रियं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः।
आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा काल विद्रुताः।।
नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा।
निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः।।
मैवं स्युर्मन्द भाग्यायाः क्लेशा निर्वेद हेतवः।
येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति।।
तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्य सङ्गताः।
त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम्।।
सन्तुष्टा श्रद्धधत्येतद्यथा लाभेन जीवती।
विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै।।
संसार कूपे पतितं विषयै र्मुषिते क्षणम्।
ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः।।
आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात्।
अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत्।।

श्रीमद्भागवत स्क०११अ०८ श्लोक ३० से ४२ तक

अर्थात् (पिङ्गला ने कहा–) "अहो ! मुझ इन्द्रिय परायणा के मोह का विस्तार तो देखो, जो मैं मूर्खा इन तुच्द एवं असदबुद्धि कामियों से सुख की कामना करती हूँ। अरे ! मैं बड़ी बुद्धिहीन हूँ, जो अपने समीप ही रमण करने वाले तथा नित्य रति और धन के देने वाले इन प्रियतम सत्पुरुष परमेश्वर को छोड़ कर कामना पूत्ति में असमर्थ तथा दु:ख, भय, राग शोक और मोह आदि देने वाले इन तुच्छ पुरुषों को भजती हूँ। अहो! मैंने इस अति निन्दनीय आजीविका–वेश्यावृत्ति से व्यर्थ ही अपने आत्मा को तपाया। हाय ! मैं इन स्त्री लम्पट, अर्थ लोलुप और अनुशोचनीय पुरुषों द्वारा खरीदे हुए शरीर से रति और धन की इच्छा करती थी। जो अस्थिमय टेढ़े तिरछे बाँसों एवं थूनियों से बना है, त्वचा, रोम और नखों से पूर्ण है तथा नाशवान भी है। मल और मूत्र से तो भरा ही है। जो नव द्वारों वाला घर रूप देह है उसका मेरे सिवाय और कौन सेवन करेगी। इस विदेह नगरी में एक मैं ही ऐसी मूर्खा और दुष्टा हूँ, जो इन आत्म प्रद अच्युत परमात्मा को छोड़ कर किसी अन्य से अपनी कामना पूर्ण कराना चाहती हूँ। ये सब शरीर धारियों के सुहृद, प्रियतम, स्वामी और आत्मा हैं; अब मैं इनके ही हाथ बिककर लक्ष्मीजी के समान इन्हीं के साथ रमण करूँगी।"

(फिर वह अपने आप को सम्बोधन करके कहने लगी–)" अरी ! ये जो भोग और भोगों के देने वाले पुरुष हैं इन्होंने तेरा कितना प्रिय साधन किया ? अथवा और भी आदि अन्त वाले पुरुष तथा काल से भयभीत देव गण हैं वे भी अपनी स्त्रियों को कितना सन्तुष्ट कर पाते हैं ? अवश्य ही मेरे किसी शुभकर्म से श्रीभगवान् प्रसन्न हुए हैं, जिससे कि इस दुराशा से मुझको ऐसा सुखकारक वैराग्य उत्पन्न हुआ है। यदि मेरा भाग्य मन्द होता तो मुझको ये कष्ट न उठाने पड़ते जो वैराग्य के हेतु हैं; जिसके द्वारा जीव गृह आदि के बन्धनों को काटकर शान्ति लाभ करता है, अतः अब मैं इस उपकार को शिरोधार्य कर विषय जनित दुराशा को छोड़ उस जगदीश्वर की ही शरण में जाती हूँ। अब मैं सन्तोष और श्रद्धा पूर्वक प्रारब्ध वश जो कुछ मिलेगा उसी से जीवन निर्वाह करंती हुई इस आत्म रूप प्रियतम (रमण) के साथ ही विहार करूँगी। संसार कूप में पड़े हुए विषय वासनाओं से नष्ट दृष्टि और काल रूपी सर्प से डसे हुए इस आत्मा (जीव) की रक्षा केवल परमात्मा को छोड़ कर और कर ही कौन

सकता है ? जिस समय जीव सम्पूर्ण विषयों से उपरत हो जाता है, उस समय वह स्वयं ही अपना रक्षक हो जाता है, अतः प्रमाद रहित होकर इस जगत को निरन्तर काल रूपी सर्प से ग्रस्त हुआ देखे।"

अस्तु; उक्त उद्धरण में बहुत स्पष्ट है कि पिङ्गला ने अपने मन को अनेकों जारों में लगाकर अशान्त बना डाला और पश्चात् उपरत होकर उसने उस मन को अपने आत्मा में एक जगह स्थिर किया तब सुखी हुई। उसके मन की एकाग्रता ही सुख का कारण बनी।

इस एक उदाहरण से प्रत्येक वहुमुखी मन वाले साधक, उपासकों को उपदेश किया गया है जो युगल किशोर किंवा अपने किन्ही भी इष्ट देव की उपासना प्रेम मार्ग से करना चाहते हैं; वे अपने मन को बखेरें नहीं वरं एकत्र करके–सँमेट कर उसे अविचल भाव से अपने प्रभु के चरणों से बाँध दें।

(२) टिप्पणी–

द्वै तुरंग पर जोरि चढ़त हठि परत कौन पै धायौ।
कहिधौं कौन अंक पर राखै जो गनिका सुत जायौ।।

जैसे दो घोड़ों पर कोई एक साथ नहीं बैठ सकता, इसी प्रकार अनेक स्थानों पर मन भी एक साथ नहीं लगाया जा सकता अर्थात् परमार्थ और संसार दोनों एक साथ नहीं हो सकते सादृश्यता से। किसी एक का महत्व तो कम होगा ही। यह संसार और संसार की वस्तुओं में मन का लगाना ही परमार्थ या प्रेम पथ का व्यभिचार है। मन को इस व्यभिचार वृत्ति से निकाल कर एक निष्ठ करना होगा।

व्यभिचारी मन गणिका के बेटे की तरह है। गणिका पुत्र किस बाप का बेटा है निश्चित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार अनेक देवी देवताओं का उपासक वास्तव में किस एक देवता का है क्या पता? ऐसी दशा में जबकि वह एक साथ अनेकों का है, उसका मन भी अविचल भाव से एक किसी में नहीं लग सकता।

अब विचारणीय यह है कि इस एक मन को अनन्य भावेन कहाँ स्थिर रूप से लगा देना चाहिये और कहाँ नहीं ? दो वस्तुएँ सामने हैं एक काल सर्प ग्रसित संसार और दूसरे नित्य विहारी प्रेम स्वरूप श्रीराधावल्लभ। इसका उत्तर श्रीहिताचार्य्य पाद इसी पद की अन्तिम दो पङ्क्तियों में दे रहे हैं–

हित हरिवंश प्रपंच बंच सब काल व्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि स्याम स्यामा पद कमल संगि सिर नायौ।।

श्रीश्यामा श्याम के चरण कमल सङ्गियों का ही सङ्ग करना जीव का परम धर्म है। इसे प्राप्त करके वह मानो श्यामा श्याम का प्रेम पा गया। अतः विश्व प्रपञ्च की स्मृति भुलाकर अनन्य भाव से केवल हित मय श्रीराधा वल्लभलाल का ही हो रहे।

— ६० —

अवतरण– श्रीप्रियाजी का रूप सौन्दर्य्य एक अपार और अथाह सागर है किंवा सुमेरु गिरि है अथवा वह अवर्णनीय वस्तु है जिसका पार कोई और तो कहकर पावेगा ही क्यों स्वयं अखिल लोक नायक, रसिक चूड़ामणि,परात्पर ब्रह्म, अनन्त शक्ति भगवान्–श्रीकृष्ण भी नहीं पा सकते। वे केवन उनके रूप को देखा करते हैं, अनिमेष भाव से चकोरवत् किन्तु तृप्ति होती ही नहीं। वे अनन्त रूप होकर उस मुख माधुरी का पान करना चाहते हैं। वे दर्शन के समय पलकों का गिरना भी सह नहीं सकते, कोटि कोटि कल्पों के समान मानते हैं एक पलक मात्र को। स्वयं श्रीलालजी इस पद में अपने हृदय एवं नेत्रों की प्रेमाकुल, रूपाकुल दशा का वर्णन करते हैं श्रीहिताचार्य्य पाद के शब्दों में–

गौरी

मूल–कहा कहौं इन नैंननि की बात।
ये अलि प्रिया वदन अंबुज रस अटके अनत न जात।।
जब जब रुकत पलक संपुट लट अति आतुर अकुलात।
लंपट लव निमेष अंतर ते अलप कलप सत सात।।
श्रुति पर कंज दृगंजन कुच बिच मृग मद ह्वै न समात।
(जै श्री) हित हरिवंश नाभि सर जलचर जाँचत साँवल गात।।६०।।

भावार्थ – (श्रीलालजी अपनी प्रिय सखी हित सजनी से कहते हैं– "सखी !) मैं अपने इन नयनों की क्या बात कहूँ ? ये मेरे नयन भ्रमर श्रीप्रिया मुख कमल के रस में अटक कर अब अन्यत्र कहीं जाते ही नहीं। जब जब कभी ये नयन पलक सम्पुट में अलक लटों के कारण अन्तराय (विक्षेप) प्राप्त करते हैं; तब तब अत्यन्त आतुर होकर घबरा उठते हैं। ये रस लोलुप (नेत्र) लव निमेष काल के अन्तर से भी कम अन्तर को सैकड़ों सैकड़ों कल्पों के समान अनुभव करते हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र कहते हैं कि (श्रीलालजी के नयन श्रीप्रियाजी के) कानों में कमल (आभूषण बनकर) आँखों में अञ्जन और कुचों के बीच में मृग मद बन कर भी नहीं समाते)अर्थात् शान्ति तो पाते नहीं वरं उनके हृदय में रूप और प्रेम की तृषा बढ़ती ही रहती है।) इसलिये श्याम वपु श्रीलालजी उनकी नाभि सरोवर के जलचर मीन बन जाने की याचना कर रहे हैं; (ताकि निरन्तर मीन वृत्ति से श्रीप्रियाजी का रूप रस पान करने के लिये मिला करे, वह मेरा जीवन ही बन गया।)

टिप्पणी–जिस अपार रूप ने श्रीलालजी को परवश कर दिया है, उसकी एक दिशा की ओर श्रीहित ध्रुवदास जी सङ्केत कर रहे हैं; क्योंकि समग्रता से कहने के लिये तो कोई समर्थ ही नहीं। वे कहते हैं–

प्यारीजू की मुसकनि, बीजुरी सी कौंधि जाति;
प्यारेजू के उर ते न रेखा सी टरति है।
भरि भरि आवैं नैंन, कैसेहूँ न पावैं चैंन;
बान की सी अनी हियैं खरक्यौ करति हैं।।
लाड़िली नवेली अलबेली खानि माधुरी की;
सहज सुभाइनि में सर्वसु हरति है।
'हित ध्रुव' नये नये छबि के तरंग उठैं;
रीझि सीस चंन्द्रिका जु पगनु ढ़रति है।

इस अपार रूप को देख देख कर प्रियतम श्याम सुन्दर की क्या दशा हो जाती है वह भी देखिये–

ज्यौं ज्यौं लाल देखें मुख नैननि कौं तृषा होति;
प्यारीजू कौ रूप मानौं प्यास ही कौ रूप है।
डीठि डीठि रही मिलि जैसें एक धारा ध्रुव;
हौंहू भूली देखि दसा अतिही अनूप है।।
कौन रस स्वाद गह्यौ कैसेहूँ न जात कह्यौ;
जानत न छाँह अरु कैसी होत धूप है।
और सुख जेते सब भये हैं पतंग रस–
राज के सुखनि पर प्रेम भान भूप है।।

इसी अनूप रूप पर इस रसोपासना की भित्ति खड़ी है–

नैन पगनि चलिबौ तहाँ जौं ध्रुव बनहि तौ जाइ।।

– ६१ –

अवतरण – आज श्रीश्याम सुन्दर एवं श्रीप्रियाजी अपने समस्त वृन्दावन परिकर सहचरियों के साथ रास क्रीड़ा कर रहे हैं। इन रास परायण श्रीलाल की छबि का ही इस पद में वर्णन है–

गौरी

मूल–आजु सखी बन में जु बने प्रभु नाचत हैं ब्रज मंडन।
वैस किसोर जुवति अंसनु पर दियैं विमल भुज दंडन।।
कोंमल कुटिल अलक सुठि सोभित अबलंबित जुग गंडन।
मानहु मधुप थकित रस लंपट नील कमल के खंडन।।
हास विलास हरत सबकौ मन काम समूह विहंडन।
(जै श्री) हित हरिवंश करत अपनौ जस प्रकट अखिल ब्रह्मंडन।।६१।।

भावार्थ– (श्रीहित अलि ने कहा–)"हे सखी ! आज नव किशोर ब्रज भूषण प्रभु श्रीश्याम सुन्दर तरुणि गणों के कन्धों पर अपने विमल वाहु दण्डों को रखे बन ठन कर वृन्दावन में नाच रहे हैं। उनके दोनों गालों का सहारा लिये कोमल, घुँघराली और काली काली अलकावली बड़ी सुन्दर शोभा पा रही है। (ऐसा ज्ञात होता है) मानो रस लम्पट मंधुप गण नील कमल के दलों पर (या कोष पर) लुभा कर अटक गये हैं।"

"सखी ! वे लालजी अपने हास विलास से सबके मनों का हरण करते हुए काम समूह को तो मानों तितर वित्तर किये दे रहे हैं। (श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु कहते हैं) इस प्रकार वे अपना यश समस्त ब्रह्माण्डों में प्रकट कर रहे हैं।"

— ६२ —

अवतरण—इस पद में केवल ललिता आदि आठ प्रधान सखियों के साथ युगल सरकार के रास नृत्य का वर्णन है। अन्य सखियाँ सम्मिलित नहीं है। वे केवल दर्शिका हैं। रास नृत्य का वर्णन श्रीहित सखी अपनी सखियों से कर रही हैं—

गौरी

मूल— **खेलत रास दुलहिनी दूलहु।**
सुनहु न सखी सहित ललितादिक,
निरखि निरखि नैंननि किन फूलहु।।
अति कल मधुर महा मौंहन धुनि,
उपजत हंस सुताः के कूलहु।
थेई थेई वचन मिथुन मुख निसरत,
सुनि सुनि देह दसा किन भूलहु।।
मृदु पद न्यास उठत कुंकुम रज,
अदभुत बहत समीर दुकूलहु।
कबहुँ स्याम स्यामा दसनांचल—
कच कुच हार छुवत भुज मूलहु।।
अति लावन्य, रूप, अभिनय, गुन,
नाहिन कोटि काम समतूलहु।
भृकुटि विलास हास रस बरषत
(जै श्री) हित हरिवंश प्रेम रस झूलहु।।६२।।

भावार्थ — "हे सखियो ! सुनो न ! ललिता आदिक सखियों के सहित दुलहिनि श्रीराधा और दूलह श्रीलालजी रास क्रीड़ा कर रहे हैं। अरी ! तुम सब

उस रास को अपने नेत्रों देखकर फूल उठो न–परम प्रसन्न हो जाओ ! उस रास में, सूर्य कन्या यमुना के पुलिन पर अत्यन्त सुन्दर मधुर एवं महा मोहन ध्वनि (कङ्कण किङ्किणि, नूपुर, वंशी, ताल, रबाब, मुरज, मृदङ्ग आदि बाजों की) प्रकट हो रही है। दोनों (दुलहिनि एवं दूलह) के मुखों से 'थेई थेई' वचन उच्चरित होते हैं, उन्हें सुन सुन कर तुम अपनी देह सुधि क्यों नहीं भूल रही हो अर्थात् भूल रही हो, क्योंकि रास अत्युत्तम है न !"

(रास नृत्य के समय) "मृदु पद न्यास (पैर पटकने) से केशर की धूल (ऊपर आकाश में) उठ रही है और वायु प्रवाह से वस्त्र भी (किसी रस पूर्ण) अद्भुत गति से फहरा रहे हैं; [अथवा यमुना के दोनों कूलों में अद्भुत रीति से समीर बह रहा है।] कभी–कभी श्याम श्यामा के अधर, केश, उरोज हार एवं भुजमूल को छू देते हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु (सखी भाव से) कहते हैं–''सखियों! दोनों के अत्यन्त लावण्य रूप अभिनय एवं गुणों की समता में कोटि–कोटि काम भी नहीं हैं।''

(अब श्रीहित सखी युगल किशोर के प्रति कहती हैं) "हे रसिक युगल किशोर ! आप इसी प्रकार अपनी भृकुटियों के नर्त्तन पूर्वक हास विलास रस का वर्षण करते हुए (सदा) प्रेम रस में झूलिये।

– ६३ –

अवतरण–श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत रास पञ्चाध्यायी के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णन आता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया का आश्रय लेकर रास रसोत्सव करने की इच्छा की। यह उनका आत्म रमण था। श्रीशुकदेव जी कहते हैं–

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिका।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।।

श्रीमद्भाग० १०/२९/१

अर्थात् "परीक्षित् ! जिन रात्रियों में मल्लिका के फूल खिल उठे थे, शरद् काल की उन श्रेष्ठ रात्रियों को देखकर भगवान् ने भी योगमाया का आश्रय लेकर रमण करने की इच्छा की।"

भगवान् के इच्छा करते ही सम्पूर्ण अनुकूल वातावरण तत्काल तैयार हो गया। चन्द्र देव अपनी सुधा रश्मियों से श्रीवन को अनुरञ्जित करते हुए उदित हो आये, जिससे दिशाएँ विदिशाएँ लाल लाल रङ्ग से जगमगा उठी, उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह अरुणिम बाल चन्द्र अपनी प्रिया से फाग खेलकर मुख में गुलाल मर्षण किये उठ चला आया है। चन्द्रोदय से वन की समस्त लताएँ, ओषधियाँ वृक्ष, विटप, तरु जीवन–रस पाकर लहलहा उठे, लताएँ फूल गयीं। फूलों से सौरभ उधार लेकर पवन उसे ले चला पर भार अधिक होने से धीरे–धीरे ही चलता रहा। उसने समस्त वन को सौरभ से भर दिया। धीरे धीरे चन्द्र देव गगन में आगे बढ़े। प्रकाश और भी उज्ज्वल धवल हुआ। अब तो मानों उनकी किरण डोरियों से एक रश्मि वितान सा तन गया।

तब मन मोहन ने अपनी प्रेम राग–गायिका मनोहर मुरली को अधरों से लगाया। वह अधर सुधा का पान करके मुग्ध कण्ठ से गा उठी मद–विह्वल–कारी मीठी तान। उसे सुना ब्रज की प्रेम मयी बालाओं ने। वे तान की डोर से बँधी श्याम सुन्दर के पास आयीं। फिर आगे क्या क्या हुआ वह सब श्रीहिताचार्य्य चरण बता रहे हैं–

गौरी

मूल–मोहन मदन त्रिभंगी।
मोहन मुनि मन रंगी।।
मोहन मुनि सघन प्रगट परमानँद गुन गंभीर गुपाला।
सीस किरीट श्रवन मनि कुंडल उर मंडित बन माला।।
पीतांबर तन धातु विचित्रित कल किंकिनि कटि चंगी।
नख मनि तरनि चरन सरसीरूह मोहन मदन त्रिभंगी।।
मोहन बैंनु बजावै।
इहिं रव नारि बुलावै।।

आईं ब्रज नारि सुनत बंसी रव गृह पति बंधु बिसारे।
दरसन मदन गुपाल मनोहर मनसिज ताप निवारे।।
हरषित वदन बंक अवलोकनि सरस मधुर धुनि गावै।
मधुमय स्याँम समान अधर धरैं मोहन बैंनु बजावै।।
रास रच्यौ बन माँही।
विमल कलप तरु छाँहीं।।
विमल कलपतरु तीर सुपेशल सरद रैंन वर चंदा।
सीतल मंद सुगंध पवन बहै तहाँ खेलत नंद नंदा।।
अदभुत ताल मृदंग मनोहर किंकिनि शब्द कराहीं।
जमुना पुलिन रसिक रस सागर रास रच्यौ बन माँही।।
देखत मधुकर केली।
मोहे खग मृग बेली।।
मोहे मृगधैंनु सहित सुर सुंदरि प्रेम मगन पट छूटे।
उडगन चकित थकित ससि मंडल कोटि मदन मन लूटे।।
अधर पान परिरंभन अति रस आनँद मगन सहेली।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक सचु पावत देखत मधुकर केली।।६३।।

भावार्थ–मोहन मदन का भी संमोहन करने वाले ललित त्रिभङ्गी है, वे मुनियों के भी मन को आनन्दित करने वाले हैं। ये मुनि मन मोहन गोपाल गुणों में गम्भीर और परम आनन्द की प्रकट रूप से श्रेष्ठ घनीभूत मूर्त्ति हैं। अहो ! उनके मस्तक पर किरीट, कानों में मणिमय कुण्डल और वक्षस्थल पर वनमाला शोभित है एवं सुन्दर कटि देश पर मधुर करधनी विराज रही है। कमल जैसे चरणों के नख सूर्यकान्त मणि की भाँति जगमगा रहे हैं, ऐसे सुन्दर हैं ये मोहन मदन त्रिभङ्गी।

वे मन मोहन मुग्ध करने वाली वंशी बजा रहे हैं और वंशी के मीठे स्वर से (ब्रज) नारियों को बुला रहे हैं। उस वंशी का मधुर स्वर सुनते ही ब्रज नारियाँ अपने अपने घर, पति, एवं बंधुओं (कुटम्बीजनों) को भूलकर (मोहन के पास) आ गयीं। उन्होंने मनोहर मदन गोपाल का दर्शन करके काम ताप का निवारण किया। (ब्रज बालाओं ने दर्शन किया कि श्याम सुन्दर अपने) प्रसन्न वदन हैं,

उनकी चितवन कुछ तिरछी अवलोकन से युक्त है और वे सरस तथा मधुर ध्वनि से वंशी में कुछ गा रहे हैं। इस तरह ये मधुमय श्याम सुन्दर मोहन वेणु को अपने अधरों पर समान रूप से धारण किये बजा रहे हैं।

अब उन्होंने वृन्दावन के विमल कल्पवृक्ष के नीचे रास रचना की। एक तो पवित्र कल्पतरु, दूसरे यमुना का सुन्दर तट, शारदीय रात्रि, और तिस पर परम सुन्दर चन्द्रदेव। शीतल और सुगन्ध पूर्ण पवन मन्द मन्द बह रहा है ऐसे रम्य स्थल में नन्द नन्दन रास खेल रहे हैं। उस रास में अद्भुत ताल और मनोहर मृदङ्गों के साथ किङ्किणियाँ भी मधुर और मनोहर शब्द कर रही हैं। श्रीवृन्दावन यमुना पुलिन पर रसिक नन्द नन्दन ने इस रस सागर रास की रचना की है।

इस केलि को, मधु पान करने वाले रसिक भ्रमर देख रहे हैं और उस पर पशु पक्षी, लता वेलि सभी मुग्ध हैं। इन मोहित मृग और धेनुओं के साथ सुर नारियाँ भी मोहित हो गयीं और प्रेम मग्न हो जाने के कारण उनके वस्त्र आदि भी (छूट छूट कर) अङ्गों से खिसकने लगे। आकाश में तारागण (रास देखकर) चकित हो गये, चन्द्र मण्डल थकित हो गया। और कोटि कोटि काम देवों के मन भी लूट लिये मन मोहन ने। आनन्द मग्न हो गयीं सहेलियाँ, अधरामृत के पान एवं आलिङ्गन के अत्यन्त रस से।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं कि इस मधुकर केलि (अर्थात् रसिक भ्रमर रूप श्रीलालजी की रास क्रीड़ा) को देखकर रसिक (इस दिव्य रस के आस्वादन करने वाले रसिक प्रेमी जन किंवा सखियाँ, वृन्दावन का परिकर आदि) सुख पा रहे हैं।

टिप्पणी—यह श्रीमद्भागवत वर्णित रास पञ्चाध्यायी के भावों से तो मिलता ही है अपितु कहीं कहीं तो श्लोकों के शब्दार्थ और उनकी शृङ्खला तक पायी जाती है। इससे कहा जा सकता है कि इसमें श्रीहिताचार्य्य पाद ने नित्य रास का नहीं वरं महारास का वर्णन किया है किन्तु श्रीमद्‌भागवत के महारास और आचार्य्य वर्णित इस पद में एक अन्तर यह है कि श्रीमद्भागवत में अनेक गोपियों के साथ श्रीकृष्ण ने अनेक रूप धारण किये हैं पर यहाँ श्रीकृष्ण केवल

एक राधा प्रियतम ही हैं। इसका कारण यह है कि आचार्य्य पाद के इष्टाराध्य श्रीराधावल्लभ लाल—श्रीकृष्ण, एक नारी व्रती पति और दक्षिण नायक है किन्तु श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण जार, उपपति बहुनायक और प्रेमास्पद हैं।

चूँकि यहाँ पर श्रीआचार्य्य पाद ने महा रास का वर्णन श्रीमद्भागवतानुसार ही किया है किन्तु फिर भी एक बात लक्ष्य में रखने की है कि सर्वत्र आपका लक्ष्य रस और रसिकता ही है। यहाँ तक कि आप उस रसिकता को रस विलास को मार्ग और अपमार्ग में भी खोज निकालते हैं तथा उसके प्रमाण भी ले लेते हैं मूढ़ पशु पक्षी कीट पतङ्गों से तब फिर ब्रज लीला या महारास में उन्हें रस का दर्शन नहीं होगा क्या ऐसा सम्भव है ? उन्होंने रस को कहाँ तक नीचे उतर कर देखा है; आप देखिये—

प्रीति न काहु की कानि विचारै।
मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै।।
ज्यौं साँवन सरिता जल उमगत सनमुख सिंधु सिधारै।
ज्यौं नादहि मन दिये कुरंगनि प्रगट पारधी मारै।।
जै श्री हित हरिवंश हिलग साऱँग ज्यौं सलभ सरीरहिं जारै।

फिर जो लोग महाप्रभु के सिद्धान्त पर व्रज और निकुञ्ज का झगड़ा (विवाद) खड़ा करते हैं उन्होंने शायद श्रीहिताचार्य्य के मर्म बेधन की ओर लक्ष्य नहीं किया है। वे व्यासजी के इस वाक्य को समझें—

"हुतौ रस रसिकन कौ आधार"

स्वयं आचार्य्य पाद इस पद की वर्णना में जो शब्द रखते हैं वे दृष्टव्य हैं, साथ साथ लक्ष्य में लाने योग्य हैं—

(१) रसिक रस सागर रास रच्यौ बन माँहीं।

(२) अधर पान परिरंभन अति रस, आनँद मगन सहेली।

(३) रसिक सचु पावत..............

पद का अन्तिम वाक्यांश 'रसिक सचु पावत' स्पष्ट कर रहा है कि यह महा रास केलि रसिक जनों के रस आस्वादनार्थ है, उनकी अपनी वस्तु है।

इसका वर्णन भी रस आस्वादनार्थ किंवा रस वर्णन के लिये है कोई व्रज लीला वर्णन इसका लक्ष्य नहीं। यह तो निर्विवाद है कि लक्ष्य की गति पर से ही वर्णन की गति जानी जाती है। अब यहाँ यह जानना चाहिये कि महारास का वर्णन होने पर भी इस पद में रस का ही वर्णन है।

श्रीहिताचार्य्य पाद ने श्रीमद्भागवत में से भी अपनी इष्ट वस्तु रस कैसे और कहाँ से खोज निकाली है ? उसे देखिये, यहाँ प्रसङ्गानुसार यथा क्रम श्रीमद्भागवत से इस पद के भावों का सामञ्जस्य प्रकट किया जाता है–

(१) **'मौंहन बैंनु बजावै'** इस भाव का प्रकाश निम्न चरण से मिलता है–

जगौ कलं वाम दृशां मनोहरम्।

श्रीमद्भागवत१०/२९/३

अर्थात् "वंशी में वाम दृशा गोपियों के मन का हरण करने वाला गीत (श्याम सुन्दर ने) गाया।" जिसे सुनकर ब्रज बालाएँ आ गयीं।

(२) **"आई व्रज नारि सुनत वंसी रव"**

अब इसका भाव साम्य श्रीमद्भागवत में किस प्रकार है उसे देखिये–

निशम्य गीतं तदनङ्ग वर्द्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः।
आजग्मु रन्योन्यमलाक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जव लोल कुण्डलाः॥

१०/२९/४

अर्थात् "उस कामोद्दीप गान के कान में पड़ते ही समस्त व्रज बालाएँ श्रीकृष्ण में आसक्त चित्त होकर एक दूसरे से अपनी चेष्टा छिपाती हुई अपने कान्त के पास आयीं। उस समय अत्यन्त वेग के कारण उनके कानों के कुण्डल हिलते जाते थे।"

इस आगमन के समय उन व्रज बालाओं को उनके भ्राता, पति, बन्धु वर्गों ने रोका तो सही पर वे किसी प्रकार भी न रुकीं। उनकी अवहेलना करके भी श्रीकृष्ण से जा मिलीं। आचार्य्य पाद कहते हैं–

(आई ब्रज नारि सुनत बंसी रव) गृहपति बंधु विसारे–

अब श्रीमद्‌भागवत में देखिये–

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृ बन्धुभिः।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्त्तन्त मोहिताः।।

श्रीमद्भा. १०/२९/८

अर्थात् उनके पति, पिता भ्राता और बन्धुओं ने उन्हें बहुत कुछ रोका किन्तु श्रीगोविन्द ने उनके चित्तों को ऐसा कुछ खींच लिया था कि वे मुग्ध बालाएँ उनके रोके न रुक सकीं।"

उन्होंने आकर मदन मोहन का दर्शन किया और उनके विरह जन्य काम ताप की शान्ति हो गयी। महाप्रभु और श्रीमद्भागवत का भाव साम्य देखिये–

(४)**"दरसन मदन गुपाल मनोहर मनसिज ताप निवारे"** –

और

सर्वास्ता केशवालोक परमोत्सव निर्वृताः।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः।।

श्रीमद्भाग. १०/३२/९

अर्थात् "जैसे मुमुक्षु जन ब्रह्मवेत्ता को पाकर संसार ताप से छूट जाते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण दर्शन के परमोल्लास से आनन्दित होकर उन समस्त गोप बालाओं का विरह ताप दूर हो गया।"

पश्चात् रास क्रीड़ा प्रारम्भ हुई–

"रास रच्यौ बन माँही"

और

तत्रारभत गोविन्दो रास क्रीड़ामनुव्रतैः।
रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपी मण्डल मण्डितः।।

श्रीमद्भा. १०/३३/२-३

अर्थात् "फिर वहाँ गोविन्द ने रास क्रीड़ा प्रारम्भ की वे गोपियों के मण्डल में शोभित होकर रास के महोत्सव में सम्प्रवृत्त हुए।"

इसी प्रकार दोनों प्रसङ्गों में रास नृत्य का सरस वर्णन मिलाइये–

(६) **"अदभुत ताल मृदंग मनोहर किंकिनि शब्द कराहीं"**

–हित चौरासी

एवं–

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्।
सप्रियाणाममूच्छब्दस्तुमुलो रास मण्डले।।

–श्रीमद्भा. १०/३३/६

अर्थात् "रास मण्डल में नृत्य करती हुई गोपियों के कङ्कण नूपुरों एवं किङ्किणियों का तुमुल शब्द होने लगा।"

इस रास नृत्य का दर्शन करके देवताओं की सुन्दरियाँ मोहित हो गयीं। आचार्य्यपाद लिखते हैं–

(७)

''मोहे मृग धैंनु सहित सुर सुंदरि प्रेम मगन पट छूटे।
उडगन चकित थकित ससि मण्डल कोटि मदन मन लूटे।।''

यही भाव श्रीमद्भागवत में भी–

कृष्ण विक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचर स्त्रियः।
कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत्।।

–श्रीमद्भां. १०/३३/१९

अर्थात् "श्रीकृष्ण के इस विक्रीड़न को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ कामातुरा होकर मोहित हो गयीं और चन्द्रमा भी अपने गणों (उडगण आदि) के सहित चकित हो गया।"

रास ने सबको चकित तो कर दिया। और ब्रज बालाओं ने जो सुख लूटा उसका भी वर्णन करते हैं दोनों व्यास नन्दन–

(८)

अधर पान परिरंभन अति रस आनँद मगन सहेली।

यह तो हुआ 'हित चौरासी में अब श्रीमद्भागवत में व्यासनन्दन शुकदेव जी क्या कहते हैं–

काचिद्रास परिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः।
जग्राह वाहुना स्कन्धं श्लथ वलय मल्लिका।।
तत्रैकांसगतं वाहुं कृष्णस्योत्पल सौरभम्।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह।।
कस्याश्चिन्नाटय विक्षिप्त कुण्डल त्विष मण्डितम्।
गण्डं गण्डे संदधत्या अदात्ताम्बूल चर्वितम्।।
नृत्यन्ती गायती काचित्कूजन्नूपुर मेखला।
पार्श्वस्थाच्युत हस्ताब्जं श्रान्ताधात्स्तनयोः शिवम्।।

श्रीमद्भागवत–१०/३३/११,१२,१३,१४

अर्थात् "कोई गोपी नृत्य करते करते थक गयी उसकी कलाइयों से कङ्कण और केशों से मल्लिका के पुष्प खिसकने लगे तब उसने श्रीकृष्ण के कन्धों को अपनी भुजाओं से पकड़ लिया। एक गोपी ने अपने कन्धे पर रखी हुई कमल कुसुम से सुगन्धित श्रीकृष्ण की चन्दन लिप्त भुजा को सूँघ कर आनन्द पुलकित होकर चूम लिया। एक गोपी ने नाचने से हिलते हुए कुण्डलों की कान्ति से सुशोभित अपना कोमल कपोल श्रीकृष्ण चन्द्र के कपोल से मिलाया तब श्रीकृष्ण ने उसके मुख में अपना चबाया हुआ पान दे दिया। कोई गोपी नूपुर और मेखला की झनकार करती हुई नाच और गा रही थी जब वह विशेष थक गयी, तो उसने अपनी बगल में विराजमान् श्रीकृष्ण चन्द्र का शीतल कर कमल अपने स्तन पर रख लिया।"

इत्यादि; उक्त सभी प्रमाण बता रहे हैं, कि श्रीहिताचार्य्य पाद ने इस पद में महारास वर्णन की शैली से अपना लक्ष्य–इष्ट रस का गान किया है। दूसरी बात यहाँ पर यह भी जान लेने की है कि जैसे अन्यत्र रास वर्णन में श्रीहिताचार्य्य ने श्रीप्रियाजी की उपस्थिति प्रत्येक रास प्रसङ्ग में आवश्यक समझी और वर्णन की है, वैसी यहाँ नहीं समझी और की भी नहीं क्योंकि श्रीमद्भागवत की यही शैली है।

रसज्ञ जन जानते हैं कि महारास वर्णन को श्रीमद्भागवत के अनुसार वर्णन करके श्रीहिताचार्य्य ने उसमें आदि से अन्त तक रस–केवल रस की धारा बहायी है। वेणु वादन, गोपी आगमन, नृत्य, आलिङ्गन, एवं चुम्बन आदि

सभी रस पूर्ण क्रियाएँ हैं। मेरी मान्यता है कि वर्णन में महाप्रभु पाद का उद्देश्य महारास वर्णन न होकर रस प्रक्रिया वर्णन है।

— ६४ —

अवतरण—श्रीवृन्दावन में सदा शरद एवं वसन्त का साम्राज्य छाया रहता है। निरन्तर श्रीलालजी अपनी मधुर मुरली की तान भी छेड़ा करते हैं और रस एवं भावों से परिपूर्ण अनेक लीलाओं की रचना योजना करते रहते हैं। वैसे ये हैं तो मुनियों के ध्यान में भी न आने वाले पर प्रेम परवश अपने अनन्य प्रेमी जनों के लिये श्रीवन में नित्य प्रकट हैं।

इसी बात को श्रीहिताचार्य्य पाद प्रकट करते हैं—

गौरी

मूल—बैंनु माई बाजै बंसीवट।
सदा बसंत रहत वृंदावन पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट।।
जटित क्रीट मकराकृत कुंडल मुखारविंद भँवर मानौं लट।
दसननि कुंद कली छबि लज्जित सज्जित कनक समान पीत पट।।
मुनि मन ध्यान धरत नहिं पावत करत विनोद संग बालक भट।
दास अनन्य भजन रस कारन हित हरिवंश प्रकट लीला नट।।६४।।

भावार्थ—(श्रीहित अलि ने सखियों से कहा) "हे सखी ! वंशीवट में वेणु तो बजती ही रहती है और यमुना के तट स्थित पवित्र एवं सुन्दर पुलिन पर; श्रीवन में सदा सर्वदा वसन्त भी रहा ही आता है। (ये वेणु बजाने वाले श्रीकृष्ण भी कितने सुन्दर हैं ? उनके श्रीअङ्गो में) मणियों से जड़ा हुआ किरीट और मकराकार कुण्डल शोभित हैं, मुख कमल पर अलकें क्या हैं मानों भ्रमर। दाँतों की पङ्क्ति से तो कुन्द की कलियों की छबि भी लजा उठी है। उनके शरीर पर स्वर्ण के जैसा पीत पट शोभा पा रहा है।"

श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि जिन्हें अपने मन में ध्यान करते हुए मुनि जन (ध्यान तक में) नहीं पा सकते, वही बालकवत उन्नत किशोर सुरत रण शूर श्रीराधावल्लभ लाल निरन्तर श्रीवन में आमोद प्रमोद पूर्वक

क्रीड़ा करते रहते हें। (अतएव निश्चय है,) ये लीला नटवर केवल अपने दासों के रस भजन के लिये ही प्रकट हैं।

टिप्पणी– "दास अनन्य"

प्रथम एक पद में श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु ने "यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौनें सचु पायौ" इस उपदेश से साधक प्रेमियों के लिये अपने मन को एक जगह लगाने का उपदेश दिया। एक मन को अनेक स्थलों में लगाने से जार युवती (वेश्या) की तरह अशान्ति ही मिलती है शान्ति नहीं; जिसे श्रीराधावल्लभ लाल का एकान्तिक प्रेम इष्ट हो वह नितान्त रूप से अपने मन को एक मुख करे–अनन्य बने। अनन्य का अर्थ है केवल अपने प्रभु का हो रहना और उससे अतिरिक्त सारे विश्व प्रपञ्च को भूल जाना। अनन्यता में अपने प्रियतम से तल्लीन होने का आदेश निहित है; किन्तु किन्हीं देवी–देवताओं की निन्दा या विरोध का नहीं। यह अनन्यता इतनी एक मेक हो जाय अपने प्रियतम से कि (उससे छान कर न्यारी न किया जा सके) सर्वत्र केवल अपने इष्ट का दर्शन ही हो एवं और कुछ अन्य कहा जाने वाला रह ही न जाय वह बोल उठे–

दर दिवार दरपन भये, जित देखौं तित तोहिं।
कंकर पत्थर ठीकरी, भये आरसी मोहिं।।

अथवा सर्वत्र अपने प्राण प्रियतम श्याम का दर्शन करने वाली गोपियों की भाँति वह अनन्य होकर गा उठे–

जित देखौं तित स्याम मयी है।
स्याम कुंज बन जमुना स्यामा मनहु स्यामता बेलि बई है।।
श्रुति कौ अक्षर स्याम देखियत दीप सिखा पर स्याम तई है।
हौं बौरी कै लोगन ही की स्याम पुतरिया बदल गई है।।
चंद्र सार मृग सार स्याम है सब स्याम काम विजई है।
नर देवन की कहा कथा है अलख ब्रह्म छबि स्याम मई है।।

अनन्यता का अर्थ बताते हुए इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है–

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवंत।।

समस्त चराचर में भी अपने रूप राशि इष्ट देव का दर्शन करना ही अनन्यता है। यही है अनन्य साधना की सिद्धावस्था, जिसका सङ्केत श्रीहिताचार्य्य चरण कर रहे हैं–

सद्योगीन्द्र सुदृश्य सान्द्र रसदानन्दैक सन्मूर्त्तयः
सर्वेप्यद्भुत सन्महिम्नि मधुरे वृंदावने सङ्गताः।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये;
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिर्मम।।

श्रीराधा सुधानिधि २६४

अर्थात् "जिनका सङ्ग अद्भुत महिमा पूर्ण मधुर वृन्दावन से है, वे भले ही क्रूर पापी और सज्जनों के दर्शन सम्भाषण के अयोग्य व्यक्ति क्यों न हों किन्तु वे सभी लोग महान् योगीन्द्र गणों के भी लिये सुन्दर दर्शनीय, सघन रसदायी और एकमात्र आनन्द की मूर्त्तियाँ हैं। उनको वस्तुतया (यथार्थ दृष्टि से) देखकर उनमें मेरी अपनी स्वाराध्य बुद्धि है–वे मेरे लिये इष्टदेव के रूप हैं।"

इस अनन्य साधना के दो दृष्टि कोण हैं एक सर्व दर्शन और दूसरा एकान्त दर्शन। ऊपर के प्रसङ्ग में अनन्यता का सर्वदर्शन (अर्थात् सर्वत्र अपने प्रियतम प्रभु का ही दर्शन करना अन्य का न देखना) का दिग्दर्शन कराया गया है अब अनन्यता के एकान्त दर्शन का नीचे के प्रसङ्ग में दिग्दर्शन कराया जाता है जिसका सूत्र [illegible]चार्य्यपाद निर्विरोध भाव से प्रकट करते हैं–

रसना कटौ जु अन रटौं निरखि अन फुटौ नैन।
श्रवन फुटौ जु अन सुनौं विनु राधा जस बैंन।।

अर्थात् "श्रीराधा के सिवाय अन्य कुछ कहने बकने वाली जीभ कट कर गिर जाय, अन्य कुछ देखने वाले नेत्र फूट जायँ, और अन्य कुछ सुनने वाले कान भी फूट जायँ।"

यह दृष्टि ऐकान्तिक, एक देशीय किसी एक रूप, नाम के प्रति भी हो सकती है और यही सर्वत्र, सर्व देशीय सब नाम रूपों के प्रति भी हो सकती है।

जब प्रेमी की दृष्टि में सर्वत्र अपना इष्ट देव ही है तब अन्य है ही कहाँ ? तब उसका विरोध भी किससे और कहाँ रहा ? वह तो सर्वत्र उसे ही देखता है–

जहँ देखौं तहँ आपनौं इष्ट नाम गुरु धाम।

ऐसे दृष्टि प्राप्त महात्मा के लिये विरोध करने के लिये कोई स्थल रह ही नहीं जाता। वह श्रीविहारिन देव जी के शब्दों में कहता है–

अब हौं कासौं बैर करौं।
निजु मुख कहत पुकारत प्रभु हैं घट घट हौं विहरौं।।

इसी सर्वत्र इष्ट दर्शन की ऐकान्तिक साधना का मार्ग श्रीहरिराम 'व्यास' इस प्रकार प्रकट करते हैं–

जाकी है उपासना, ताही की वासना;
ताही कौ नाम रूप लीला गुन गाइये।
यहै अनन्य धर्म परपाटी यहै;
श्रीवृन्दावन तजि अनत न जाइये।।
सोई व्यभिचारी आन कहै, आन करै,
ताकौ मुख देखैं दारुन दुख पाइये।
'व्यास' होइ उपहास त्रास कियें
आस अछत कत दास कहाइये।।

कितना स्पष्ट है इन व्यासजी की अनन्य धर्म परिपाटी ! जिसमें जिसकी उपासना उसी की वासना के साथ उसीके नाम रूप लीला गुणों का गान है। अपनी वस्तु से प्रीति है। अन्य किसी से विरोध का लेश भी नहीं।

नित्य विहार का नित्य दर्शन करने वाले, सदा विहार की ऐनक लगाये हुए श्रावण के सूर परम रसिक श्रीभगवत रसिक जी के भी शब्द कुछ ऐसे ही हैं–

नैंननि देखौं और नहिं, श्रवन सुनौं नहिं और।
घ्राँन न सूघौं और कछु, रसना कहौं न और।।
रसना कहौं न और त्वचा परसौं नहिं औरे।
कुंज विहारी केलि झेलि इन्द्रिनु सब ठौरे।।

भगवत रसिक अनन्य कोक उपदेसौं सैंननिं।
बैंननि मैंन जगाई रैंन दिन देखौं नैंननिं।।

अनन्य श्रीभगवत रसिकजी अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से सदा, सर्वत्र श्रीकुञ्ज विहारी की केलि का दिव्य रस ही झेलते रहते हैं। यह है रसिकों की रसिक अनन्यता।

अनन्यता का स्थूल अर्थ करने वाले लोग जो प्रायः अन्य देवी देवताओं की निन्दा, विरोध, एवं उपेक्षा आदि जो कुछ करते हैं वे अपने प्रभु के व्यापक रूप विस्तार को भूलकर किसी सङ्कीर्ण दायरे में आ जाते हैं। वे श्रीहित ध्रुवदासजी के नीचे लिखे सिद्धान्त को भूल जाते हैं–

अपने अपने इष्ट कौं भजहिं जीव ते धन्य।

किसी की निन्दा या विरोध करते समय हम अपनी स्थिति से–अनन्यता से उसी क्षण पतित हो जाते हैं जब हमें अपने इष्ट को छोड़कर किसी अन्य की समृति भी हो आती है। अनन्यता तो वह है जहाँ उपासक की स्मृति, तन, मन प्राण और आत्मा के कण कण में अपने प्रियतम का रूप समाया रहे इस प्रकार–

आओ प्यारे मोहना पलक झाँपि तोहिं लेऊँ।
ना मैं देखौं और कौं ना तोहिं देखन देऊ।।

इस अनन्यता की साधना का पथ श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती पाद इस तरह बता रहे हैं–

स्वान्तर्भाव विरोधिनी व्यवहृतिः सर्वाः शनैस्त्यज्यतां,
स्वान्तश्चिन्तित तत्वमेव सततं सर्वत्र संधीयताम्।
तद्भावेक्षणतः सदा स्थिरचरेऽन्यादृग्तिरोभाव्यतां,
वृन्दारण्य विलासिनो निशि दिवा दास्योत्सवे स्थीयताम्।।

अर्थात् "अन्तर्भावों के विरोध करने वाले सभी व्यवहारों को धीरे धीरे त्याग दें, अपने अन्तः करण के नित्य चिन्तनीय तत्व को ही सदा सर्वत्र खोजता रहे। (उसी अन्तः करण चिन्तित तत्व श्रीराधावल्लभलालजी के) भाव को स्थिर चर सब में सर्वत्र देखा करे, अन्य दृष्टियों का ही त्याग कर दे और श्रीवृन्दारण्य विलासी श्रीराधा मुरली मनोहर के दास्य सुख में ही दिन रात लगा रहे।"

और जब तक इस प्रकार विशाल भाव पूर्ण अनन्यता न होगी तब तक–

"पंथ पावनो कठिन है कीन्हें कहा बनाव ?"

इस अनन्यता के बिना सारी उपासना, प्रेम, परमार्थ, भक्ति, सभी व्यर्थ हैं दुःख रूप हैं। श्रीभगवत रसिकजी ने कहा है–

असन वसन परिवार पुत्र विनु सब जग दुखिया।
भगवत रसिक अनन्य विना कोऊ नहिं सुखिया।।

इस अनेक वासना रूप दुःखों से मुक्त अनन्य रसिक दासों के लिये ही लीला नट प्रकट है। अतः प्रत्येक को अनन्य भावेन इस लीला नट का चरणाश्रय लेना प्रथम धर्म है।

– ६५ –

अवतरण–मानवती श्रीप्रियाजी को रासोत्सव में ले चलने के लिये श्रीहित सखीजी उन्हें प्रोत्साहन दे रही हैं। उन्होंने मानिनि से कहा–

गौरी

मूल–मदन मथन घन निकुंज खेलत हरि,
राका रुचिर सरद रजनी।
यमुना पुलिन तट सुरतरु के निकट,
रचित रास चलि मिलि सजनी।।
बाजत मृदु मृदंग नाचत सबै सुधंग;
तैं न श्रवन सुन्यौ बैंनु बजनी।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रभु राधिका रमन,
मोकौं भावै माई जगत भगत भजनी।।६५।।

भावार्थ – (श्रीहित सजनी ने मानिनि श्रीराधा से कहा– हे मानिनि राधे!) देखो, पूर्ण चन्द्र मयी शरद की रुचिर सुन्दर रात्रि में कामदेव को मथित कर देने वाले श्रीहरि सघन लता भवन में (अलौकिक रास रस) खेल रहे हैं। हे सखी ! यमुना तट–पुलिन पर कल्पवृक्ष के ही निकट श्रीहरि ने रास की रचना की है; तुम भी चलकर उसमें मिलो ! अरी माई ! वहाँ कैसे मधुर –मधुर स्वर

में मृदङ्ग बज रहे हैं और सब (सखियाँ) सुधङ्ग गति से नाच रही हैं क्या तुमने अपने कानों उनका मधुर वंशी वादन नहीं सुना ?

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु (सखी भाव से) कह रहे हैं–"हे सखी ! ये प्रभु राधिका रमण–आपके प्रियतम है और समस्त विश्व के (प्रेमी) भक्तों के भी भजनीय तत्व हैं। (तुम भले ही मान किये बैठी रहो, जाने तुम्हें ये कैसे लगते हैं पर) मुझे तो ये बहुत अच्छे लगते हैं, (अर्थात् मुझे और समस्त विश्व को ये अच्छे लगते हैं पर तुम्हें नहीं; क्योंकि तुम मान किये बैठी हो। यदि मान का त्याग कर दो तो तुम्हें भी वे अच्छे लगने लगे। वैसे तो सदा ही तुम्हें भी अच्छे लगते हैं पर अभी मान ने इतना अन्तर डाल दिया है। जो मान अपने प्यारे में बुराई का भ्रम उत्पन्न कर दे वह अवश्य और शीघ्र त्याज्य है; अतः आप अब शीघ्र मान का त्याग करके अपने परम प्रियतम से चल कर मिलें।)

टिप्पणी–

"जगत भगत भजनी"

जीवों की रुचियाँ अनेक हैं और विचित्र हैं। इसलिये जीव उन रुचियों के अनुसार विषय, अर्थ, धर्म काम मोक्ष और भक्ति अनेक स्थलों से चिपटा है। उपासना के क्षेत्र में यदि किसी की रुचि, प्रेत, पितृ देवता या ब्रह्मा शिव आदि में है तो रही आवे, अलग बात है, वह तो "ऊधौ ! मन माने की बात !" है पर तत्व विचार या विवेक जन्य निर्णय से पूछा जाय तो यही उत्तर होगा कि जीवों के एकमात्र भजनीय केवल भगवान् श्रीकृष्ण हैं। ये परात्पर ब्रह्म हैं, सर्वेश्वर हैं और जीवों की एक मात्र गति हैं। समस्त जीव इनके सनातन अंश हैं। केवल यही ब्रह्म हैं; शेष इनके अतिरिक्त ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब जीव हैं चाहे उनके लिये पुराण और शास्त्रों की रचना ही क्यों न कर डाली गयी हो महत्ता प्रदर्शन के लिये। वेद पुराण एवं समस्त सच्छास्त्रों का यही निर्णीत मत है। प्रत्येक अकामी, सर्वकामी सकामी, एवं मोक्ष कामी के लिये यही भजनीय हैं अन्यत्र देवी देवताओं का भजन व्यर्थ भटकन है। श्रीमद्भागवत इसका निर्णय देता है–

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकामो उदार धीः।
तीव्रेण भक्ति योगेन यजेत्पुरुषः परम्।।

श्रीमद्भा. २/३/१०

अर्थात् "कुछ भी न चाहने वाले, सब कुछ चाहने वाले, अथवा मोक्ष चाहने वाले उदार बुद्धि व्यक्तियों को चाहिये कि वे (अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिये अन्य किन्हीं देवी देवताओं का यजन न करके) तीक्ष्ण भक्ति योग के द्वारा केवल परम पुरुष (भगवान् श्रीकृष्ण शुद्ध सत्व ब्रह्म) की ही आराधना करें।"

परम मुमूर्षु राजा परीक्षित के लिये जीवन के अन्तिम दिनों में गङ्गा तट पर परम हंस शिरोमणि भगवान् शुक देव ने राजा के इस प्रश्न पर कि इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है ? यही उत्तर दिया था—

तस्मात्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चच्छता भयम्।।
एतावान्सांख्य योगाभ्यां स्वधर्म्म परिनिष्ठया।
जन्मलाभः परं पुंसामन्ते नारायण स्मृतिः।।
प्रायेण मुनयो राजभिवृता विधिषेधतः।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्मं गुणानुकथने हरेः।।

श्रीमद्भागवत. २/१/५,६,७

अर्थात् "अतः हे भारत ! जिसे अभय पद की आवश्यकता हो उसे सबके आत्म स्वरूप भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण कीर्त्तन और स्मरण करना चाहिये। सांख्य, योग तथा स्वधर्म्म निष्ठा आदि समस्त साधनों से अन्त काल में भगवान् का स्मरण रहे यही मनुष्य जन्म का परम लाभ है। हे राजन् ! जो मुनि जन त्रिगुणातीत भाव में स्थित होकर विधि निषेध मर्यादा से परे हो गये हैं, वे भी प्रायः श्रीहरि के गुण गान में ही रमण करते रहते हैं।"

अब जिन भगवान् श्रीकृष्ण के भजन स्मरण और कीर्त्तन के ही लिये सत् शास्त्र आज्ञा देते हैं; वही शास्त्र उनकी सर्वोपरिता का भी निरूपण करते हैं; देखिये—

एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।

श्रीमद्भाग. १/३/२८

अर्थात् "अन्य सभी अवतार आदि तो अंश कलाएँ हैं पर ये श्रीकृष्ण तो परिपूर्णतम् ब्रह्म—भगवान हैं स्वयं भगवान् !"

ये भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त जीवों के भक्तों के, ज्ञानियों के, योगियों के और चराचर के एकमात्र भजनीय हैं।

— ६६ —

अवतरण—परम रमणीय एवं सर्वकाल सुखमय किसी एकान्त नव निकुञ्ज मन्दिर में श्रीयुगल किशोर की रस पूर्ण रति क्रीड़ा का प्रारम्भ होने जा रहा है। विहार के अवसर पर अत्यन्त प्रेमातुर श्रीलालजी के हृदय का इस पद में बड़ा ही सरस चित्र अङ्कित है साथ ही साथ उनकी प्रेमाधीनता और रस लोलुप वृत्ति का भी।

दूसरे पक्ष में श्रीप्रियाजी की रस रूप गर्वोक्ति, गम्भीरता, कोमलता, उदारता, दान शीलता आदि उत्तम नायिकोचित गुणों का प्रकाश करने वाले भावों का समावेश है।

विहार की एक रस धारा में काल का बोध भी न हो पाना त्रुटि मात्र में पुनः सायं काल आ जाना रस विहार अत्यन्त रमणीयता का द्योतक है। सम्पूर्ण पद दिव्य एवं अनिर्वचनीय रसमय भावों और शब्द मणियों से गुम्फित हार की तरह है जो युगल रसिक किशोर का हृदय हार बन रहा है। सुज्ञ रसिक जनों के लिये यह पद कितना मादक है अनुभवी ही जानते हैं।

श्रीहित संखीजी साक्षी भाव से दर्शन करतीं और अपनी निकट सखियों को उस केलि का वर्णन करके सुनाती हैं—

कल्याण

मूल—विहरत दोऊ प्रीतम कुंज।
अनुपम गौर स्याम तन सोभा वन वरषत सुख पुंज।।
अद्भुत खेत महा मनमथ कौ दुंदुभि भूषन राव।
जूझत सुभट परस्पर अँग अँग उपजत कोटिक भाव।।
भर संग्राम श्रमित अति अबला निद्रायत कल नैंन।
पिय के अंक निसंक तंक तन आलस जुत कृत सैंन।।

लालन मिस आतुर पिय परसत उरू नाभि उरजात।
अद्भुत छटा विलोकि अवनि पर विथकित वेपथ गात।।
नागरि निरखि मदन विष व्यापित दियौ सुधाधर धीर।
सत्वर उठे महामधु पीवत मिलत मीन मिव नीर।।
अबहीं मैं मुख मध्य विलोके बिंबाधर सु रसाल।
जागृत ज्यौं भ्रम भयौ परयौ मन सत मनसिज कुल जाल।।
सकृदपि मयि अधरामृत मुपनय सुंदरि सहज सनेह।
तव पद पंकज कौ निजु मंदिर पालय सखि मम देह।।
प्रिया कहति कहु कहाँ हुते पिय नव निकुंज वर राज।
सुंदर वचन रचन कत वितरत रति लंपट बिनु काज।।
इतनौं श्रवन सुनत मानिनि मुख अंतर रह्यौ न धीर।
मति कातर विरहज दुख व्यापित बहुतर स्वास समीर।।
(जै श्री) हित हरिवंश भुजनि आकरषे लै राखे उर माँझ।
मिथुन मिलत जु कछुक सुख उपज्यौ त्रुटि लव मिव भई साँझ।।६६।।

भावार्थ — दोनों प्रियतम (श्रीराधा एवं श्रीलालजी) कुञ्ज में विहार कर रहे हैं; दोनों की देह प्रभा अनुपम गौर एवं श्याम है; (दानों के अनुपम विहार से) वन में सुख पुञ्ज बरस सा रहा है।

(युगल क्रीड़ा में) प्रचण्ड काम (मन्मथ) ही अद्भुत खेत (युद्ध का मैदान) है, भूषण ध्वनि ही मानो दुन्दुभि वाद्य हैं। (युगल किशोर के) अङ्ग प्रत्यङ्ग से उत्पन्न कोटि कोटि भावों का प्रकाश ही (दोनों योद्धाओं का) परस्पर जूझना है। भीषण युद्ध से अत्यन्त थकित हो जाने के कारण अवला श्रीप्रियाजी की सुन्दर आँखें नींद से भर गयीं और वे कृशाङ्गी आलस्य से भर प्रियतम की गोद में निःशङ्क भाव से सो गयीं। उस समय प्रेम और दुलार के बहाने प्रेमातुर प्रियतम उनके उरू, नाभि एवं उरोजों का स्पर्श करने लगे। (उस समय प्रियाजी के श्री अङ्गों की छबि देखकर उनका शरीर काँपने लगा और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

(उनके मूर्च्छित होकर गिरने पर) नागरी श्रीप्रियाजी ने देखा, इनके मदन विष व्याप्त हो गया है, तब उन्होंने (प्रियतम को) अपनी अधर सुधा दी।

उस महामधु का पान करते ही प्रियतम शीघ्रता पूर्वक ऐसे उठ बैठे जैसे मीन को पानी मिल गया हो। (फिर अर्ध चेतन की सी अवस्था में कहने लगे–) "अहो ! अभी अभी तो मैंने अपने मुख के मध्य (किन्हीं) रसमय अधर बिम्बों का अनुभव किया था।" (इतनी स्मृति आते ही) फिर उन्हें पूर्ववत् जागृत की ही भाँति भ्रम हो गया कि मैं श्रीप्रियाजी के आलिङ्गन से वञ्चित हूँ; इसलिए उनका मन पुनः शत–शत कामदेवों के जाल में पड़ गया–वे अधिकाधिक व्यथित हो गये। (मन्मथ–व्यथा से व्यथित होकर श्रीलालजी दीनता पूर्वक श्रीप्रियाजी से विनय सी करने लगे; वे बोले–) "हे सुन्दरि ! आप स्वाभाविक स्नेह के साथ केवल एक ही बार सही अपने अधरों के अमृतका दान मुझे दीजिये ! हे सखि ! अब कृपा पूर्वक आप अपने श्रीचरण कमलों के निवास भवन रूप मेरे इस देह को (कामाग्नि में जलने से) बचाइये– इसका पालन कर लीजिये ?"

प्रियतम के इन शब्दों को सुनकर) श्रीप्रियाजी ने कहा–"हे नव निकुञ्ज वर राज ! हे प्रियतम !! तुम तब कहाँ थे ? (जब मैंने अधरामृत दिया था।) अरे रति लम्पट ! अब क्यों व्यर्थ इस (चाटुकारी पूर्ण) वचन रचना का विस्तार कर रहे हो ?"

मानिनि प्रिया के मुख से अपने कानों ये शब्द सुनते ही (प्रियतम के) हृदय में धैर्य नहीं रह गया, उनकी बुद्धि कातर हो गयी और विरह जनित दुःख प्याप्त हो गया वे लम्बी लम्बी साँसे लेने लगे।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि श्रीलालजी की ऐसी प्रेम विह्वल दशा देखकर उदार हृदया श्रीप्रियाजी ने उन्हें अपनी भुजलताओं से आकर्षित करके अपने हृदय के बीच ले लिया। उस समय दोनों के मिलन में जो भी कुछ आनन्द उत्पन्न हुआ, (वह अवर्णनीय है, उसका केवल इतने से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि) उस सुख की विस्मृति में सन्ध्या तो त्रुटि लव मात्र समय जैसी हो गयी, (अर्थात् काल जाते पता न लगा और बहुत सा समय बीत कर फिर से दूसरी सन्ध्या आ लगी।)

टिप्पणी – यह पद रति विहार भावना का बड़ा ही सूक्ष्म एवं गम्भीर परिचायक है। इसमें वर्णित रस युगल किशोर रसिक सखि गण एवं रसिक उपासक जनों का जीवन प्राण है। यों तो सम्पूर्ण 'हित चौरासी' के पद इसी एक

रस से ओत प्रोत हैं किन्तु इसमें जितने स्पष्ट और सरस रूप से किसी छटा की झाँकी कराई गयी है वह व्यञ्जना बड़ी ही अनोखी और अभूत पूर्व है। इस पद में रस के प्रकाश एवं विकास में श्रीहिताचार्य्य चरण ने जिस कुशल शैली का अनुवर्त्तन किया है वह अद्वितीय है।

अस्तु; इसमें वर्णित विषय गोप्य है अतः इसका वर्णन कथन, श्रवण सब कुछ मौन में ही है। यह हृदय में ही अनुभव करने की वस्तु है. श्रीनागरीदासजी कहते हैं–

चरचा करी कैसे जाय?
बात जानत कछुक हम पै कहत जिय थहराय।।
मौन में ही कहनि ताकी सुनत श्रोता नैंन।
सोऽब नागर लोग बूझत कहि न आवत बैंन।।

कितनी अटपटी है इस रस की भाषा? मौन में कथन और नयन हैं श्रोता ?

जिस प्रकार यह गोप्य है, उसी प्रकार गूढ़ भी इतना है कि इसे प्रकाश करने में श्रोत्रिय और रस निष्ठ सभी महानुभाव असमर्थ हैं, किसी न किसी कारण से। फिर भी कृपालु महानुभावों ने अभिलाषी उपासकों को प्रकाश अवश्य दिया है। श्रीहित ध्रुवदासजी ने इस रस विलास की ओर जो इङ्गित किया है उससे इस रस के हृदयङ्गम करने में सहायता मिलेगी अवश्य।

वे कहते हैं–

प्रेम मदन के सिंधु द्वै बहत रहत दिन हीय।
कबहुँ विवस चेतत कबहुँ छिन छिन प्यारी पीय।।
छिन छिन प्यारी पीय मधुर रस बिलसत ऐसे।
सूच्छम प्रेम की बात कहौ कोऊ बरनै कैसे।।
यह सुख सखियन बाँट परयौ भूले ध्रुव सब नेम।
इक रस फूलीं फिरतिं सँग पाइ माधुरी प्रेम।।

अस्तु; इस रस की दुरूहता, गम्भीरता, उत्कृष्टता, अलौकिकता, एवं लोक वेदातीत भावना को लक्ष्य में रखकर प्रकाशन करने में समर्थ रहने पर

भी प्रकाशित न करने की ही आज्ञाएँ सर्वत्र हैं। एक स्थल पर चाचा श्रीहित वृन्दावन दासजी ने आज्ञा दी है–

होइ भावना सिद्ध ताहि उर अंतर राखै।
मरमी हू सौं बात कछू मित ही की भाखै।।
धरमी मरमी बिना कहै तो टोटो परिहै।
विमुख करैं उपहास चित्त–भावुक जु विगरिहै।।
प्रानन प्यारी वस्तु दुरायें डोलैं जतननि।
विमुख कूँजरनि हाथ गहावै जनि रस रतननि।।

अत: रसिक उपासक का धर्म है कि इस दिव्य रस सार रति विहार का अपने हृदय में अनुभव करके गोप्य ही रखे, बिना अधिकारी के किसी अन्य को इसे न दे, न दे।

– ६७ –

अवतरण–श्रीहित सजनी अपनी सखियों से परम सौन्दर्य्यमयी, रूप लावण्यमती श्रीप्रियाजी के नख शिख शृङ्गार का वर्णन करती हैं–

कल्याण

मूल– **रुचिर राजत वधू कानन किसोरी।**
सरस षोडस कियें, तिलक मृगमद दियें,
मृगज लोचन उबटि अंग सिर खोरी।।
गंड पंडीर मंडित चिकुर चंद्रिका,
मेदिनि कबरि गुंथित सुरंग डोरी।
श्रवन ताटंक कै, चिबुक पर बिंदु दै,
कसूँभी कंचुकी दुरै उरज फल कोरी।।
वलय कंकन दोति, नखन जावक जोति,
उदर गुन रेख पट नील कटि थोरी।
सुभग जघन स्थली क्वनित किंकिनि भली,
कोक संगीत रस सिंधु झक झोरी।।

विविध लीला रचित रहसि हरिवंश हित;
रसिक सिरमौर राधा रमन जोरी।
भृकुटि निर्जित मदन मंद सस्मित वदन,
किये रस विवस घन स्याम पिय गोरी।।६७।।

भावार्थ – "हे सखि ! श्रीवृन्दा कानन की नव बधू किशोरी बड़ी भली शोभित हो रही है। उनके अङ्ग उबटन से उवट कर रस पूर्ण सोलहों शृङ्गार से पूर्ण किये गये हैं। ललाट पर कस्तूरी का तिलक और सिर पर खोरी शोभित हैं उनके स्वाभाविक सुन्दर मृग छौंने से लोचन हैं। युगल किशोर पण्डीर (केशर कस्तूरी पङ्क) से आभूषित–सज्जित हैं। केशों की चन्द्रिका मेदिनि के पुष्पों से गूँथी गयी है तथा कबरी सुरङ्ग डोरी से आबद्ध (बँधी) है। उन्होंने अपने कानों में कर्णफूल धारण करके, ललित चिबुक पर (श्याम) विन्दु धारण किया है; और उनकी कसूँभी चोली में परम सुन्दर उरज फलों की किनारे मात्र ही ढँकी हैं। (वाहुओं में) बाजूबन्द, कलाइयों में कङ्कण की प्रभा और नख मणियों में महावर (जावक) की ज्योति छा रही है। उदर में वलखाती हुई तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं, उन्होंने अपनी अत्यन्त क्षीण कटि पर नील पट धारण कर रखा है एवं सुन्दर सुभग जघन प्रान्त में कोक राग रागनियों की गायिका जैसी झनकार वाली करधनी शोभा पा रही है। स्पष्ट है कि यह किङ्किणि सुरत रस के समुद्र में अवश्य सरावोर हो चुकी है।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र (महाप्रभु पाद सखी रूप से) कहते हैं– यह श्रीराधा रमण श्रीलालजी की, रसिक शिरोमणि जोड़ी है। यह (एकान्त कुञ्ज में) अनेक अनेक रस लीलाओं की रचना करती रहती है और इसने अपनी भृकुटियों से तो मदन को जीत लिया है और मन्द मुसकान से इस युवती (गोरी) ने प्रियतम घनश्याम (श्रीकृष्ण) को रस विवश कर रखा है।

टिप्पणी–"सरस षोडस"

शृङ्गार रस में सोलह शृङ्गारों का स्थान बहुत ऊँचा है। इनका वर्णन विद्वानों के मतों में कुछ अन्तर से पाया जाता है। पिछले प्रसङ्ग में केशव कवि के मत से सोलह शृङ्गार लिखे गये हैं। यहाँ रसिक महात्मा श्रीभगवत रसिक जी के मतानुसार सोलह शृङ्गारों के केवल नाम मात्र दिये जाते हैं–

सुचिता, सील, सनेह गति, चितवन, हास, विलास।
कच गूँथनि, सीमंत सुभ, भाल तिलक सुख रास।।
भाल तिलक सुख रासि, दृगनि अंजन अति सोहै।
बीरी वदन, सुदेस चिबुक मुसिकन मन मोहै।।
जावक, मँहदी, अंग राग, भगवत, नित रुचिता।
ये सोरह शृंगार मुख्य तामैं वर सुचिता।।

— ६८ —

अवतरण—इस पद में युगल किशोर के एकान्तिक रास नृत्य का वर्णन किया गया है। शरद की सुन्दर रात्रि में रसिक युगल किशोर ने रास क्रीड़ा की योजना की है। नाना प्रकार के वाद्य बज रहे हैं और युगल किशोर आनन्द मग्न होकर नृत्य कर रहे हैं। नृत्य की विविध प्रकार की गतियाँ लेते और घन दामिनि की भाँति एक मेक हो जाते हैं। श्रीहिताचार्य्य महाप्रभु इस रास रसोत्सव का वर्णन करते हैं—

कल्याण

मूल— **रास में रसिक मोहन बने भामिनी।**
सुभग पावन पुलिन सरस सौरभ नलिन,
मत्त मधुकर निकर सरद की जामिनी।।
त्रिविध रोचक पवन ताप दिनमनि दवन,
तहाँ ठाढ़े रमन संग सत कामिनी।
ताल बीना मृदंग सरस नाचत सुधंग;
एक ते एक संगीत की स्वामिनी।।
राग रागिनि जमी विपिन वरसत अमी,
अधर बिंबनि रमी मुरलि अभिरामिनी।
लाग कट्टर उरप सप्त सुर सौं सुलप
लेति सुंदर सुघर राधिका नामिनी।।
तत्त थेई थेई करत गतिव नौतन धरत,
पलटि डगमग ढरति मत्त गज गामिनी।

धाइ नवरँग धरी उरसि राजत खरी;
उभय कल हंस हरिवंश घन दामिनी।।६८।।

भावार्थ—आज रसिक मोहन और भामिनि श्रीराधा रास में शोभित हैं। सुन्दर और पवित्र यमुना का पुलिन है शरद् की रात्रि है। कमल की सरस सुगन्ध से भ्रमरों के समूह के समूह मतवाले हो रहे हैं; वैसा ही रुचिकारक त्रिविध पवन वह रहा है जो दिन मणि सूर्य के ताप का दमन करने वाला है। उस पुलिन पर रमण श्रीकृष्ण अपने साथ शत शत कामिनियों को लिये खड़े हैं। बड़ी सरसता पूर्वक ताल, वीणा, मृदङ्ग आदि बज रहे हैं और सब मिलकर सुधङ्ग नृत्य कर रहे हैं। उन कामिनियों में से प्रत्येक एक से बढ़कर एक राग सङ्गीत की अधिष्ठाता प्रधान हैं। वहाँ राग रागिनियों का पूर्ण जमाव है जिससे वन में मानों अमृत(रस) बरस रहा है, और श्याम सुन्दर के अधरों पर परम सुन्दर मुरली विराज रही है। मुरली के सप्त स्वरों के साथ सुन्दरी 'राधा' नामक (कोई अनिर्वचनीय) कामिनि लाग, उरप, कट्टर, तिरप आदि गतियों के साथ सुलप ले रही है। कभी तो वह तत्ता थेई–थेई' करती हुई नवीन गतियों को धारण करती है एवं कभी मत्त गज गामिनि की भाँति पलट कर (उलटी ओर लौटकर) डगमगाती ढलती हुई आ जाती है।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं कि (उस समय उस नृत्य परायणा प्रिया को) प्रियतम ने लपक कर शीघ्रता पूर्वक पकड़ लिया, तब प्रिया भी उनके हृदय से लिपट कर बड़ी शोभित हुई। (शोभित क्यों न हों, क्योंकि दानों ही (केलि सरोवर के) सुन्दर हंस हैं; किंवा केलि रूप आकाश के विद्युत और वारिद हैं न !

— ६९ —

अवतरण—पुन: उपरोक्त पद्धति से रास क्रीड़ा का ही सरस वर्णन करते हैं–

कल्यान

मूल—मोहिनी मोहन रंगे प्रेम सुरंगे,
मत्त मुदित कल नाचत सुधंगे।

क्या नहीं है इन नयनों में? अमृत है, विष है और है उन्मत्त वना देने वाली मदिरा भी। तभी तो ये श्वेत हैं, श्याम हैं और अरुणिम हैं, इसीलिये इनका घायल जीता है, मरता है और झुक झुक पड़ता–झूम झूम जाता है।

– ७४ –

अवतरण – मानवती श्रीप्रियाजी को प्रियतम के समीप ले आने के लिये हित सखी ने समझाया, ' प्रिय राधे ! तुम अब मान छोड़कर प्रियतम के निकट चलो ! देखो, तुम्हारे बिना उनकी दशा कुछ अच्छी नहीं है। वे मुरली में यदि कुछ गाते हैं तो केवल तुम्हारा नाम। इस समय वे तुम्हारे स्वरूप में ही तन्मय से हो रहे हैं.....।"

हित सखी ने फिर कहा–

कान्हरौ

मूल–काहे कौं मान बढ़ावतु है बालक मृग लोचनि।
हौंब डरनि कछु कहि न सकति इक बात सँकोचनि।।
मत्त मुरली अंतर तव गावत जागृत सैंन तवाकृति सोचनि।
(जै श्री) हित हरिवंश महा मोहन पिय आतुर विट विरहज दुख मोचनि।।७४।।

भावार्थ – "हे मृग छौनों से नेत्र वाली मानिनि ! व्यर्थ मान क्यों बढ़ा रही हो? मान जाओ ! मैं तुमसे इस समय एक बात कहना चाह कर भी सङ्कोच वश नहीं कह पा रही हूँ (अर्थात् प्रियतम की दशा कुछ ऐसी है जिसका जिह्वा पर लाना ही ठीक नहीं; वे अत्यन्त व्याकुल हैं यहाँ तक कि जीवन से भी निराश हो चुके हैं। मैं कैसे कहूँ भविष्य की बात कि क्या होगा ? कितनी अमङ्गल पूर्ण है वे बातें।) वे उन्मत्त हुए मुरली में और अपने हृदय में भी केवल तुम्हारा ही गान करते एवं सोते जागते प्रत्येक दशा में तुम्हारी ही मुखाकृति का चिन्तन करते रहते हैं।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद (सखी रूप से) कहते हैं–हे प्यारी राधे ! आप महा मुग्ध एवं प्रेमातुर लम्पट–रसिक प्रियतम के विरह जनित दुःख का विनाश करने वाली हैं (तब आप अपना यह गुण प्रकट क्यों नहीं करतीं ?)

सकल कला प्रवीन कल्यान रागिनी लीन,
कहत न बनै माधुरी अंग अंगे।।
तरनि तनया तीर त्रिविध सखी समीर।
मानौं मुनी व्रत धरयौ कपोती कोकिला कीर।।
नागरि नव किसोर मिथुन मनसि चोर।
सरस गावत दोऊ मंजुल मंदर घोर।।
कंकन किंकिनि धुनि मुखर नूपुरनि सुनि।
(जै श्री) हित हरिवंश रस वरषत नव तरुनि।।६९।।

भावार्थ–प्रेम के सुन्दर रङ्ग से भीने मोहिनी मोहन (युगल किशोर) प्रेमोन्मत्त हुए प्रसन्नता पूर्वक सुहावन सुधङ्ग नृत्य नाच रहे हैं। दानों समस्त कलाओं में प्रवीण हैं और (इस समय नृत्य करते हुए) कल्याण रागिनि में लीन–तन्मय– हो रहे हैं जिससे उनके अङ्ग प्रत्यङ्गों की माधुरी कुछ कहते ही नहीं बनती। अरी सखी ! तरणि तनया यमुना के तीर पर जहाँ त्रिविध पवन बह रहा है, (रास और गान से मुग्ध होकर) कपोली, कोयल और तोते आदि पक्षियों ने तो मानो मुनि व्रत (मौन) धारण कर रखा है।

परम सुन्दर नागरी और किशोर–दोनों एक दूसरे के चित्त चोर हैं अतः परस्पर चित्तों को चोरी करते हुए मधुर स्वरों में कभी उच्च और कभी मन्द मन्द गान गाते हैं। श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं कि उस समय रास नृत्य में कङ्कण, किङ्किणियों की मधुर मधुर ध्वनि सुनकर रसमयी नव तरुणि श्रीराधा रस का वर्षण करती हैं, अद्भुत प्रेम विलास का प्रकाश करती हें।

— ७० —

अवंतरण — श्रीवृन्दावन के मञ्जुल निकुञ्ज भवन में आज रात्रि में युगल किशोर की रति विलास केलि परम आनन्द पूर्वक सम्पन्न हुई है। प्रातः काल श्रीहित सखी ने निकुञ्ज भवन में प्रवेश किया है। युगल के श्रीअङ्गों में रति विहार के अनेकों चिह्न (लक्षण) शोभा पा रहे हैं। रति विहार के श्रम से श्रीप्रियाजी थकित, आलस्य युक्त और विस्मृता सी हैं, उनकी देह दशा अस्त व्यस्त सी है। श्रीप्रियाजी की यह दशा देखकर श्रीहित सखी को जो सुख हुआ सो तो हुआ ही

समस्त सहचरि परिकर को भी अपार सुख मिला वे सब युगल किशोर को प्रेमाशीष देने लगीं क्योंकि सब तत्सुख मयी हैं न?

इस पद में सखियों कें तत्सुखित्व और युगल किशोर के रति विलास की रस पूर्ण झाँकी है–

कल्याण

मूल–आजु सँभारत नाँहिन गोरी।
फूली फिरत मत्त करिनी ज्यौं सुरत समुद्र झकोरी।।
आलस वलित अरुन धूसर मषि प्रगट करत दृग चोरी।
पिय पर करुन अमी रस वरषत अधर अरुनता थोरी।।
बाँधत भृंग उरज अंबुज पर अलकनि बंध किसोरी।
संगम किरचि किरचि कंचुकि बँध सिथिल भई कटि डोरी।।
देति असीस निरखि जुवती जन जिनकें प्रीति न थोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश विपिन भूतल पर संतत अविचल जोरी।।६०।।

भावार्थ – आज गोरी (राधिका) अपने आपको सम्हाल भी नहीं पा रही है और सुरत समुद्र में झँकोरी (डूबी) मतवाली करिणि की भाँति फूली फिरती है। आलस्य से झँपते हुए नयन अरुण तो हैं ही साथ ही कज्जल से मलिन भी हो रहे हैं जो (रात की) चोरी को मानो प्रकट कर रहे हैं। प्रियतम पर करुणा रूप अमृत रस की वृष्टि करती रहती है न, इसीसे अधरों पर कुछ न्यून सी ही अरुणिमा शेष रह गयी है (अर्थात् उन्होंने प्रियतम को अधरामृत का पान कराया है इससे अधर निरङ्ग हो गये हैं।) आज किशोरी अपने अलक बन्धनों से उरोज कमलों पर भृङ्गों को बाँध रही है (अर्थात् श्रीराधा अपने उरोज कमल और अलक बन्धनों से प्रियतम श्रीकृष्ण के मन भ्रमर को बाँध रही हैं–श्रीकृष्ण इस सौन्दर्य्य पर मुग्ध हैं।) प्रेम मिलन के प्रवाह और सङ्गम में चोली के समस्त बन्धन टूट चुके हैं और कटि की डोरी–नीबी भी शिथिल हो चुकी है।

श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभुपाद कहते हैं कि जिनके हृदय में थोड़ी नहीं वरं अत्यन्त प्रीति है, ऐसी प्रेममयी नव युवति जन–सखियाँ इन (समसी राधिका) को देखकर आशीष देती हैं कि यह जोड़ी भूतल स्थित श्रीवृन्दावन में सर्वदा अविचल रहे–सदा विराजमान् रहे।

— ७१ —

अवतरण — इस पद में भी शारदीय रात्रि के रसमय दिव्य रास रसोत्सव का वर्णन है। श्रीहित सखीजी अपनी सखियों से कह रही हैं—

कल्यान

मूल— **स्याम सँग राधिका रास मंडल बनी।**
बीच नँदलाल ब्रजबाल चंपक बरन,
ज्यौंव घन तडित बिच कनक मरकत मनी।।
लेति गति मान तत्त थेई हस्तक भेद,
स रि ग म प ध नि ये सप्त सुर नंदिनी।
निर्त्त रस पहिर पट नील प्रगटित छबी,
वदन जनु जलद में मकर की चंदिनी।।
राग रागिनि तान मान संगीत मत,
थकित राकेस नभ सरद की जामिनी।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रभु हंस कटि केहरी,
दूरि कृत मदन मद मत्त गज गामिनी।।७१।।

भावार्थ — रास मण्डल के बीच में राधिका श्याम सुन्दर के साथ शोभित हैं आस पास अनेकों चम्पक वर्णी ब्रज बालाओं के बीच बीच में अनेकों नन्दलाल हैं (जिससे ऐसी छटा प्रकट होती है) जैसे मेघ और दामिनियों के मण्डल के बीच में (कोई नील पीत ज्योतिपूर्ण) स्वर्ण और मरकत मणि शोभा पा रहे हों।

नृत्य में सभी मान पूर्ण गतियाँ लेते और मुख से 'तत्ता थेई कहते हुए हाथों से हाव भावों के भेद भी दिखाते जाते हैं। 'स रि ग म प ध नि' इन सात स्वरों में (यथाक्रम) गान करते हुए आनन्दित होते हैं।

नीली सारी पहिन कर श्रीराधा ने (नाचते हुए) सम्पूर्ण नृत्य रस को प्रकट कर दिया है, उस समय की उनकी ऐसी मुख छवि प्रकट हो रही हैं, जैसे बादलों के बीच में मकर राशि की चाँदनी।

श्रीहित हरिवंशचन्द्र कहते हैं इस शरद निशा में रास के अवसर पर राग रागिनियों की तानें, उनके यथोचित उतार चढ़ाव के प्रमाण और भेदों को

देखकर आकाश में चन्द्र देव थकित हो गये, आगे न बढ़ सके। इस प्रकार लीला सरोवर के हंस रूप सिंह जैसी कटि वाली एवं मत्त गज गामिनि मेरी स्वामिनि श्रीराधा ने मदन के मद को दूर कर दिया।

— ७२ —

अवतरण—इस पद में शारदीय विहार के साथ—साथ शय्या विहार का भी वर्णन है। श्रीहित सखी अपनी सखियाँ से कहती हैं—

कान्हरौ

मूल—सुंदर पुलिन सुभग सुख दाइक।
नव नव घन अनुराग परस्पर खेलत कुँवर नागरी नाइक।।
सीतल हंस सुता रस बीचिनु परसि पवन सीकर मृदु वरषत।
वर मंदार कमल चंपक कुल सौरभ सरसि मिथुन मन हरषत।।
सकल सुधंग विलास परावधि नाचत नवल मिले सुर गावत।
मृगज मयूर मराल भ्रमर पिक अदभुत कोटि मदन सिर नावत।।
निर्मित कुसुम सैंन मधु पूरित भाजन कनक निकुंस विराजत।
रजनी मुख सुख रासि परस्पर सुरत समर दोऊ दल साजत।।
विट कुल नृपति किसोरी कर धृत, बुधि बल नीबी बंधन मोचत।
'नेति नेति' वचनामृत बोलत प्रनय कोप प्रीतम नहिं सोचत।।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक ललितादिक लता भवन रंध्रनि अवलोकत।
अनुपम सुख भर भरित विवस असु आनँद वारि कंठ दृग रोकत।।७२।।

भावार्थ—युगल किशोर नागरी—नायक पारस्परिक घनीभूत एवं नवीन नवीन अनुराग से भरे हुए परम रमणीय और सुखदायक यमुना के सुन्दर पुलिन पर रास रस खेल रहे हैं वायु सूर्य कन्या यमुना की रस पूर्ण शीतल लहरियों का स्पर्श कर करके कोमल कोमल जल फुँहारों की वर्षा कर रहा है और मन्दार, कमल और चम्पक आदि श्रेष्ठ पुष्प समूहों का सौरभ युगल किशोर के मन को हर्षित कर रहा है। युगल किशोर नृत्य की समस्त कलाओं और विलासों की अन्तिम सीमा है, वे नये—नये स्वरों में गाते और मिल कर नाचते भी हैं; जिसे देख देख कर वन के मृग छौंने, मोर, हंस, भौंरे और

कोयल तो कोयल कोटि कोटि अद्भुत कामदेव भी लजाकर अपना सिर झुका देते हें मानों सब अपने अपने गुणों की हार स्वीकार कर लेते हैं।

इधर निकुञ्ज भवन के भीतर सखियों ने पुष्प शय्या रच रखी है; समीप ही मधुर आसवों से भरे हुए अनेकों कनक घट विराज रहे हैं। सन्ध्या का समय है। दोनों सुख राशि नव किशोर पारस्परिक सुरत युद्ध के लिये अपनी अपनी (मदन) सेनाएँ सजा रहे हैं। युद्ध के समय लम्पटों के शिरोमणि रूप प्रियतम किशोरी श्रीराधा के करों को अपने कर से पकड़ कर अपने बुद्धि–बल प्रयोग से उनका नीवी बन्धन खोलना चाहते हैं तब प्रियाजी "नहीं ! नहीं !! ऐसे अमृत मय शब्द कहतीं और कुपित होती हैं, पर उनके इस कोप को प्रणय कोप समझ कर प्रियतम उसकी कोई परवाह ही नहीं करते– अपने प्रयत्न में आगे बढ़ते ही जाते हैं।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं कि रसिक ललिता आदि सखियाँ कुञ्ज भवन के छिद्रों से लगीं (इस रस विलास का) दर्शन कर रही हैं और अनुपम सुख के परिपूर्ण प्रवाह में पड़कर विवश हो रही हैं (किन्तु अपने द्वारा युगल सरकार के सुख में किसी प्रकार भी विक्षेप न आने देने के लिये, प्रेम से निकलते हुए अपने) प्राण और प्रेमाश्रुओं को कण्ठ और आँखों में ही रोक लेती हैं; (क्योंकि प्राण और आँसुओं के निकल जाने के पश्चात् यह बात छिपी न रह सकेगी और इससे अभी तत्क्षण उनके सुख में–क्रीड़ा में एक महान् अन्तराय अवश्य आ जायगा। ऐसा उनका भाव है।)

– ७३ –

अवतरण – श्रीराधा के नयनों में अनन्त सौन्दर्य्य है और अनन्त माधुर्य्य, औदार्य्य, वशीकरण और सम्मोहन भी। दूसरे का सर्वस्व अपहरण करते इन नयनों को न दया है न किसी प्रकार का भय ही।

किन्तु इनमें अपार करुणा, दया, कोमलता, उदारता और सरसता भी है अपने जनों के लिये। इन नयनों की दया–भीख माँगती हुई श्रीहित अलिजी कहती हैं–

काल्हरौ

मूल—खंजन मीन मृगज मद मेंटत,
कहा कहौं नैननि की बातैं।
सुनि सुंदरी कहाँ लौं सिखई,
मोहन बसीकरन की घातैं।।
बंक निसंक चपल अनियारे,
अरुन स्याम सित रचे कहाँ तैं।
डरत न हरत परायौ सर्वसु;
मृदु मधुमिव मादिक दृग पातैं।।
नैंकु प्रसन्न दृष्टि पूरन करि,
नहिं मोतन चितयौ प्रमदा तैं।
(जै श्री) हित हरिवंश हंस कल गामिनि,
भावै सो करहु प्रेम के नातैं।।७३।।

भावार्थ – (श्रीहित अलि ने कहा–"हे राधे!) मैं तुम्हारे नयनों की क्या बातें कहूँ ये तो खञ्जन, मीन एवं मृग छौनों का भी मद चूर चूर कर रहे हैं। हे सुन्दरि! सुनो तुमने मोहन को अपने वश में कर लेने के लिये कितनी कितनी युक्तियाँ सोच रखी हैं ? (उन अनेक युक्तियों में से नयनों की सुन्दरता भी एक युक्ति है।) अरी ! तुमने ये तिरछे, नुकीले, चञ्चल, और वेखटक (निडर) इसी तरह अरुणारे, श्याम और स्वेत (वर्णों से युक्त) नयन कहाँ से बनाकर तैयार कर लिये? इन लोचनों की मीठी मदिरा जैसी मद पूर्ण चोटों से दूसरे का सर्वस्व अपहरण करते तुम्हें डर भी नहीं लगता?"

हे प्रमोद मयी प्रमदे ! तुमने आज तक कभी मेरी ओर प्रसन्नता पूर्वक प्रेम पूर्ण दृष्टि से तनिक भी नहीं देखा ! (अत: ऐसी दृष्टि से देख देना तो उचित ही है पर यदि न देखना चाहो तो) तुम्हारी इच्छा ! जो चाहो सो करो ! हे हंस कल गामिनि! प्रेम के नाते से हमें यह सब स्वीकार है।

टिप्पणी – इस पद में श्रीप्रियाजी के नेत्रों के सौन्दर्य्य की अनुपम रीति से वर्णना है। इन परम सौन्दर्य्य मयी प्रियाजी के रूप के एक कण मात्र का भी वर्णन करने में समस्त कवि कुल मण्डली अपना सिर झुका देती है–असमर्थता प्रकट कर देती है फिर रस के तीव्र आयुध आपके नयनों का वर्णन कर ही कौन

सकता है जो सौन्दर्य्य की निधि, माधुर्य्य के भण्डार, आकर्षण के केन्द्र और अनन्त गुणों के आगार हैं। हाँ, अनुभवीऔर सूक्ष्म प्रज्ञाशील रसिक सन्तों ने उनके सम्बन्ध में जो अल्प मात्र सङ्केत सा किया है वही हमें उस अनुपम रस राशि की ओर प्रेरित करता है। ऐसा एक सङ्केत श्रीध्रुवदास जी ने किया है उन नयनों की वेधन शक्ति की ओर–

नैंकु चितै तिरछे मुसकानी।
लालहिं सुधि बुधि सबै भुलानी।।
बसी जु प्यारे लाल उर, वह चितवनि मुसकानि।
तबते कबहूँ छुटी नहिं, बसी जु उर में आनि।।

एक बार जो चितवन की मुसकान श्रीलालजी के हृदय में बस गयी, सो बस गयी, फिर कभी न निकली। कितनी विचित्र वेधन शक्ति है इन नयनों में ? जिस ओर यह चितवन मुसकान जा गिरती है रूप की वर्षा सी कर देती है–

बड़े बड़े उज्जल सुरंग अनियारे नैंना,
अंजन की रेख हेरैं हियरौ सिरात री।
चपलाई खंजन की, अरुनाई कंजन की,
उजराई मोतिन की पानिप लजात री।।
सरस सलज्ज नये रहत हैं प्रेम भरे,
चंचल न अंचल में कैसैहूँ समात री।
'हित ध्रुव' चितवन छटा जेहिं कोद परै,
तेहि ओर बरसा सी रूप की ह्वै जात री।।

–श्रीहित ध्रुवदासजी

यह वह चितवन है जिसका घायल जीता तो है पर मृत जैसा रहकर और मर जाने पर भी जीता रहता है उसके रूपामृत का पान करके। इस प्रकार वह जीवित और मृत के बीच बीच की स्थिति में पड़ा लूमता झूमता रहता है मदिरा पीने वाले की तरह। कितने गुण और अवगुणों से भरे हैं ये नयन–

अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहिं चितवत इक बार।।

–बिहारी

टिप्पणी – मानिनि नायिका श्रीप्रियाजी के वियोग में प्रियतम श्रीलालजी अत्यन्त दु:खी एवं विरह कातर हैं। सखी उनकी दशा देख कर आई है और वही सब बातें श्रीप्रियाजी से कह रही है। सखी ने कहा–"प्यारी ! वे श्याम सुन्दर तो अब आपके वियोग में प्रणय निराशा के साथ साथ जीवन से निराश हो चुके हैं। मैं सङ्कोच एवं भय वश कुछ कह नहीं सकती किन्तु दशा है ही कुछ ऐसी वे मुख में तुम्हारा नाम और हृदय में तुम्हारे ध्यान के रहने से ही अब तक जीवन धारण करने में समर्थ हो सके हैं। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति प्रत्येक दशा में केवल 'राधा हा राधा ! रटते रहते हैं।'

यह दूतिका सखी प्रियतम श्रीलालजी की दशा देख कर आयी थी, उसे मालूम था कि प्रियतम की विरह व्यथा वियोग की अन्तिम स्थिति के सन्निकट है किन्तु फिर भी वह कहे कैसे अपने मुख से भावी अमङ्गल के अशुभ शब्द ? वह हेर फेर करके केवल इतना ही कह पाती है– 'मृग शावक लोचनि। अब मान बढ़ाने का समय रहा नहीं। इसका परिणाम क्या होगा जानती हो ? मैं भय वश उसे कह नहीं सकती पर तुम समझ सको तो समझो ? मैंने उनकी जो दशा देखी है मुझे उसका भय है और सङ्कोच लगता है।'

मानिनि ने सखी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया तब उसने फिर कहना प्रारम्भ किया "करुणामयि राधे ! तुम सोचो तो सही क्या होगी उनकी दशा? वे प्रेमोन्मत्त हुए मुरली में केवल आपका ही नाम गा रहे हैं। वे चिन्तन करते हैं तो आपके रूप का। उन्हें सिवाय आपके नाम, गुण लीला गायन के और कुछ मानों रुचता ही नहीं है। उन्हें विश्व प्रपञ्च से कोई प्रीति तो रही नहीं वरं उन्हें अपने आप की भी सुधि नहीं रह गयी है। उनकी उस मन मोहन दशा का कैसे वर्णन करूँ ? प्रिये ! वे प्रेम की आतुरता से प्रेम लम्पट से बन बैठे हैं। उन्हें अब प्यास है तो आपके प्रेम की। इस प्रेम के समक्ष अब उन्हें अन्य कुछ प्रिय रह ही नहीं गया है। उनका जीवन केवल आपके आधीन.....।"

सखी से आगे की बात न कही गयी।

वह श्रीप्रियाजी के लिये एक गम्भीरार्थ पूर्ण सम्बोधन देकर रह गयी जिससे उसके आन्तरिक भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही थी। उसने कहा– "महा मोहन प्रियतम आतुर लम्पट श्रीलाल की दुख मोचनि।"

उसने सम्बोधन में ही अपना तात्पर्य प्रकट कर दिया। कण्ठावरोध या प्रेमाधिक्य वश वह अपना आशय स्पष्ट न कर सकी। क्योंकि अत्यन्त विरह में जिस अमङ्गल की भयानक भावना का निवास है उसे 'हित रूपा' सहचरि कैसे अपनी जिह्वा पर ला कहती, उसका चुप होकर दो आँसू रो देना ही पर्याप्त था।

इस पद में अव्यक्त व्यञ्जना से श्रीलालजी एवं सखी के प्रेम की बड़ी गम्भीर झाँकी करायी गयी है। यहाँ 'अमङ्गल' शब्द से दुःखी होने या चौंकने की भी आवश्यकता नहीं है कि महामङ्गल मय श्रीलालजी के लिये यह अमङ्गल शब्द क्यों और कैसे ? प्रेम की अत्युच्च स्थिति या विशेष भावों का प्रकाशन करने के लिये ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो उचित है। देखिये, श्रीकृष्ण दर्शन से श्रीराधा के मूर्च्छित हो जाने पर उनकी सखी नन्द भवन में जाकर उलाहना दे रही है। उसके शब्दों में क्या भाव हैं–

जागिहै, जीहै तो जीहैं सबैं,
नतु पीहैं हलाहल नंद के द्वारैं।

अर्थात् ("वह राधा मूर्च्छा से) जागकर जी उठेगी तो ही हम भी जीती रहेंगी अन्यथा (उनके मरणोपरान्त) हम सभी नन्द राय के द्वार पर बैठ कर विष पी लेंगी और मर जावेंगी।"

उसने स्पष्ट कह दिया कि यदि श्रीराधा का जीवन न रहा तो हम भी अपना जीवन न रखेंगी। 'हित चौरासी' में श्रीहिताचार्य्य पाद ने भी मान के अवसर में दूतिका के मुख से नायक की दशा का वर्णन कराते हुए इसी प्रकार के भाव का प्रकाश किया है–

वे तौऽब गनत जीवन जौवन तब
'हित हरिवंश हरि भजहि भामिनि जौ।

अर्थात् 'वे (प्रियतम श्रीकृष्ण) अपने जीवन और यौवन को तब कुछ गिनेंगे जब आप जाकर उनसे मिलेंगी, अन्यथा नहीं। यहाँ जीवन की गणना न करने का वही अर्थ है जो अमङ्गल मय कही जा सकती है जिसके लिये दूतिका ने मूल पद में कहा है–

हौंऽब डरनि कछु कहि न सकत इक बात सँकोचनि।

यहाँ सङ्कोच वश न कह सकने योग्य केवल इतनी ही बात थी कि आपके विना वहाँ कितना बड़ा अमङ्गल हो सकता है उसकी कल्पना भी मेरे लिये हृदय विदारक है, जहाँ प्रेमोदय के सात्विक अनुभावों का वर्णन हैं वहाँ स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वर भङ्ग, कम्प, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय एवं मूर्च्छा आदि सभी हैं। इसी प्रकार विरह में अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप व्याधि, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा एवं मरण तक का वर्णन किया गया है। प्रेम एवं विरह के प्रत्येक लक्षण समय समय पर युगल किशोर एवं सखियों में सर्वदा देखे जाते हैं जिनका वर्णन श्रीराधा सुधानिधि, गीत गोविन्द, हित चौरासी, श्रीध्रुवदास कृत ग्रन्थावली और प्रेमरस के अनेक ग्रन्थों में यत्र तत्र पाया जाता है। वहाँ प्रत्येक स्थल पर मूर्च्छा एवं मरण का वर्णन प्रेम की पराकाष्ठा के परिचय रूप में है न कि अमङ्गल भावना से। यदि यह मूर्च्छा एवं मरण के लक्षण युगल सरकार जो प्रेम की अवधि हैं इनमें न होंगे तो होंगे कहाँ? क्योंकि यही तो प्रेम की साकार मूर्त्ति हैं।

श्रीहिताचार्य्य पाद ने अपने ग्रन्थों में जिस प्रेम तत्व का प्रकाश किया है, वह अत्यन्त सूक्ष्म, अवर्णनीय, अतर्क्य और केवल अनुभव गम्य है। इसमें प्रत्येक क्षण भावों की नई–नई तरङ्गें उठती रहती हैं। इसमें मिलन है, वियोग है, विरह है, मान है, भ्रम है, काम है, क्रोध है , लोभ है, मोह है, मद है, घृणा है, उपेक्षा है, ईर्ष्या है, असूया है, अनादर है, अभाव है, कटुता है, त्रास है, पीड़ा है, मूर्च्छा है, प्रलय है और है मृत्यु। इसमें सब कुछ है। वह सब है जो कहीं नहीं है किन्तु यह सब होकर भी कुछ नहीं है, जिस रूप में इनकी व्याख्या संसार में की जाती है। यहाँ का सब कुछ केवल प्रेम है, विशुद्ध प्रेम। इसलिये अमङ्गल रूप से जिन भावों का प्रकाश सखी ने किया वह भी दिव्य प्रेम है।

— ७५ —

अवतरण — वृन्दावन के ऐकान्तिक कुञ्ज भवन में श्रीयुगल किशोर सुखमयी शय्या पर विराजमान् हैं पर प्रीति सन्मुख नहीं। प्रियतम प्रेमातुर एवं दीन हैं और प्रिया मान पूर्ण भावों के कारण रूठी सी। उन्होंने अपना श्रीमुख नीचा कर रखा है वे सतत् अपने चरण नखों की ओर निहारती और जाने क्या सोचतीं हैं, प्रियतम लालजी की ओर मानो देखना ही नहीं चाहतीं।

श्याम सुन्दर ने उन्हें मना लेने की बहुत कोशिश की पर वे असफल ही रहे। अन्त में श्रीहित अलि उनकी ओर से प्रयत्न करने लगीं। उन्होंने श्रीप्रिया जी से बड़े ही मधुर और दीन शब्दों में कहा–

कान्हरौ

मूल–हौं जु कहति इक बात सखी, सुनि काहे कौं डारत?
प्रानरमन सौं क्यौंऽब करत, आगस बिनु आरत।।
पिय चितवत तुव चंद वदन तन, तूँ अधमुख निजु चरन निहारति।
वे मृदु चिबुक प्रलोइ प्रबोधत, तूँ भामिनि कर सौं कर टारति।।
बिबस अधीर विरह अति कातर, सर औसर कछुवै न विचारति।
(जै श्री) हित हरिवंश रहसि प्रीतम मिलि, तृषित नैंन काहे न प्रतिपारति।।७५।।

भावार्थ – "हे सखि ! मैं तुमसे यह जो कुछ एक बात कह रही हूँ तुम उसे सुनकर भी टाल क्यों देती हो ? तुम विना कारण–विना अपराध ही अपने प्राण रमण (प्रियतम श्रीकृष्ण) को क्यों दु:खी कर रही हो ? वे तो एकटक तुम्हारे मुख चन्द्र की ओर देखते हैं और तुम अपना मुख नीचे झुकाये अपने चरणों की ओर देखती रहती हो ! (उनकी ओर एक बार भी दृष्टि तक नहीं करतीं !) भामिनि ! वे तो (अनुनय पूर्वक) तुम्हारे कोमल चिबुक में अपने कर कमल का स्पर्श कर कर के तुम्हें समझा रहे हैं और तुम (उपेक्षा पूर्वक) उनके हाथों को अपने हाथों से ठेल देती हो !"

(स्वामिनि ! देखो, इस समय प्रियतम) विरह के कारण अत्यन्त अधीर और दुखी हैं तथा प्रेम विवश भी। तुम तो (कुछ ऐसी हो कि) मौका वे मौका कुछ भी नहीं विचरतीं (चाहे जब मान ठान बैठतीं और फिर मनाये भी नहीं मानतीं।")

श्रीहरिवंश चन्द्र (सखी रूप से) कहते हैं "हे राधे ! अब प्रसन्नता पूर्वक अपने प्रियतम से मिल कर उनके प्रेम प्यास एवं विरह से दु:खित नयनों का प्रतिपाल क्यों नहीं करतीं ? (अर्थात् उनके नयन आपका दर्शन करके और आपको अपने अनुकूल देखकर ही सुखी होंगे।")

टिप्पणी–इस पद में कुआन्तर मान न होकर सम्भ्रम मान का वर्णन है। युगल किशोर एक ही सुखद आसन पर सुख पूर्वक विराजमान थे। अकारण

किसी भ्रम से श्रीप्रियाजी रूठ गयीं और प्रियतम की ओर से मुँह फेर कर पीठ देकर बैठ गयीं। उनके रूठते ही श्रीलालजी व्याकुल हो गये और वे उन्हें मनाने समझाने लगे हैं।

जब कभी रूठी हुई प्रियाजी उठकर अन्य किसी कुञ्ज में ज़ा बैठतीं हैं तब उसे कुञ्जान्तर मान या प्रवास मान भी कहते हैं। इस समय दोनों को प्रसन्न करके एकत्र कर देने और प्रीति उत्पन्न करा देने के लिये मध्यस्थ सखी–दूतिका की आवश्यकता होती है। सम्भ्रम मान के अवसर में चाहे दूतिका की आवश्यकता न हो पर अनुनय विनय, दीनता, अधिनता, नायक गुण, रूप प्रशंसा आदि की आवश्यकता तो तब भी होती है।

उक्त पद में श्रीहित सजनी मध्या सखी के रूप में चाटुकार हैं, जो रूठी हुई मानिनि प्रिया के समक्ष नायक श्रीलालजी की ओर से अनुनय विनय के भाव उपस्थित कर रही हैं।

– ७६ –

अवतरण – श्रीवृन्दावन के अन्तर्भाग में एक अत्यन्त रहस्य मय सघन लता भवन है। वहाँ युगल किशोर एकान्तिक रूप से सुरत क्रीड़ा का उपक्रम कर रहे हैं। क्रीड़ा के लिये प्रेम मयी सखियों ने सुमन शैय्या रचकर तैयार कर दी है, जिस पर लाड़िली लाल रस मग्न हुए आसीन हैं। दोनों , दोनों की छबि माधुरी का अवलोकन कर कर के मनोज के मधुमय भावों में डूब रहे हैं। रात्रि का मध्य होने जा रहा है और रति विहार का मधुर प्रारम्भ।

इस सुरत सुख का नित्य सुख लेने वाली श्रीहित सखी जी उसका वर्णन इस प्रकार करती हैं–

कान्हरौ

मूल–नागरीं निकुंज ऐंन किसलय दल रचित सैंन,
कोक कला कुसल कुँवरि अति उदार री।
सुरत रंग अंग अंग हाव भाव भृकुटि भंग,
माधुरी तरंग मथत कोटि मार री।

मुखर नूपुरनि सुभाव किंकनी विचित्र राव,
विरमि विरमि नाथ वदत वर विहार री।
लाड़िली किसोर राज हंस हंसिनी समाज,
सींचत हरिवंश नैंन सुरस सार री।।७६।।

भावार्थ – निकुञ्ज भवन में नागरी गण (सखियों) ने नवीन नवीन पल्लवों से शैय्या रची है। उस पर किशोरी श्रीराधा विराजमान् हैं जो प्रेम विहार की क्रीड़ाओं में चतुर एवं अत्यन्त उदार हैं। उनके अङ्ग प्रत्यङ्गों से सुरत रस प्रकट हो रहा है तथा उनके हाव भाव और भौंहों के नर्त्तन में जो माधुर्य्य लहरियाँ उठती हैं उनसे कोटि कोटि कामों का भी मन मथित हो जाता है। सुरत विहार में वाचाल नूपुरों के सुन्दर भाव पूर्ण शब्द, किङ्किणियों के विचित्र शब्द और सुरत विहार के बीच बीच में श्रीलालजी के विरमि विरमि (अर्थात् प्रिये ! आप विश्राम लें, विश्राम ले लें थक गयी होंगी इत्यादि) वाक्य (किसी अवर्णनीय रस की उत्पत्ति करते हैं !)

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद (सखी रूप से) कहते हैं कि रसमय लाड़िली एवं किशोर–श्रीराधा वल्लभलाल जो प्रेम लीला रूप मान सरोवर के हंस एवं हंसिनी हैं; अपने सहचरि समाज के नयनों को अपनी सुरत क्रीड़ा के सुन्दर रस सार से सींचते रहते हैं।

टिप्पणी–

विरमि विरमि नाथ वदत वर विहार री।

प्रियतम श्रीकृष्ण विहार के प्रवल प्रवाह के समय भी श्रीप्रियाजी के सुखों का पूर्ण ध्यान रखते हैं तभी तो विहारावसर में भी 'विरमि विरमि' कह उठते हैं। इससे उनके तत्सुखित्व भाव का परिचय मिलता है।

श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु पाद के द्वारा प्रकाशित रस मार्ग स्वसुख मय नहीं वरं पूर्ण तत्सुखमय है। नित्य विहार परिकर में से युगल, श्रीवन और प्रत्येक सहचरि प्रत्येक एक दूसरे के सुखों का ही ध्यान रखता है। और इसके लिये अपने सुखों का बलिदान भी करने को उद्दत रहते हैं। श्रीवृन्दावन अपनी सम्पूर्ण श्री सम्पत्ति–शोभा, पुष्प, दल, फल, जल इत्यादि से श्रीकिशोर किशोरी एवं सखी गण को सुखी करना चाहते हैं इसी प्रकार सहचरियाँ अपने तन, मन

प्राण एवं आत्मा तक वलिदान करके युगल रसिक नरेश को सुख प्रदान करने के लिये सदा लालायित रहती हैं। उनमें व्रज परिकर की गोपियों के समान स्वसुख वासना नहीं है। रास लीला प्रकरण में श्रीकृष्ण के अन्तर्हित होने पर गोपियों ने कहा था–

मधुरया गिरा वल्गु वाक्यया,
बुध मनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधि करीरिमा वीर मुह्यती–
रधर सीधुनाप्याययस्व नः।।

श्रीमद्भाग. १०/३१/८

अर्थात् "हे कमल नयन ! हे वीर ! विद्वानों के भी मन को प्रिय लगने वाली और मनोहर पदावली युक्त आपकी मधुर वाणी से हम आपकी दासियाँ मोहित हो रही हैं, अतः आप अपना अधरामृत पिलाकर हमें जीवन दान दीजिये।"

यह अधरामृत पान करने की इच्छा– स्व सुख वासना–नित्य विहार रस सेविका सखियों में कदापि नहीं है। वे युगल किशोर के रस मय विहार का दर्शन करके ही उस सुख का भी अनुभव कर लेती हैं जो युगल किशोर को भी अप्राप्य है इसी लिये कहा गया है–

लाल लाड़िली प्रेम ते, सरस सखिनु कौ प्रेम।

वे तत्सुख मयी सखियाँ किस अनुपम सुख का आस्वादन करती हैं उस विहार का अवलोकन करके, देखिये–

विटकुल नृपति किसोरी कर धृत बुधि वल नीवी बंधन मोचत।
नेति नेति वचनामृत बोलत प्रनय कोप प्रीतम नहिं सोचत।।
(जै श्री) हित हरिवंश रसिक ललितादिक लता भवन रंध्रनि अवलोकत।
अनुपम सुख भर भरित विवस असु आनँद वारि कंठ दृग रोकत।।

वे सखियाँ आनन्द की अधिकता या सुख के अपार प्रवाह में निकल भागते हुए अपने प्राण एवं आँसुओं को कण्ठ और आँखों में प्रयत्न पूर्वक रोकती हैं। नित्य विहारिणि सखियों में व्रज मण्डल की सखियों की भाँति स्पर्धा और ईर्ष्या नहीं है। गोपियों की ईर्ष्या के उदाहरण ब्रंज रस के गान करने वाले संतो के काव्य में खूब मिलेंगे यहाँ उनका उद्धरण देना अनावश्यक है। इसीलिये

इन सखियों की सर्वोपरिता और प्रेम की पूर्ण पराकाष्ठा प्रकट करने के लिये श्रीहित ध्रुवदासजी महाराज ने कहा है–

गोपिनु के सम भक्त न आहीं।
उद्धव विधि तिनकी रज चाहीं।।
तिनहूँ कौ मन तहाँ न परसै।
जेहि ठाँ ललितादिक छबि दरसै।।
नित्य विहार अखंडित धारा।
मधुर वैस रस विवि सुकुमारा।।

इस श्रेष्ठता का मूल है नित्य विहार की सर्वोपरि एवं विलक्षण तत्सुख मयी भावना।

अस्तु; जिस प्रकार सखियाँ युगल के सुख में सुखी हैं, उसी प्रकार युगल रसिक नरेश भी परस्पर में एक दूसरे के लिये एवं दोनों मिलकर सखियों के लिये अपने सुखों के त्याग पूर्वक उनको सुखी करने के लिये सर्व भावेन सन्नद्ध रहते हैं। पहले यह देखा जाय कि युगल किशोर सखियों के लिये क्या करते हैं !

युगल किशोर जो भी क्रीड़ाएँ करते हैं अपनी रुचि, प्रीति, इच्छा की पूर्त्ति के लिये नहीं वरं अपनी प्यारी सखियों के लिये। वे उनके खिलौने बने हुए दारु यन्त्रवत् उन्हीं प्रेममयी सखियों के हाथों खेले खिलाये जाते हैं–

दियें लियें मन रहैं सहेली दंपति मिले खिलौंना।
कानन छबि सर क्रीड़त साँवल गौर हंस मनु छौंना।।
छिन छिन नये नये अस कौतुक भये न हैं पुनि हौंना।
वृंदावन हित रूप अमी नैंननि की ओक अँचौंना।।

–चाचा वृन्दावन हित रूप

युगल किशोर सखियों के हाथ के खिलौंने ही नहीं अपितु युगल एवं सखियों की रुचि एवं क्रिया की कितनी एकता है, वे किस प्रकार एक दूसरे के भावों से ओत प्रोत हैं; देखिये–

हम गावैं सोई करैं, सहज लाड़िली लाल।
करैं लाड़िली लाल सो, हम गावैं तत्काल।।

हम गावैं तत्काल सूत दुहुँ दिसि को ऐसौ।
बुध जन लेहु विचारि कमल दिनकर को जैसौ।।
लीला ललित विहार स्याम स्यामा मन भावैं।
'भगवत रसिक' अनन्य उपासक अनुदिन गावैं।।

–श्रीभगवत रसिकजी

अब अन्त में युगल किशोर के पारस्परिक तत्सुखित्व भाव की महा मधुर झाँकी कीजिये। दोनों के तन, मन प्राण प्रेम की तल्लीनता में एक मेक हो गये हैं, श्रीहिताचार्य्य चरण इसका सरस चित्र अङ्कित करते हैं–

जोइ जोइ प्यारौ करै सोई मोहिं भावै,
भावै मोहिं जोइ सोई सोई करैं प्यारे।

दोनों की क्रिया एवं रुचि मानो एक हो गयी है और परस्पर में प्रियता भी इतनी कि–

मेरे तन मन प्रानहूँ तें प्रीतम प्रिय,
प्रीतम अपने कोटिक प्रान मोसों हारे।

यदि श्रीप्रियाजी ने अपने एक तन मन और प्राण को उन पर न्यौछावर किया है तो श्रीलालजी ने भी अपने कोटि कोटि प्राण और तन मन को उन पर न्यौंछावर कर दिया है। ये प्रियतम अपनी प्राण प्रिया के सुख सम्पादन में कितने तत्पर हैं ? देखिये–

चरन धरत प्यारी जहाँ लाल धरत तहँ नैंन।

इसलिये कि उनके सुकुमार चरणों में भूमि की कठोरता कष्ट न पहुँचा दे। इसके लिये वे अपनी पलकों की बुहारी बनाकर उस लता भवन को बुहार डालते हें जहाँ जानते हैं कि यहाँ प्रियाजी विराजेंगी–

पलकन की करि सौंहनी देत लाल तेहि कुंज।

लता भवन से निकल प्राण प्यारी श्रीराधा वन में विहार करने चली हैं, उस समय उनके सुख के लिये प्रियतम श्याम सुन्दर क्या क्या करते हैं, उसका वर्णन श्रीमदन मोहन सूरदास जी करते हैं–

पाछैं ललिता आगैं स्यामा प्यारी,
ता आगैं पिय मारग फूल विछावत जात।
कठिन कली बीनि बीनि न्यारी करत,
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुच गड़िवेई डिरात।।
दीरघ लता कर सौं निरवारत पाछैं,
गहैं डार सीस नहिं परसत पल्लव पात।
सूरदास मदन मौंहन पिय की री अधीनताई,
देखत री मेरे नैंन सिरात।।

कितनी विलक्षण अधीनता, दीनता और लगन के साथ हैं यह तत्सुख भावना ? इसीलिये श्रीहित हरिवंश महाप्रभु ने मर्यादा रेखा सी खींच दी–

प्रीति की रीति रँगीलोई जानै।

अर्थात् प्रीति की रीति तो केवल रँगीले श्रीलालजी ही जानते हैं– और कोई तो जानता ही नहीं, क्योंकि यही इतना बड़ा उत्सर्ग करना जानते हैं प्रीति के पथ पर। जो अपना सर्वस्व चढ़ा चुके हैं उनके चरणों पर उन्हीं के लिये एक सर्वश्रेष्ठ एवं आदर्श प्रेमी का पद प्रदान किया सुज्ञ रसिकों ने–

एकै प्रेमी एक रस, श्रीराधावल्लभ आहि।
भूलि कहै जो और ठाँ झूठो जानौं ताहि।।

–श्रीहित ध्रुवदासजी

इन परम प्रेमी प्रियतम श्रीलालजी की ही भाँति प्रियतमा श्रीराधा अपने प्राणेश्वर के सुख चिन्तन एवं कार्य कुशलता में सलग्न रहती हैं। यदि श्रीलालजी उनके सुखों का ध्यान मध्य रति काल में भी रख सकते हैं और 'विरमि विरमि' वचनामृत प्रवाहित कर सकते हैं तो प्रियतम सुख मयी प्रिया भी अपना सर्वस्व उनके चरणों में प्रतिक्षण समर्पित करती रहती हैं। वे उनके प्रेम में उन्हें भूल तक जाती हैं और फिर मानिनि बन बैठती हैं और उनकी विरह–व्यथित दशा सुनकर व्याकुल भी हो उठती हैं। उनका प्रेम विलक्षण है। वे कितनी तन्मय हैं प्रियतम में, इसे कभी प्रकट नहीं करना चाहतीं। प्रियतम के दुःख के सन्देश सुनते ही किस आतुरता से दौड़ पड़ती हैं इसका वर्णन हित चौरासी में देखिये–

(१) (जै श्री) हित हरिवंश परम कौंमल चित, चपल चली पिय तीर।
सुनि भय भीत वज्र कौं पिंजर सुरत सूर रणवीर।।
(२) (जै श्री) हित हरिवंश चली अति आतुर श्रवन सुनत तेहि काल।
लै राखे गिरि कुच बिच सुन्दर सुरत सूर ब्रज बाल।।
(३) चपल चली तन की सुधि बिसरी सुनत श्रवन।
(जै श्री) हित हरिवंश मिले रस लंपट राधिका रवन।।
(४) अतिसै प्रीति हुती अंतरगत हित हरिवंश चली मुकुलित मन।
निविड़ निकुंज मिले रस सागर जीते सत रतिराज सुरत रन।।

आपकी उदारता और कृपालुता पूर्ण तत्सुख भावना से समस्त व्रज साहित्य काव्य भरा पड़ा है। श्रीकृष्ण आपकी उदारता से ही आज रसिक शेखर की उपाधि से विभूषित हो सके हैं। वे जब जब प्रेम परवश होकर मूर्च्छित होते हैं तब तब प्रियतम सुख को ही सर्वस्व जानने वाली उदार स्वामिनि उन्हें अपना महामधुर अधर रस दान करती और मानो उन्हें जीवन दान देती हैं, इसी लिये ये श्रीकृष्ण सञ्जीवनी हैं। जब उदार होती हैं, तब अपना सर्वस्व दान करते न विलम्ब करतीं और न सङ्कोच ही।

श्रीहिताचार्य्य पाद कहते हैं–

करुना करि उदार राखत कछु न सार,
दसन बसन लागत जब दैं न।

एवं–

आजु रहसि मोहन सब लूटी विविध आपनी थाती।

ये वाक्य आपकी उदार भावना के प्रमाण हैं। आपके प्रेम और तत्सुख भाव की गति गोप्य और अद्भुत है–

देखौ अदभुत प्रीति की चालहिं।
सुनु सखि पियहिं प्यार सौं प्यारी,
राखति ज्यौं उर मालहिं।।
ह्वै ह्वै जात विवस मन मोहन,
निरखि नैन मन चालहिं।

'हित ध्रुव' सरस मधुर अधरामृत
प्याइ जिवावति लालहिं।।

अस्तु; समस्त नित्य विहार परिकर इसी प्रकार परस्पर 'तत्सुख सुखित्वम्' में तल्लीन है। विश्व में प्रत्येक नायिका नायक अपने अपने सुखों से बँधे स्वसुख वाञ्छा से ही समस्त कोक विलास क्रिड़ाएँ करते हैं किन्तु यहाँ यह नहीं है, एक दम विपरीत है। पूर्ण तत्सुख भाव है। और 'विरमि विरमि नाथ वदत वर विहार री' इससे उसका सङ्केत मिलता है। यह तत्सुख भावना ही श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद की नित्य विहार रसोपासना का जीवन है और मूल है।

— ७७ —

अवतरण—श्रीप्रियाजी ने रात्रि में आज अपने प्रियतम के साथ रति क्रीड़ा की है, जिसके चिह्न प्रातः काल उनके श्रीअङ्गों में स्पष्ट दिख रहे हैं। उन नखाघात आदि चिह्नों को देखकर श्रीहित अलिजी अपनी सखियों से कह रही हैं—

कान्हरौ

मूल— लटकति फिरति जुवति रस फूली।
लता भवन में सरस सकल निसि,
पिय सँग सुरत हिंडोरे झूली।।
जद्दपि अति अनुराग रसासव—
पान विवस नाहिंन गति भूली।
आलस वलित नैन विगलित लट,
उर पर कछुक कंचुकी खूली।।
मरगजी माल सिथिल कटि बंधन,
चित्रित कज्जल पीक दुकूली।
(जै श्री) हित हरिवंश मदन सर जरजर,
विथकित स्याम सँजीवन मूली।।७७।।

भावार्थ—आज युवति राधिका रस में फूली—फूली लटकती फिरती है क्योंकि वह सम्पूर्ण रात लता भवन में अपने प्रियतम के साथ सरसता पूर्वक

सुरत रस के झूले झूलती रही है न ? यद्यपि वह (अपने प्रियतम के) अनुराग रूप रसासव का पान करके विवश है फिर भी उसे गति का विस्मरण नहीं हुआ है (अर्थात् यथाशक्य अपनी ओर की सावधानी अवश्य कर रही है चाहे भले ही न कर पावे।) उसकी आँखें आलस्य से वल खा रही हैं– झँप झँप जाती हैं, केश लटें विखरी हुईं अलग लटक रही हैं और वक्ष स्थल पर कुछ कुछ खुली हुई सी चोली भी शोभित है। ऐसे ही (हृदय पर पड़ी हुई) फूल माला भी मसल गयी है, कटि की डोरी (नीबी) ढीली हो गयी है और नीलाम्बर भी पीक एवं कज्जल से चित्रित हो चुका है।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं–(स्पष्ट है कि) श्याम सुन्दर श्रीलालजी की सजीवन मूली–सञ्जीवनी जड़ी श्रीराधिका आज मदन के वाणों से जर्जर (अत्यन्त घायल) हो चुकी है अतएव विशेष रूप से थकित हो चुकी है।

टिप्पणी–

'नाहिंन गति भूली'

जब प्रियतम बार–बार प्रेम में मूर्च्छित और विवश हो जाते हैं तब प्रियाजी भी जो उन पर अपार प्रेम रखती हैं वे विवश होकर अपनी सुधि बुधि कैसे नहीं भूलतीं? यह सहज आशङ्का है।

इसका समाधान भी सहज है। प्रियतम का प्रेम उनके हृदय में समाता नहीं अतः छलक पड़ता है इसी कारण मूर्च्छा, प्रलय और प्रेम के अनेकों अनुभाव देखे जाते हैं किन्तु प्रियाजी का प्रेम जो उनके हृदय में अपने प्रियतम के लिये है इतना गम्भीर और शान्त है जैसे महासागर। जो गङ्गा और सिन्धु जैसे महानदों के मिलने पर भी किसी प्रकार किञ्चिन्मात्र भी उद्वेलित नहीं होता वह सदा अपनी एक सी स्थिति में शान्त और स्थिर रहा आता है। यदि उस प्रेम महासमुद्र में बाढ़ आ जाय वह अपनी मर्यादा का उलङ्घन कर जाय तो फिर उसका सम्हालना भी कठिन क्या, असम्भव हो जायगा। फिर तो वह महाप्रलय ही करके रुकेगा ऐसा यह अद्वितीय और अपार प्रेम स्वयमेव अपनी सम्हाल रखता और सीमा का उल्लङ्घन नहीं करना चाहता।

इसीलिये कहा गया है–

जैसी प्रीति लाल की गाई।
ताते अधिक प्रिया की माई।।

और यहाँ उस अपार प्रेम सागर की स्वयं सावधानी का वर्णन किया श्रीहिताचार्य्य चरण ने–

जद्दपि अति अनुराग रसासव,
पान–विवस नाहिंन गति भूली।

– ७८ –

अवतरण – वसन्त का सुहावना समय है। वासन्ती छटा से मुग्ध प्रिया आज स्वयं नृत्य के लिये तत्पर हैं। मानो नृत्य के बहाने हठात् प्रियतम का मन चुराना चाह रही हैं। जब वे तान बन्धान के साथ "हो हो होरी" कहती हैं तो प्रियतम रस में छक जाते और उनके प्राण प्रेम विह्वल होकर प्रियाजी पर बलिहार हो जाते हैं। सखियाँ इस रस का आस्वादन करतीं हैं। श्रीहित सजनी इसका वर्णन कर रही हैं–

कान्हरौ

मूल– **सुधंग नाचत नवल किसोरी।**
थेई थेई कहति चहति प्रीतम दिसि,
वदन चंद मनौं त्रिषित चकोरी।।
तान बंधान मान में नागरि
देखत स्याम कहत हो हो होरी।
(जै श्री) हित हरिवंश माधुरी अँग अँग,
बरवस लियौ मोहन चित चोरी।।७८।।

भावार्थ–नवल किशोरी राधिका आज सुधङ्ग नृत्य नाच रही है और थेइ थेई कहते हुए अपने प्रियतम के मुख चन्द्र की ओर ऐसे देखती है जैसे (रूप की) प्यासी चकोरी।

नृत्य गान की तान और उसके यथा•स्थल बन्धान (ठेका) सहित नृत्य करने वाली मानमयी चतुरा नागरी श्रीप्रियाजी को देखकर प्रियतम श्याम सुन्दर 'हो हो होरी' कहते (हुए हर्ष से भर कर उनकी प्रशंसा करते) हैं।

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद कहते हैं कि इस प्रकार इस नवल किशोरी ने अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों की (हाव भाव पूर्ण) मधुरिमा से प्रियतम श्रीलालजी का मन बरवश (हठात्) चुरा लिया है।

— ७९ —

अवतरण — आज युगल किशोर मिले हुए नृत्य कर रहे हैं किन्तु इस नृत्य में प्रधानता है प्रियाजी की। सखियाँ दर्शन करतीं और कुछ वाद्य बजाती हैं। श्रीहित सखी इसका वर्णन कर रही हैं अपनी समीपवर्त्ती सखियों से—

कान्हरौ

मूल—रहसि रहसि मोहन पिय के संग री,
लड़ैती अति रस लटकति।
सरस सुधंग अंग में नागरि,
थेई थेई कहति अवनि पद पटकति।।
कोक कला कुल जानि सिरोमनि,
अभिनय कुटिल भृकुटियनि मटकति।
विवस भये प्रीतम अलि लंपट,
निरखि करज नासा पुट चटकति ।।
गुन गन, रसिक राइ चूड़ामनि
रिझवति पदिक हार पट झटकति।
(जै श्री) हित हरिवंश निकट दासीजन,
लोचन चषक रसासव गटकति।।७९।।

भावार्थ— "अरी सखि ! लाड़िली राधा आज अपने प्रियतम मोहन लाल के साथ अनन्दित हो होकर रस पूर्वक लटक रही है अर्थात् लटकती हुई नृत्य कर रही है और अपने अङ्गों में सुधङ्ग नृत्य की गतियाँ भरकर 'थेई थेई' कहती

हुई भूमि पर चरणों को पटकती है। हे सखि ! ये राधा समस्त कोक कलाओं की शिरोमणि रूपा हैं अतः हाव भाव पूर्वक अपनी कुटिल भृकुटियों को मटकाती हैं या नचा रही हैं जिससे रस लम्पट भ्रमर श्रीलालजी रस विवश हो रहे हैं। उनकी विवशता को देखकर श्रीराधा अपनी उँगलियों से नासा पुट चटका रही है अर्थात् श्रीलालजी को सचेत करने के लिये उनकी नासिका के निकट अपनी उँगलियों से चुटकी चटका बजा रही है।"

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु कहते हैं "इस प्रकार अनेक गुण गणों से पूर्ण एवं रसिक राज चूड़ामणि श्रीलालजी को रिझा रही है एवं उनकी मालाएँ, पदिक और वस्त्रों को झटक रही है, (मानो रस का उद्दीपन कर रही है।) समीप में स्थित सखी गण इस नृत्य को देखकर अपने नेत्र रूप प्यालों से इस रस आसव का पान कर रही हैं, (या इसे तृष्णा पूर्वक शीघ्र शीघ्र गटक रही हैं।)

– ८० –

अवतरण – शैय्या विहार के अवसर की एक अत्यन्त ही गोपनीय भावना का चित्रण इस पद में किया गया है। जो सुज्ञ रसिकों की हृदय गम्य भावना का प्राण है। उसका अधिक स्पष्टीकरण द्रौपदी का चीर हरण होगा। इस रस भावना का कथन, श्रवण और मनन सब कुछ मौन में है क्योंकि इसकी चर्चा वैखरी वाणी में नहीं वल्कि परा पश्यन्ति में होती है; जैसा कि श्रीकृष्ण गढ़ाधीश सन्त नागरीदास जी ने कहा है–

चरचा करी कैसे जाय?
बात जानत कछुक हम पै कहत जिय थहराय।।
मौन ही में कहनि ताकी सुनत श्रोता नैंन।
सोऽब नागर लोग बूझत कहि न आवत बैंन।।

अतः विवशता है इसके स्पष्ट करने में। रसिक जन अनुभव करें कि श्री हिताचार्य चरण क्या कह रहे हैं, वे कौनसी रसामृत धारा बहा रहे हैं–

कान्हरौ

मूल—वल्लवी सु कनक वल्लरी तमाल स्याम संग,
लागि रही अंग अंग मनोभिरामिनी।
वदन जोति मनौं मयंक अलक तिलक छबि कलंक,
छपति स्याम अंक मनौं जलद दामिनी।।
विगत वास हेम खंभ मनौं भुवंग वैंनी दंड,
पिय के कंठ प्रेम पुंज कुंज कामिनी।
(जै श्री) सोभित हरिवंश नाथ साथ सुरत आलस वंत,
उरज कनक कलस राधिका सुनामिनी।।८०।।

भावार्थ — (श्रीहित सखी ने कहा—"सखियो ! आज) स्वर्ण लता रूप परम सुन्दरी वल्लवी श्याम तमाल के साथ अङ्ग अङ्ग से लिपट चिपट रही है। उसकी वदन ज्योति क्या है; चन्द्र और उस वदन पर शोभित अलकें एवं तिलक ही हैं उस चन्द्र के कलङ्क। वह कनक लता, श्याम के अङ्क में ऐसी चिपट रही है, जैसे घन में दामिनि।

वह विगत वसना स्वर्ण स्तम्भ सी जान पड़ती है, उसका वेणी दण्ड क्या है मानो भुजङ्ग—काला नाग। वह प्रेम पुञ्ज कुञ्ज कामिनि अपने प्रियतम के कण्ठ से लगी है। वह सुरतालस मयी शोभा पा रही है श्रीहरिवंश नाथ के साथ। कनक कलशोपम उरोजों से शोभामयी सुन्दरी वह सुन्दर नाम वाली राधा ही है।"

टिप्पणी— श्रीराधा रस की अधिष्ठात्री देवी है। वे रस की अनन्त और ओर छोर रहित विशाल धारा हैं—स्वयं रस रूपा हैं। इन्हीं से रस की प्राप्ति करके श्रीकृष्ण रसिक शिरोमणि कहलाते हैं। श्रीराधे के विना श्याम सदा ही आधे हैं। पूर्ण तो वे इसी रस मूर्त्ति को पाकर हो सके हैं

अस्तु; तज्ज्ञात्वा तदेव भवति 'अर्थात्' उस ब्रह्म को जानकर वही हो जाता है,' इस न्याय से जो इन श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण—रस ब्रह्म की उपासना करके उनका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे भी रस रूप ही हो जाते हैं। इस तरह इन रस ब्रह्म को प्राप्त समस्त परिकर अर्थात् वृन्दावन सहचरि एवं खग मृगादि दिव्य रस मय ही हैं या यों कह दें—सर्व रसमयं ब्रह्म अर्थात् यह सब चराचर रसमय ब्रह्म ही है।

इस रस ब्रह्म की उपासना श्रीवृन्दावन के रसिक भक्तों ने बड़ी तल्लीनता से की है। आज भी उनकी प्रेम तल्लीनता की झाँकी उनके रसमय हृदय से निनादित प्रेम वीणा की झनकारों–गीतों से प्राप्त होती है। उन वाणियों में, शब्दों में, पदों में वह अनिर्वचनीय रस भरा है, जिसका आस्वादन किया जा सकता है अपनी पात्रता के अनुसार, किन्तु वर्णन नहीं।

इसका आस्वादन होता है दिव्य हितमय आत्मा में और वर्णन होता है परा पश्यन्ति में। श्रीवन के रसिक जन–पूर्वाचार्यों ने अपनी अनन्त शक्ति के योग से उस 'परा पश्यन्ति' के विषय को भी एक बार वैखरी का विषय बना दिया। अलभ्य और असुलभ वस्तु को सुलभ कर दिया उन्होंने कृपा परवश होकर। वे समर्थ थे, स्वयं रस रूप थे; उनके लिये यह बात क्या असम्भव थी ? उसी परा पश्यन्ति के स्वानन्दानुभव की एक झाँकी है। यह–

वल्लवी सु कनक वल्लरी....

.....राधिका सुनामिनी।।

एक तो इसके स्पष्टीकरण की शक्ति नहीं और दूसरे इसे स्पष्ट करते हृदय काँपता है वाणी रुक रुक जाती है, आखें झूम झूम जाती हैं, भावों में ज्वार आ जाता है और हठात लेखनी जड़ता धारण करने लगती है, ... विवशता है।

......ब्रह्म अव्यक्त है और रस भी अव्यक्त है। अव्यक्त का अर्थ ही है जो मन, वाणी एवं बुद्धि किसी के भी द्वारा न तो प्रकट किया जा सके न उनमें आ सके सारांश यह कि जो इनका अविषय हो। अतः अपनी शक्ति के अनुसार कहे सुने जाने पर भी यह रस शेष रह जाता है क्योंकि अनादि है अनन्त है। इस अनादि अनन्त व्यापक अव्यक्त रस ब्रह्म का वर्णन कौन करे और कैसे करे ? इस रस क्षेत्र के भावों की ओर केवल इङ्गित मात्र किया जाता है। ये सङ्केत अवश्य किसी कुशल कलाकार की अपेक्षा रखते हैं क्योंकि इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म रसानुभव का प्रकाशन भी तो एक विलक्षण कला है, इन कलाकारों में से एक श्री जयदेव कविराज भी हैं। उनकी काव्य कला कुशलता और रसानुभव प्रकाश कला कुशलता कीओर रसिक पाठक गण अपनी रसमयी प्रज्ञा को प्रेरित करें।

मानवती नायिका श्रीराधा को निकुञ्ज भवन तक ले चलने के लिये दूतिका रस विलास की स्मृति दिलाकर उल्लास जागृत करती हुई प्रियतम श्रीलालजी से मिला देने का उद्योग कर रही है। वह कह रही है–

उरसि मुरारेरुपहित हारे घन इव तरल वलाके।
तडिदिव पीते रति विपरीते राजसि सुकृत विपाके।।
विगलित वसनं परिहृत रसनं घटयजघनमपिधानम्।
किशलय शयने पङ्कज नयने निधिमिव हर्ष निधानम्।।
धीर समीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली।
गोपी पीन पयोधर मर्दन चञ्चल कर युग शाली।।

"दूती ने कहा–नितम्बिनि ! अब गमन करने में विलम्ब की आवश्यकता नहीं रही। देखो न, गोपियों के पुष्ट पयोधरों का मर्दन करने में अत्यन्त चञ्चल एवं कुशल मदन मनोहर श्रीकृष्ण आज केवल तुम्हारे लिये यमुना पुलिन धीर समीर पर विराज रहे हैं। वे तुम्हारा नाम ले लेकर वंशी बजाते और तुम्हारे आने की आहट के भ्रम वश पत्तों की खरखराहट से भी चौंक चौंक उठते हैं। राधे ! वे सचकित नयनों से निरन्तर तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं। जब वे तुम्हारे लिये उतने व्याकुल है तब तुम भी चलकर उनसे मिलो न !"

"देखो कैसी काली–काली रात है। इस अँधेरी रात में डर किस बात का ? तुम्हें कोई जान भी न सकेगा, खूब छिपेगी काली रात में तुम्हारी नीली साड़ी। अब शीघ्र अपना नील निचोल पहन लो और इन वाचाल नूपुरों को–चुगल खोरों को छोड़ दो वैरी की तरह। ये हैं भी इसी योग्य !"

"प्यारी राधे ! तुम वहाँ चलकर श्याम सुन्दर के हृदय से ऐसी लग जाओ, जैसे घन के सङ्ग तरल दामिनि। जैसी तुम गौराङ्गी चपला हो वैसे वे भी सघन नील नीरद श्याम हैं। जब तुम उनके हृदय से चिपटोगी–रति विपरीत विलास करोगी तभी यह तुम्हारी घन दामिनि की उपमा सत्य जँचेगी। उस मिलन के अवसर में तुम विगलित वसना और भूषण रहित हो जाना और ललित कनक लता की भाँति उनके श्रीअङ्गों से लग जाना। हे कमलनयने ! जब वे तुम्हें किशलय शय्या पर निवेशित करेंगे तब उन रसनिधि के रस का आस्वादन केवल तुम्हारे ही भाग्य में होगा।"

चलो, बहुत हो चुका मान। मान छोड़ो और मान लो मेरी बात। शीघ्र चलकर मधुरिपु की समस्त बाधाओं को दूर कर दो और प्राप्त कर लो अपना स्वत्व–उन पर एकाधिकार।"

दूतिका की बात सुनकर श्रीराधा चल पड़ीं और अपने प्राण प्रियतम से जा मिलीं। पश्चात् वहाँ मिलन काल में क्या हुआ उसका वर्णन कौन करे ? उसका वर्णन करने में समस्त कवि कुल मण्डली थकित है क्योंकि मिलन सुख अवर्णनीय है।

उक्त वर्णन में श्रीजयदेव कविराज ने भावी मिलन सुख की कल्पना के रूप में दूतिका के मुख से उस दिव्य रस का सङ्केत किया फिर भी वह बात न कही जा सकी जो दोनों के अन्तर में भर रही थी किंवा युगल किशोर की रसानुभूति थी।

विरह का गान सबने किया है। इसी विरह गान से समस्त व्रज भाषा साहित्य भरा पड़ा है। 'सूर' को सूर (सूर्य) की उपाधि से इसी विरहगान ने विभूषित किया, क्योंकि उन्होंने गोपियों के विरह गीत गाने में कलम तोड़ दी है। विरह में वेदना है, पीड़ा है, प्यार है उपालम्भ है, आशा है, अभिलाषा है और बहुत कुछ है किन्तु मिलन में क्या है ? दो सृष्टियों का एकीकरण दो प्राण, दो मन, विविध इन्द्रियों की एकता, तल्लीनता और दो सृष्टियों का लय प्रलय। यहाँ अनुभव अनुभावक एवं अनुभाव्य का एकीकरण है त्रिपुटी का विनाश है। यहाँ प्रेमी प्रेमास्पद और प्रेम रूप गङ्गा यमुना एवं सरस्वती का सङ्गम है। इस त्रिवेणी में तीन धाराओं का ही जब विश्लेषण कठिन है, तब अन्य किन्हीं बातों की वहाँ गुंजाइश ही कहाँ है ?

इस प्रेम सङ्गम त्रिवेणी का वर्णन किया श्रीहित हरिवंश चन्द्र प्रकट प्रेमावतार ने। क्योंकि वही सफल हो सकते थे। प्रेम स्वयं अपनी लीला एवं अपना स्वरूप लखा दे यह सम्भव है। उस अवर्णनीय केवल अनुभव गम्य प्रेम विलास का वर्णन है–

वल्लवी सु कनक वल्लरी ....
......राधिका सुनामिनी।

शृङ्गार रस के दो भेद हैं–

विप्रलम्भ (वियोग) शृङ्गार और सम्भोग (संयोग) शृङ्गार। श्रीहिताचार्य्य चरण की उपासना का मूल सिद्धान्त है मिलन या सम्भोग शृङ्गार। इस रस सम्भोग की पुष्टि के लिये अनेकों उद्दीपन स्वीकार किये गये हैं; यों तो यहाँ सभी परिकर दिव्य रस का ही विकसित रूप है। इस सिद्धान्त के अनुसार यहाँ जो मान, विरह आदि देखे जाते हैं वे भी विलास के लिये स्वीकार किये गये हैं, वस्तुत: वे हैं नहीं, उनका तो भ्रम भी नहीं है। युगल किशोर नित्य निरन्तर मिले सम्भोग लीलाओं में मग्न रहते हैं।

इस मिलन में अन्तर के लिये कोई स्थान ही नहीं है–

"तिन बिच अन्तर पलकौ नाँही।"

यह नित्य मिलन किञ्चिन्मात्र भी विरह या अन्तर नहीं सह सकता वरं पूर्ण लालच के साथ वह एक दूसरे को आत्म सात कर देना चाहता है परस्पर में–

"चाहत प्रान में प्रान समाई।"

प्रेमी और प्रेमास्पद का आत्म सात हो जाना, द्वैत की सृष्टि का लय कर देना ही रस की, मिलन की या सम्भोग शृङ्गार की पराकाष्ठा है–

रस की अवधि इहाँ लौं माई।
विवि तन मन एकै हो जाई।।

–हित ध्रुवदासजी

इस महामधुर मिलन की परिभाषा करनी कठिन है। उसकी ओर केवल सङ्केत किया जा सकता है । कितना विलक्षण है यह मिलन रस ?

मधुर ते मधुर अनूप ते अनूप अति,
रसनि कौ रस सब सुखनि कौ सार री।
विलास कौ विलास निज प्रेम की है राज दसा,
राजै एक छत दिन विमल विहार री।।
छिन छिन त्रिषित चकित रूप माधुरी में,
भूले से ही रहैं कछु आवै न विचार री।

भ्रमहूँ कौ विरह कहत जहाँ डर आवै,
ऐसे हैं रँगीले 'ध्रुव' तनु सुकुमार री।।
–श्रीहित ध्रुवदासजी

यह विरह विक्षेप रहित नित्य मिलन ही श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु पाद की उपासना का मूल है और उसका उदाहरण है–

वल्लवी सु कनक वल्लरी...
....राधिका सुनामिनी।

अथवा–

रँगमगे दंपति रसमसे, हित ध्रुव अद्भुत केलि।
छवि तमाल सौं लपटि रही, मानहुँ छबि की बेलि।।

यह सम्भोग शृङ्गारमय नित्य विहार ही रस की पराकाष्ठा है। इसी पराकाष्ठा की ओर इस 'वल्लवी ....नामिनी' पद से सङ्केत किया गया है।

– ८१ –

अवतरण – युगल किशोर नृत्य कर रहे हैं। नृत्य में श्रीप्रियाजी की प्रधानता है। सखियाँ दर्शन करके आनन्दित हो रही हैं। इस पद में श्रीप्रियाजी के नृत्य कालीन शृङ्गार का वर्णन है–

केदारौ

मूल– **वृषभानु नंदिनी मधुर कल गावै।**
विकट औघर तान चर्चरी ताल सौं,
नंदनंदन मनसि मोद उपजावै।।
प्रथम मज्जन चारु चीर कज्जल तिलक,
श्रवन कुंडल वदन चंदनि लजावै।
सुभग नकबेसरी रतन हाटक जरी,
अधर बंधूक दसन कुंद चमकावै।।
वलय कंकन चारु उरसि राजत हारु,
कटिव किंकिनी चरन नूपुर बजावै।
हंस कल गामिनी मथति मद कामिनी,
नखनि मदयंतिका रंग रुचि द्यावै।।

निर्त्त सागर रभसि रहसि नागरि नवल,
चंद चाली विविध भेदनि जनावै।
कोक विद्या विदित भाइ अभिनय निपुन,
भ्रू विलासनि मकर केतनि नचावै।।
निविड़ कानन भवन बाहु रंजित रवन,
सरस आलाप सुख पुंज बरसावै।
उभै संगम सिंधु सुरत पूषन बंधु,
द्रवत मकरंद हरिवंश अलि पावै।।८१।।

भावार्थ – ("सखि!) श्रीवृषभानु नन्दिनी मधुर और सुन्दर गान करती हैं और गान में अत्यन्त विलक्षण औघर तान से नन्द नन्दन के मन में भी आनन्द उत्पन्न कर देती हैं। उन्होंने प्रथम स्नान फिर सुन्दर वस्त्र, आँखों में कज्जल, ललाट पर तिलक और कानों में कुण्डल धारण किया है और इस भूषा से अनेकों चन्द्रमाओं को लज्जित कर रही हैं। नासिका पर सुन्दर नक बेसर शोभित है जो स्वर्ण एवं रत्नों से जटित है। जिसके बन्धूक पुष्प से अधर और कुन्द सी दन्तपंक्ति है। वाहुओं में वाजूबन्द कलाइयों में सुन्दर कङ्कण एवं हृदय पर हारवली शोभित है एवं कटि में करधनी और चरणों में नूपुर बज रहे हैं उनके। वह हंस कल गामिनि समस्त सखियों के गर्व को मथ रही है। चरण नखों में मेहंदी का रङ्ग कैसा चमक रहा है? वह नव नागरी आनन्दित हो होकर मानो नृत्य रस के सागर में कल्लोल कर रही है। नृत्य के समय चिन्द नामक अपनी विशेष गति से अनेक प्रकार के भाव भेदों को प्रकट कर रही हैं। श्रीराधा समस्त कोक विद्याओं की पूर्ण ज्ञाता हैं, भाव और अभिनयों में भी चतुर हैं अपने केवल भृकुटियों के सङ्केतों से ही कामदेव के समूहों को नचा रही हैं।"

सखि ! अब वे सघन निकुञ्ज भवन में रमण श्रीलालजी के कंधों पर अपनी भुज लताएँ लपेटे हुए सरस आलाप (गान) के साथ मानो सुख समूहों की वृष्टि कर रही हैं। फिर कभी दोनों मिलन-रूप समुद्र में सुरत रस का कमल खिलता है जिससे (प्रेम का) मकरन्द रस बह निकलता है जिसे 'हरिवंश' अलि (सखी या भ्रमर) पान करती है।

अवतरण – पद में श्रीप्रियाजी के रूप, गुण, शील, सौन्दर्य्य, माधुर्य्य, उदारता, सुकुमारता, कला, विद्या, हाव भाव चातुरी रसिकता आदि अनेक लक्षणों का वर्णन है। श्रीप्रियाजी के इन्हीं लक्षणों पर श्रीलालजी आसक्त हैं और इतने आसक्त कि किसी प्रकार उनसे छूट नहीं सकते। श्रीहित सखीजी इन्हीं बातो का वर्णन करती हैं–

केदारौ

मूल–नागरता की रासि किसोरी।
नव नागर कुल मौलि साँवरौ, वर बस कियौ चितै मुख मोरी।।
रूप रुचिर अँग अंग माधुरी, बिनु भूषन भूषित ब्रज गोरी।
छिन छिन कुसल सुधंग अंग में, कोक रभस रस सिंधु झकोरी।।
चंचल रसिक मधुप मौंहन मन, राखे कनक कमल कुच कोरी।
प्रीतम नैंन जुगल खंजन खग, बाँधे विविध निबंधनि डोरी।।
अवनी उदर नाभि सरसी में, मनौं कछुक मदिक मधु घोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश पिवत सुंदर वर, सींव सुदृढ़ निगमनि की तोरी।।८२।।

भावार्थ–किशोरी राधिका सुन्दरता की राशि हैं। इन्होंने नव नागर समूह के भी सिरमौर श्याम सुन्दर को अपनी चितवन और ललितभाव से मुख मोड़ने की क्रिया से ही विवश कर दिया है। इनका रूप अत्यन्त रुचिर है और अङ्ग–अङ्ग में माधुर्य्य है। ये व्रज गोरी विना भूषणों के ही भूषित है अर्थात् अत्यन्त रमणीय है। यह सुधङ्ग नृत्य के प्रत्येक अङ्ग में कुशल तो है ही अपितु एकान्तिक कोक विलास के रस समुद्र में भी प्रतिक्षण सराबोर सी हैं। इन्होंने परम चञ्चल रसिक मन मोहन भ्रमर के मन को अपने कनक जैसे कुच कमलों की कोर से ही अटका लिया है और प्रियतम के युगल नयन खञ्जन पक्षियों को भी (अपने रूप माधुर्य्य आदि) अनेक बन्धन डोरियों से बाँध रखा है।

श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु पाद (सखी रूप से) कहते हैं इन परम सौन्दर्य्य मयी श्रीराधा ने अपने उदर रूप भूमि में स्थित नाभि कुण्डिका में कुछ एक मधुर एवं मादक रस घोल रखा है, जिसे सुन्दर शिरोमणि श्रीलालजी वेदों की भी सुदृढ़ मर्यादा–सीमाओं को तोड़कर उल्लङ्घन करके पी रहे हैं।

टिप्पणी–

"......पिवत सुंदरवर सींव सुदृढ़ निगमनि की तोरी

राजा परीक्षित के प्रश्न–धर्म स्थापना के लिये अवतरित होकर भी भगवान् श्रीकृष्ण ने रास–क्रीड़ा जैसा जुगुप्सित कर्म क्यों किया ?–पर शुकदेव जी ने एक ही उत्तर दिया था–

धर्म व्यत्तिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।

श्रीमद्भागवत–१०/३३/३०

अर्थात् "धर्म के उल्लङ्घन कर देने की सामर्थ्य ईश्वर में है।" क्योंकि सारी मर्यादाएँ उन्हीं की स्थापित की हुई हैं न ! इस सिद्धान्त के अनुसार नित्य विहारी श्रीराधावल्लभ लालजी की भी क्रीड़ा समस्त वेद् उपनिषद्, शास्त्र एवं पुराणों की मर्यादाओं से अतीत है, एक दम परे है। जेसा कि सन्त महानुभाव गण कहते हैं–

(१) अलक्ष्यं राधारव्यं निखिल निगमैरप्यतितरां,
रसाम्भोधेः सारं किमपि सुकुमारं विजयते।

–श्रीहित हरिवंशचन्द रसिकाचार्य्य

अर्थात् "समस्त वेदों के शिरोभूषण उपनिषदों से भी अलक्षित राधा नामक जो एक तत्व है, उस परम रस सागर सार रूप अनिवर्चनीय किन्हीं सुकुमारी की जय हो।"

(२) आगम निगम अगोचर राधे चरन सरोज व्यास अवतंस।

श्रीहरिराम जी 'व्यास'

(३) पाई रस भक्ति गूढ़ जुग जुग जग दुर्लभ भव इन्द्रादि विधिम्।
आगम अरु निगम पुरान अगोचर सहज माधुरी रूप निधिम्।।

एवं–

निगम लोक मरजाद भंजि क्रीडन्त रंग रस।

–श्रीदामोदर 'सेवक जी'

(४) अमग निगम की कौन चलावै।
महाविष्नु के मन नहिं आवै।।

–श्रीहित ध्रुवदासजी

(५) सम्प्रदाय नवधा भगति वेद सुरसरी नीर।
ललिता सखी उपासना ज्यौं सिंहिनि कौ छीर।।

–श्रीभगवत रसिकजी

इत्यादि महापुरुषों के वाक्य प्रमाण हैं। इसी तत्व की ओर नेति नेति शब्दों से श्रुतियों ने लक्ष्य कराया है। यह नित्य विहार सर्व उपनिषदोपरि तो है ही साथ–साथ सृष्टि चक्र से भी सर्वथा अतीत है। नित्य विहारी श्रीकृष्ण के लिये विश्व के उद्भव पालन एवं संहार से कोई सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये तो प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भिन्न भिन्न ब्रह्मा विष्णु और शिव कार्य किया करते हैं।

इस प्रकार यह नित्य विहार वेदोपरि, और विश्व से भी परे है। वेदों की सारी मर्यादाएँ विश्व के सञ्चालन के लिये हैं मनुष्यों की उच्छृङ्खल वृत्तियों के नियमन के लिये हैं, गुणातीत, सर्वेश्वर, भूमा और अव्यक्त तत्व श्रीनित्य विहारी लाल पर नियमन, शासन करने के लिये नहीं।

यह नित्य क्रीड़ा नित्य विहारी लाल की सर्व तन्त्र स्वतंत्र आत्म क्रीड़ा है–प्रेम विलास है। वे अपनी आत्मा श्रीराधा और श्रीराधा की अनेक मूत्ति रूपा सखि जनों के साथ रमण करते हैं, इसी से राधा रमण कहे जाते हैं। यह विहार प्राकृत मन बुद्धि और इन्द्रियों का विषय नहीं है इनसे अलक्षित है अतः जब इनका अविषय है तब उस पर टीका टिप्पणी और उचित अनुचित की मोहर लगाने का किसी को हक ही कैसा ?

यदि इस विहार को तात्विक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि यह नित्य विहारी लाल की आह्लादिनि सन्धिनि, लीला और क्रिया शक्ति का दिव्य विलास है। यह विलास अत्यन्त गोपनीय है अतः वेदों का भी अविषय है, यह स्तर वेदों से ऊँचा है जो भगवद्रूप रसिक महात्मा गणों के हृदय में ही प्रकट हुआ।* जो स्तर वेदों से ऊपर है उसमें वेदों की मर्यादाओं का उल्लङ्घन सहज है।

---

*जिस प्रकार वेदों का साक्षात्कार मन्त्र–द्रष्टा मुनि और ऋषियों ने किया था, उसी प्रकार इन रसिकों ने–

नित्य बिहार उद्धार कियौ, मथि निज हृदय सिंधु वर वारिज।।

वास्तव में वेदों की मर्यादाओं का जाल तो माया मुग्ध जीवों को नियन्त्रण में लाने के लिये है। ब्रह्माजी ने वेद की कर्म डोरीसे सबको नाथ दिया है जिससे ये उच्छृङ्खल न हो जायँ और क्रमशः सत्कर्म परायणता से उठकर भगवत्प्राप्ति रूप परम फल को प्राप्त करें। तब इन मर्यादाओं से परम पुरुष प्रभु को बँधा देखना कितना गलत दृष्टि कोण है।

जब उनके उपासक महात्मा गण इन कर्म शृङ्खलाओं से नहीं बँध सकते तो फिर परात्पर पुरुष, वेदातीत, त्रिगुणातीत परिपूर्णतम भगवान् नित्य विहारी श्रीराधावल्लभ लाल ही उसके बन्धन में कैस आ सकते हैं ? उनके समक्ष इन तुच्छ मर्यादाओं का अस्तित्व ही क्या है ? श्रीशुकदेव जी कहते हैं–

यत्पादपङ्कज पराग निषेव तृप्ता
योग प्रभाव विधुताखिल कर्मबन्धाः।
स्वैरं चरन्ति मुनयोजऽपि न नहयमाना–
स्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः।।

श्रीमद्भा. १०/३३/३५

अर्थात् "जिनके चरण कमलों कीधूलि के सेवन से तृप्त भक्त जन और योग साधन के प्रभाव से सम्पूर्ण कर्म बन्धनों से मुक्तयोगी जन भी सब प्रकार के विधि निषेध रूप बन्धनों से छूटे हुए स्वच्छन्द विचरते हैं फिर स्वेच्छा शरीरधारी श्रीहरि को ही किस प्रकार कर्म का बन्धन हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता।"

अस्तु; इस नित्य विहार में वेद एवं शास्त्रों की मर्यादाएँ तो पग पग पर टूटती हैं या यों कह दें कि अधिकारी गणों के लिये कर्म बन्धन रूप डोरियों को तोड़ दिखाने के ही लिये है तो यह कथन अत्युक्ति रूप न होगा।

यह मर्यादातीत विहार केवल श्रीवृन्दावन में ही है और वृन्दावन के रसिक जनों ने बहुत बहुत प्रकार से इसका गान किया है। इस मर्यादातीत गान से आज भी श्रीवृन्दावन का रस साहित्य गौरवान्वित है जिसकी एक झाँकी है यह–

अवनी उदर नाभि सरसी में मनौं कछुक मादिक मधु घोरी।
(जै श्री) हित हरिवंश पिवत सुंदर वर, सींव सुदृढ़ निगमनि की तोरी।।

– ८३ –

अवतरण – हित मयी सखियों ने लता भवन में शय्या रच दी है। रात्रि का समय है। युगल किशोर के शयन की बेला है किन्तु अकारण या रस वृद्धि के लिये प्रियाजी मान कर बैठी हैं। श्रीहित सजनी उन्हें मना रही हैं–

केदारौ

मूल– **छाँड़िदै मानिनी मान मन धरिबौ।**
प्रनत सुंदर सुघर प्रानवल्लभ नवल,
वचन आधीन सौं इतौ कत करिबौ।।
जपत हरि विवस तव नाम प्रतिपद विमल,
मनसि तव ध्यान ते निमिष नहिं टरिबौ।
घटति पलु पलु सुभग सरद की जामिनी,
भामिनी सरस अनुराग दिसि ढरिबौ।।
हौं जु कहति निजु बात सुनु मानि सखि,
सुमुखि बिनु काज घन विरह दुख भरिबौ।
मिलत 'हरिवंश हित' कुंज किसलय सयन,
करत कल केलि सुख सिंधु में तरिबौ।।८३।।

भावार्थ – (श्रीहित सजनी ने कहा–) "मानिनि ! अब मन में इस तरह का मान रखना छोड़ दो ! देखो, परम सुन्दर नवल किशोर तुम्हारे प्राण वल्लभ ही तुम्हारे प्रति दीन हो गये हैं तुम्हारे वचनों के अधीन हैं, (अर्थात् तुम्हारे कहे में हैं।) फिर उनसे ही ऐसा (मानादि व्ययवहार) करना (क्या उचित है) ? हे प्यारी ! श्रीहरि तो तुम्हारे प्रेम में विवश हुए क्षण क्षण में तुम्हारे पवित्र नाम का जप करते हैं और तुम्हारे ध्यान से पल मात्र के लिये भी अलग नहीं होते। हे भामिनि ! यह सुन्दर शारदीय रात्रि क्रमशः पल पल करके घट ही तो रही है अतः आपका सरस अनुराग की ही ओर ढलना उचित है; (मान की ओर नहीं।")

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद (सखी रूप से) कहते हैं–"हे सखि ! मैं जो कुछ कह रही हूँ यह तुम्हारे लिये अपनी (खास) बात है अतः उसे सुनो और मान भी लो। सुमुखि ! बिना किसी कारण के व्यर्थ ही इतना घनीभूत विरह दुख

भोगना क्या उचित है ?" चल कर कुञ्ज भवन में रचित किशलय शय्या पर मधुर मधुर सुन्दर सुन्दर प्रेम क्रीड़ा कीजिये और सुख समुद्र का अवगाहन कीजिये !"

टिप्पणी—सम्भोग शृङ्गार में मान एक विशेष दुःख दायक स्थिति है चाहे फिर वह नायक के लिये हो या नायिका के लिये। स्वामी श्रीहरिदासजी ने अपने केलिमाल में एक पद लिखा है, जिसमें श्रीलालजी के द्वारा प्रार्थना करायी गयी है कि हे प्रियाजी ! आप मान न किया करें मुझे ऐसा वरदान दीजिये। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि कितनी वेदना पूर्ण स्थिति है इस मान की। इसमें उद्विग्नता और विकलता का तो ओर छोर नहीं मिलता। बात बात पर भय और आशङ्काएँ खड़ी दिखती हैं, श्रम जो मानिनि के मनाने में होता है उसका तो वारापार नहीं। फिर भी यह 'मान' सम्भोग शृङ्गार का एक विशेष अङ्ग है।

यद्यपि इस नित्य विहार में विरह मान आदि का भ्रम भी नहीं है फिर भी मान है। इसका यह अर्थ कि यहाँ 'मान' मान के अर्थ में नहीं वरं रस की वृद्धि के लिये केलि के विकाश के लिये है क्योंकि इससे रस की विशेष पुष्टि होती है, ऐसा रसिकाचार्य्यों का मत है।

नित्य विहार की क्रीड़ा में इस मान की स्थिति श्रीप्रियाजी के हृदय में नहीं है यह वहाँ वाह्य रूप से है। वे सदा अपने प्रियतम के अनुकूल एवं दक्षिण होकर भी मानवती बन जाती हैं इसका बड़ा ही गम्भीर आशय है। वह यह कि वे जानती हैं कि मेरी सर्व काल अनुकूल प्रीति से श्रीलालजी को मेरे प्रति, प्रतिक्षण द्रवित होना पड़ता है तब वे अपने प्रेम प्रवाह को रोकने में स्वयं असमर्थ हो जाते हैं अतः नाट्य रूप से ही सही मान धारण करके उनके बढ़ते हुए प्रवाह को रोक देती हैं; जिससे उन्हें अपने स्ववश रहने का अधिक अवसर मिले यह है कृपालु श्रीराधा के मान का गम्भीरार्थ।

स्वामी श्रीहरिदासजी एवं रसिकाचार्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु के नित्य मिलन सिद्धान्त में मान का एक अर्थ उक्त प्रकार से है और अन्यान्य शैलियों से मान के अनेकों भाव हैं। जो यहाँ प्रकाश में ले आना असम्भव और अनुचित होगा।

'हित चौरासी' के सम्पूर्ण पदों का अध्ययन करने पर एक बात पाठकों को यह भी मिलेगी कि सर्वत्र श्रीप्रियाजी ही मानवती हैं। इसके अनेक कारणों में से एक तो ऊपर ही कहा जा चुका। दूसरा यह कि यहाँ प्रेम की शैली अन्य शैलियों से विलक्षण है। यहाँ श्रीराधा प्रेमास्पद और श्रीकृष्ण प्रेमी हैं किन्तु अन्य उपासना मार्गों में श्रीकृष्ण चन्द्र प्रेमास्पद और श्रीराधा प्रेमी हैं। इसीलिये अन्य उपासना मार्गों में श्रीकृष्ण के लिये भी मान का अवसर है जैसा कि 'गीत गोविन्द' एवं जगन्नाथ वल्लभ नाटक में श्रीजयदेव कविराज एवं राय रामानन्द जी ने वर्णन किया है। इसी प्रकार व्रज लीला गायक महाकवि महात्मा सूरदास जी ने श्रीराधा से रूठ कर श्याम सुन्दर के चले जाने और श्रीराधा के दुखी होने विलाप करने का वर्णन कितने ही पदों में किया है। इसके सिवाय व्रज भाषा एवं संस्कृत साहित्य में नायक नायिका भेद का वर्णन करने वाले कवि, महात्मा और सन्तों में से अधिकांश ने नायक मान का वर्णन किया है, जो साहित्य शृङ्गार की मर्यादा के शायद अनुकूल है या नहीं, मैं नहीं जानता किन्तु इससे बचकर चलने वाले दो ही आचार्यों के दर्शन मुझे हुए—

(१) रसिकाचार्य्य वर्य गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र

(२) रसिकानन्य नृपति स्वामी श्रीहरिदासजी।

ये क्यों बचकर चले ? इसलिये कि इनकी उपासना का लक्ष्य नित्य मिलन शृङ्गार है और इस नित्य मिलन में प्रधानता नायिका की है, नायक की नहीं। दूसरे इनकी आराध्या नायिका श्रीराधा स्वाधीन भर्तृका है तथा नायक अपनी प्रियतमा श्रीराधा के अनुकूल एवं पति हैं; जार (उपपति) एवं बहुनायक नहीं। यद्यपि यहाँ नायिका श्रीराधा प्रेमास्पद हैं फिर भी उनका प्रेम अपने प्रेमी नायक श्रीलालजी के प्रति अगाध एवं अपार है। या यों कह दें दोनों दोनों के प्रेमास्पद हैं। श्रीराधा प्रेमास्पदा का प्रेम अपने प्रेमी के प्रति अगाध और अपार है, जो प्रवाहित होने पर किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता, अतएव उसका प्रवाहित न होना आवश्यक है इसलिये भी यहाँ नायक मान की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके विपरीत नायक की दशा है कि वह दीन और अधीन है अपनी प्रिया नायिका के। उसका प्रेम बढ़ता रहता है अतः उसे रोकर कर

सामान्य स्थिति में रखने की आवश्यकता है इसीलिये वह नायिका मान द्वारा रोका जाता है।

इसके अतिरिक्त एक विशेष बात यह है, जिसे सभी रस शास्त्रों ने स्वीकार किया है कि रस की सम्पुष्टि नायिका के ही प्राधान्य में होती है, नायक के प्राधान्य में नहीं। श्रीहिताचार्य्य चरण रस के सुज्ञ आचार्य्य हैं उन्होंने अपनी उपासना में श्रीप्रियाजी का ही स्थान प्रधान रखा है इसके अनेक कारणों में एक यह भी है कि वे उक्त सिद्धान्त की महत्ता को ध्यान में रखते हैं। उन्हें ज्ञात है कि नायक की प्रधानता तो दूर रही समकक्षता स्वीकार करने में भी रसाभास हो जाता है। इसी रसाभास से बचकर उन्होंने अपने समस्त ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

रसों की परिभाषा के क्षेत्र में कटु, अम्ल, और तिक्त भी रस कहे गये हैं और साहित्य क्षेत्र में वीर, भयानक एवं वीभत्स तक। किन्तु इन रसों के आस्वादन कर्त्ता रसिक न कहे जायेंगे अपितु छः रसों में से मधुर और नव रसों में से शृङ्गाररस के आस्वादन कर्त्ता ही रसिक पद से विभूषित होंगे। इसीलिये श्रीसेवक दामोदरजी ने कहा–

रसिक बिनु कहें सबही जु मानत बुरौ,
कहौ रसिकई कैसे जु जानी ?

रसिक न कहे जाने से आराधक वर्ग में से प्रायः सभी को बुरा तो अवश्य लगता है पर 'आपने रसिकता कैसे जानी कहाँ से जानी ? इस प्रश्न का उनके पास कोई उत्तर नहीं है। इस पर यदि वे रसिकता की वाञ्च्छा करते हैं तो उन्हें सीधा मार्ग दिखाते हैं–

जौरु तुम रसिक रस रीति के चाड़िले,
तौरु मन देहु हरिवंश बानी।

ठीक तो है, यदि तुम्हें रसिक कहलाना है और तुम्हारे चित्त में रस रीति की वाञ्च्छा है तो तुम श्रीहरिवंशचन्द्र की रसमयी सुधा वाणी में मन दो। क्योंकि यही रसिकाचार्य्य है और इनकी वाणी, रस।

अब यह देखना है कि इन युगल रसिक नृपति आचार्य्य के सिद्धान्त से विपरीत जिन्होंने नायक मान स्वीकार किया है। उनके सिद्धान्त से प्रेम विलास में रस का कैसा परिपाक हुआ है और वहाँ नायक एवं नायिका का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है ? पश्चात् यह भी देखना होगा कि श्रीहिताचार्य्य चरण के रस सिद्धान्त से उनके रस सिद्धान्त का संतुलन माप क्या है ?

श्रीकृष्ण ही रस और रसिकता के मूर्त्त रूप हैं। सबने यह स्वीकार किया है कि श्रीकृष्ण गोपियों एवं श्रीराधा के जार (उपपति) और बहुनायक हैं तथा समस्त युवती मण्डल के प्रेमास्पद भी। जैसा कि माध्व गौड़ीय सम्प्रदायाचार्यों का मत है–

आराध्यो भगवान् व्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनं,
रम्याकाचिदुपासना व्रजवधू वर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं पुराणममलं प्रेमापुमर्थो महान्,
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्र हो नापरः।।

अर्थात् " आराध्य है व्रजराजनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण, उनका धाम है श्रीवृन्दावन। पूर्वकाल मे व्रज वधू गणों ने जिस भाव से आराधना की है वही कोई रम्य (परकीया शृङ्गार रस की) उपासना है। इसका प्रमाण है श्रीमद्भागवत जैसा अमल पुराण और इस उपासना का लक्ष्य है परम पुरुषार्थ प्रेम लक्षणा भक्ति। बस इतना ही श्रीचैतन्य महाप्रभु पाद का मत है जो साधक के लिये अवश्य ग्रहणीय है; अन्य नहीं।"

इसके उदाहरण श्रीमद्भागवत एवं परकीया भाव से सम्बन्ध रखने वाले समस्त महात्माओं के काव्यों में मिलेंगे। इस रस का आस्वादन वहाँ वहाँ किया जा सकता है। अब पाठक इस रस को ध्यान में रखते हुए श्रीहिताचार्य्य चरण रस सिद्धान्त की ओर दृष्टि करें–

नित्य विहार अखंडित धारा।
एक बैस रस विवि सुकुमारा।।
नित्य किसोर रूप निधि सीवाँ।

तिन बिच अन्तर पल कौ नाहीं।
तऊ तृषित प्रीतम मन माँहीं।।
अद्भुत सहज रंग सुखदाई।
तहाँ प्रेम की एक दुहाई।।
पिय गज मत्त न अंकुस के बस।
परम सुछन्द फिरत अपनैं रस।।
देखत हीं तिनकी परछाँही।
मदन कोटि व्याकुल ह्वै जाहीं।।
ते मोहन बस कीनें गोरी।
राखे बाँधि प्रेम की डोरी।।
छुटत न क्यौंहूँ ऐसे अटके।
प्राँन हारि चरनन तर लटके।।
प्रीति की रीति लाल ही जानैं।
तजि प्रभुता बिनु मोल बिकानैं।।
प्रेम मयी रस मैंन विनोदा।
नव नव उपजत है दुहुँ कोदा।।
रहत है दिनहिं प्रेम सरसाई।
तहाँ मान की कहाँ समाई।।
सूच्छम प्रेम न मन में आवै।
स्थूल रूप सबही कौं भावै।।

यह है श्रीहिताचार्य्य का रसमय सिद्धान्त।

जहाँ–नायक तहाँ न नायिका रस करवावत केलि।
सखी उभै संगम सरस पिवत नैंन पुट झेलि।।

अब विज्ञ रसज्ञ जन परखें कहाँ रस है और कहाँ रसाभास ? इसीतरह मान नायक का उचित है या नायिका का तथा किस मान में रस की पूर्णतया पुष्टि होती है ?

– ८४ –

अवतरण—आज सम्पूर्ण रात्रि युगल किशोर ने रति रस विलास किया है पर सखियों की चोरा चोरी। प्रातः काल रति रस के चिह्नों के प्रकाश ने चोरी प्रकट कर ही दी। श्रीहित सखी ने ठिठोली सी करते हुए अपनी प्राणाधार स्वामिनि श्रीराधा से कहा—

केदारौ

मूल—आजुऽब देखियत है हो प्यारी रंग भरी।
मोपै न दुरति चोरी वृषभानु की किसोरी;
सिथिल कटि की डोरी, नंद के लालन सौं सुरत लरी।।
मोतियन लर टूटी चिकुर चंद्रिका छूटी;
रहसि रसिक लूटी गंडनि पीक परी।
नैंननि आलस बस अधर बिंब निरस;
पुलक प्रेम परस हित हरिवंश री राजत खरी।।८४।।

भावार्थ – (श्रीहित सखी ने कहा—"सखी !) हे प्यारी आज तुम इस समय आनन्द से भरी हुई दिख रही हो और हम देख रही हैं। हे वृषभानु की किशोरी ! मुझसे भला आपकी चोरी (छिप छिप कर की गईं रति क्रीड़ाएँ, मिलन, प्रियतम सम्भोग की बातें) कैसे छिपाये छिपेंगी ? नहीं छिप सकतीं। देखो न; तुम्हारी कटि की डोरी (कटि बन्धन, नीबी) ढ़ीली है; अतः (स्पष्ट है कि) तुम नन्द के दुलारे श्रीश्याम सुन्दर से अवश्य सुरत युद्ध करती रही हो। [या अब प्रातःकाल उनसे रति युद्ध करके ही आयी हो।]

श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभुपाद (सखी भाव से) कहते हैं—"राधे ! तुम्हारी मोती माला टूट चुकी है और गुँथी हुई केश चन्द्रिका भी छूट चुकी है। कपोलों पर पीक चिह्न भी अङ्कित हैं (इससे ज्ञात होता है कि) रसिक लाल जी ने तुम्हें एकान्त में लूट लिया है। अरी ! तुम्हारी आँखें आलस्य वश हैं और बिम्बा फल से अधर भी रङ्ग हीन या रस हीन से हैं। तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर प्रेम के स्पर्श के कारण पुलकित है। अहा ! तुम अब इन सम्पूर्ण शोभाओं से युक्त होकर कैसी भली लग रही हो ?" (अर्थात् 'राजत खरी' यह मधुर व्यङ्गोक्ति भी है।)

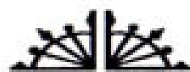
टिप्पणी – इस पद में सम्भोग शृङ्गार की चरम सीमा सुरत विहार का वर्णन है। ग्रन्थ के इस अन्तिम पद में सुरत विहार का वर्णन करके मानो अपने सेव्य नित्य विहारी लाल की आनन्दमयी केलि सुरत क्रीड़ा की नित्य स्थिति का लक्ष्य कराया गया है। प्रथम पद में "जोई जोई प्यारो करै......तरंगनि न्यारे।"

कह कर युगल सरकार के अत्यन्त गाढ़ एकाकार प्रेम का लक्ष्य कराया गया था। ग्रन्थ के मध्य में उपपत्ति रूप से उसी रस को नाना केलि कलाओं से पुष्ट किया गया। मानो इस हित वाणी सुधार्णव में अनेकों लहरियाँ उठीं और समा गयीं अन्त में उसी रस की गम्भीरता में–

जै श्री हित हरिवंस करौ दिन दोऊ अचल विहार।

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ उपक्रम उपपत्ति एवं उपसंहार में आद्यन्त एक ही रस–प्रेम विलास सुरत क्रीड़ा से ओत प्रोत है। इस अन्तिम पद में केवल सुरत क्रीड़ा का ही वर्णन करके यह सूचित किया गया कि यह रस नित्य अविचल और अखण्ड है किंवा श्रीवृन्दावनेश्वरी, श्रीकृष्णआह्लादिनि, नित्यानन्द मयी नित्य नवल किशोरी श्रीराधा और उनके प्रियतम रसिक शेखर नित्यानन्द मय उन्नत नवल किशोर सदा एक रस अविचल विहार में मग्न हैं यह सूचना है। युगल किशोर की भाँति उनका समस्त परिकर सखी गण, खग, मृग, श्रीवन के लता तरु आदि सभी नित्यानन्द मय, रस मय और विलास से ओत प्रोत हैं।

यह श्रीहित हरिवंश चन्द्र रसिकाचार्य्यवर्य का आराध्य तत्व रस है, जिसका विमल विकाश है श्रीवृन्दावन का अत्युज्वल शृङ्गार पूर्ण नित्य विहार और जिसकी सुमधुर झाँकी इस सम्पूर्ण ग्रंथ में करायी गयी है।



यह वे राधा हैं, जिनके नाम का एक बार भी उच्चारण कर लेने पर सबका आकर्षण करने वाले श्रीकृष्ण भी राधा नाम जापक के पास अपने आप आकर्षित हुए चले आते हैं। तब फिर उस साधक को समस्त पुरुषार्थों में तुच्छता का स्फुरण होने लगता है। श्रीकृष्ण स्वयं भी इस नाम का जप करते हैं, सखि जनों के मुख से इस राधा नाम का गान सुना करते हैं, वे कभी कालिन्दी के तट पर बैठ कर योगीन्द्रों की भाँति इसका ध्यान करते और प्रेमाश्रु पूर्ण हो जाया करते हैं तो कभी अति रसानन्द के कारण आनन्द मग्न हो जाया करते हैं। यह राधा नाम देवताओं भक्तों, मुक्तों और श्रीकृष्ण सुहृदों से भी अत्यन्त दूर है। इस राधा नाम की महिमा अनिर्वचनीय है। इस नाम के प्रताप से राधा नाम का गान–स्मरण करने वाले को प्रियतम श्रीकृष्ण अदेय वस्तु देकर भी उसके ऋणी हो जाया करते हैं और उसके अनन्त एवं लेखा न कर सकने लायक अपराधों को तत्काल ही क्षमा करके उसे अपना बना लेते हैं। श्रीहिताचार्य्य पाद कहते हैं–

अनुल्लिख्यानन्तानपि सदपराधान्मधुपति
र्महाप्रेमाविष्टस्तव परम देयं विमृशति।
तवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृत रसं
महिम्नः कः सीमां स्पृशति तव दास्यैक मनसाम्।।

श्रीराधा सुधा निधि श्लो. १५४

अस्तु; श्रीराधा एक अद्भुत रस तत्व है। जो लावण्य की परम अद्भुतता से परिपूर्ण है, जिसमें लीला गति दृग्भङ्गी, हास आदि की अद्भुतता विराजमान है। जब अद्भुत प्रणय–कोप से आकुल होती हैं तब महा रसिक–मौलि श्रीलालजी सभय कौतुक दृष्टि से देखते ही रह जाते हैं। आपका सौन्दर्य्य भी अत्यद्भुत है। श्रीमुख के अनुपम रसानन्द कन्द चन्द्र की चन्द्रिका के कला–अणु मात्र से ही पूर्णिमा का चन्द्र तुच्छ हो जाता है। अरे ! एक चन्द्र की तो बात ही क्या ? यदि अनेक अनेक राकाशशि एक साथ उदित होकर अपनी प्रेमामृतमयी ज्योति तरङ्गों से अगणित कोटि ब्रह्माण्डों को आपूरित कर दें, तो शायद इन विचित्र चन्द्र समूहों की श्रीराधा मुखचन्द्र की एक किरण से उपमा दी जा सकेगी।